ISSN-0971-8397

योजना

विशेषांक | जनवरी 2009 | विकास को समर्पित मासिक | मूल्य : 20 रुपये

चुनाव : बदलते आयाम

प्रकाशन विभाग की नवीनतम पुस्तकें

पुस्तक : बहादुरशाह ज़फ़र
लेखक : महेश दर्पण; **मूल्य :** 50 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1472-2

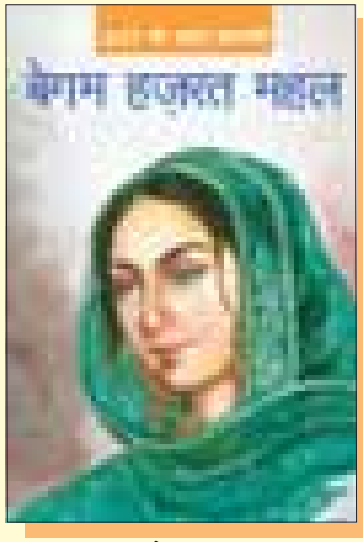

पुस्तक : बेगम हज़रत महल
लेखक : के.सी. यादव; **मूल्य :** 90 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1538-5

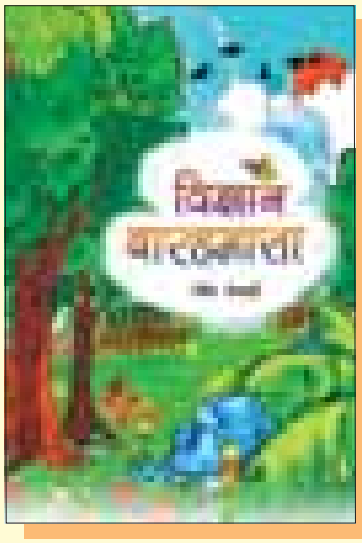

पुस्तक : विज्ञान बारहमासा
लेखक : देवेंद्र मेवाड़ी; **मूल्य :** 100 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1514-9

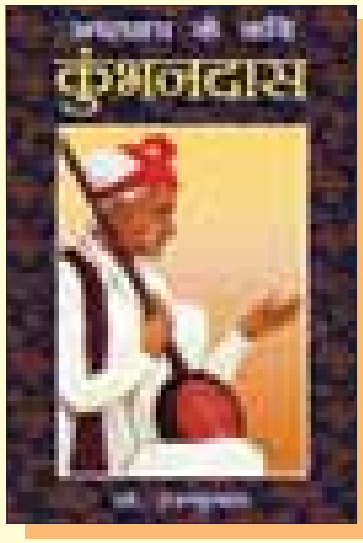

पुस्तक : अष्टछाप के कवि कुंभनदास
लेखक : डॉ. हरगुलाल; **मूल्य :** 90 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1439-5

पुस्तक के लिये कृपया हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर संपर्क करें :- सूचना भवन सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

योजना

वर्ष : 53 • अंक : 1 जनवरी 2009 पौष-माघ, शक संवत 1930 कुल पृष्ठ : 84

प्रधान संपादक
एस.बी.शरण

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23096738, 23717910
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजूमदार

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_icm@yahoo.co.in

आवरण : **संतोष वर्मा**

इस अंक में

संपादकीय	-	5
आर्थिक संकेतक	-	6
हम आतंकवाद को परास्त करेंगे : प्रधानमंत्री	-	7
भारत में चुनाव - एक जबरदस्त हंगामा	सतबीर सिलास बेदी के.एन. कुमार	8
चुनाव प्रचार - लोकतांत्रिक आदर्श और भारतीय अनुभव	अभय कुमार दुबे	11
राजनीति का अपराधीकरण	एस.के. मेंदीरत्ता	15
हमारी विविधता और क्षेत्रीय राजनीति का उदय	अरविंद मोहन	19
चुनावी भ्रष्टाचार	टी.एस. कृष्णामूर्ति	23
चुनावी लेखा परीक्षण	जगदीप एस. चोक्कर	25
मीडिया और चुनाव	विमल कुमार	29
चुनाव प्रचार का हथियार बने सर्वेक्षण	अरविंद कुमार सिंह	31
इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन	पी.वी. इंदिरेशन	33
चुनाव में आर्थिक सुधारों का मुद्दा	संजय कुमार	36
चुनाव आचार संहिता : कुछ बुनियादी बातें	गरिमा मैहदीरत्ता	39
शैक्षिक परिसरों का लोकतंत्रीकरण	रंजीत अभिज्ञान	41
राजनीति में महिला नेतृत्व - संभावनाओं की तलाश	ऋतु सारस्वत	43
बीते छह दशक का चुनावी सफ़र	अंजू कुमारी	45
भारत की लोकतांत्रिक यात्रा और चुनाव सुधार	नवीन पंत	49
चुनावी मशीनरी	-	52
झरोखा जम्मू-कश्मीर का : इस चुनाव के मायने	बलराज पुरी	54
झरोखा जम्मू-कश्मीर का : करगिल में महिलाओं के लिये आशा की किरण	ताशी मोरुण	56
न मिटने वाली स्याही	एम. देवेंद्र	58
चुनावी हंसी-मजाक	के.के. खुल्लर	59
जहां चाह वहां राह : समाज सेवा और कारोबार का संगम	अभिषेक श्रीवास्तव	61
शोधयात्रा : अविरत बुनाई	-	62
आर्थिक मंदी की चपेट में दुनिया	रहीस सिंह	65
विश्वव्यापी आर्थिक संकट में भारतीय बैंकों की विश्वसनीयता	ओ.पी. शर्मा	69
पंचायत अध्यक्षों-प्रतिनिधियों का सम्मेलन	-	72
विविधा : एक अंतरिक्ष यान की अनंत यात्रा	शैलेंद्र मोहन कुमार	73
ख़बरों में	-	74
मंथन : सामाजिक -सांस्कृतिक जागृति के अग्रदूत	प्रतिभा	76
स्वास्थ्य चर्चा : प्राणायाम : रोगोपचार की सामर्थ्यदायी प्रक्रिया	महेश कुमार मुछाल	78

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिये मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 दूरभाष : 26100207, 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिये आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. **द्विवार्षिक :** 180 रु.; **त्रैवार्षिक :** 250 रु.; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिये 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

आतंक के जख़्म पर मरहम

नवंबर अंक में बाल अधिकार के अंतर्गत दिए गए सभी लेख काबिले-तारीफ़ हैं। शिक्षा से लेकर खान-पान एवं हिंसक होते बच्चों पर दी गई जानकारी सराहनीय है। 'घाटी में रेल : पहले ही दिन जीता कश्मीर का दिल', 'सद्भावना के फल लेकर ट्रक पहुंचे सीमापार' आतंक के बढ़ते क़हर तथा उससे बने जख़्म पर मरहम का काम करता दिखा। इसके लिये *योजना* संपादकीय टीम बधाई के पात्र हैं।

आबिद मजीद इराकी
अस्पताल रोड, जहानाबाद, बिहार

अच्छी जानकारी

'बाल अधिकार' पर आधारित *योजना* का अंक महत्वपूर्ण है। इसमें कुमारी रूपम द्वारा लिखित लेख 'बाल विकास एवं पोषण' प्रशंसनीय है। 'बच्चों में निवेश की ज़रूरत' शीर्षक अक्षय के. पांडा द्वारा लिखित लेख जानकारी देने वाला है।

'आदिवासियों के विकास का आधार' शीर्षक लेख तथा 'मंथन' स्तंभ के अंतर्गत शामिल सामग्री आदि से भी बहुत अच्छी जानकारी मिली।

राहुल पाडवी
नंदुरबार, महाराष्ट्र

कुपोषण से बचाना होगा

योजना का नवंबर अंक सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सारगर्भित रहा। देश के कर्णधारों को सुरक्षा प्रदान करने से संबंधित इनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा को लेकर विद्वानों के अनेक मत सामने आए। बाल अधिकारों की पुष्टि संविधान के विभिन्न धाराओं के अंतर्गत कर दी गई थी परंतु अभी तक उन्हें धरातल पर नहीं उतारा गया। इसके लिये मुख्य रूप से दोषी हमारा समाज है जो ग़रीबी और कुपोषण से सामना करते हुए बच्चों के अधिकार को जानने से अनभिज्ञ रहा। सरकार द्वारा जो भी योजनाएं बच्चों के विकास और सुरक्षा के लिये चलाई जाती हैं उनका बंदरबाट कर लिया जाता है। जैसे प्राथमिक स्कूलों में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था में लगे लोग अपना ही पेट भरने में लगे हैं। बच्चों के शारीरिक विकास के लिये भोजन में जो समानुपातिक ढंग से खाद्य पदार्थों की मात्रा सुनिश्चित की गई है वह उपलब्ध नहीं होती। भले ही हमने इस कार्यक्रम के तहत ग्रामीण बच्चों को स्कूल से जोड़ने के लिये पहल किए हैं, परंतु धरातल पर कुछ भी साफ़-साफ़ नज़र नहीं आता। बच्चों को कुपोषण से बचाने के लिये उसके अभिभावकों का शिक्षित होना अति आवश्यक है। शिक्षित होना कई मामलों में ज़रूरी लगता है। अशिक्षित परिवार के बच्चे स्कूलों से नहीं जुड़ पाते क्योंकि उनके माता-पिता शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पाते। जब अभिभावक शिक्षित होंगे तभी वे बच्चों को श्रम से मुक्त कर सकेंगे, बच्चों के अधिकार को समझ पाएंगे। बाल अधिकारों पर केंद्रित अंक प्रकाशित करने के लिये आप सबको धन्यवाद।

सत्य प्रकाश
बिंदु प्रशिक्षण संस्थान, बरवां, मीरगंज, गोपालगंज, बिहार

बाल अधिकार के प्रति लोगों को जाग्रत करना

योजना का नवंबर अंक बाल अधिकार के जरिये लोगों को यह एहसास कराता है कि बालक, जिके कंधों पर भविष्य की बागडोर होती है, उन्हें किसी प्रकार उनके अधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिए।

'समता के लिये अपरिहार्य', 'वैश्विक मंदी से कैसे बचे भारत', 'जहां चाह वहां राह के अंतर्गत कौन कहता है आसमा में छेद हो नहीं सकता जैसे लेख पाठक के आत्मविश्वास को जगाने में समर्थ हैं। यह जरूरी नहीं कि अच्छी पत्रिका में अच्छे लेख ही मिलें लेकिन यह जरूर है कि अच्छे लेख सिर्फ अच्छी पत्रिका में मिलते हैं।

सूरज कुमार सोनकर
अर्दली बाजार, उल्फत बीबी मजार, वराणसी उ.प्र.

लेख प्रकाशित करें

मैं *योजना* का नियमित पाठक हूं। मेरा निवेदन है कि विश्व के साथ भारत जिन वर्तमान समस्याओं से जूझ रहा है, उन पर आप कम से कम एक लेख हर अंक में दें, इसकी बहुत आवश्यकता है। ग्लेशियर का पिघलना, समुद्री प्रदूषण, मरुस्थल, आपदा, कृषि, पर्यावरण, पारिस्थितिकी असंतुलन, पशु संसाधन, सूखा, बाढ़, जनसंख्या समस्या, श्वेत क्रांति, जलीय कृषि, वन जीवन एवं जीनपूल, समुद्री नियम एवं प्रदूषण और महासागरों की वर्तमान स्थिति जैसे ज्वलंत मुद्दों पर लेख देने की कृपा करें।

विनोद कुमार यादव
परसा, अमरदह सारण, बिहार

गंभीर और अद्यतन सामग्री

मैं लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग में एम.फिल का छात्र हूं और *योजना* का बीए से नियमित पाठक। नवंबर 2008 अंक पढ़ा, 'गरीबी निर्धारण का अर्थशास्त्र' बहुत लाभदायक रहा। इसी माह की इपीडब्ल्यू में भी इसी विषय पर एक लेख था, दोनों की तुलना में *योजना* का लेख बहुत बेहतर है। पीपीपी के विषय में मेरी उत्सुकता बहुत रही लेकिन अब तक किसी ने भी इसका फार्मूला नहीं सुझाया था। हल्की सी झलकियां मिली,

लेकिन पिग पैक प्राइस तो सुना ही नहीं था। इस बेहतर सामग्री देने के लिये आपको एवं लेखक रहीस सिंह को धन्यवाद! आग्रह है कि इस प्रकार के गंभीर लेख देते रहें, ताकि हम सब विषयगत सामग्री अद्यतन प्राप्त कर सकें।

नीरज कुमार
लखनऊ वि.वि., लखनऊ

आवश्यकता सुव्यवस्थित प्रयास की

***यो**जना* के नवंबर अंक ने बच्चों के लिये मौजूदा संवैधानिक प्रावधानों से वाक़िफ कराने एवं बच्चों में उभरती नयी समस्याओं व उनके प्रभावी समाधानों पर जो विशेष सामग्री दी है वह बहुत ही ज्ञानवर्धक रही। बच्चों के लिये अधिकारों और उनकी सुरक्षा व्यवस्था के लिये देश में कानूनों की कमी नहीं है। कमी है तो सिर्फ़ उनके क्रियान्वयन और पारदर्शिता में, जिसके लिये न तो कभी प्रभावी प्रयास किए गए और न किए जा रहे हैं। आखिर कानून बनाकर क़िताबें भरने से क्या फायदा? अब तक बने कानूनों के संदर्भ में यदि कुछ कार्य निष्पक्षता एवं पारदर्शिता के साथ संचालित होते तो आज देश इतनी बदहाल अवस्था में न होता, फुटपाथों पर बचपन बेचते बेबस बच्चे व अपने अधिकारों से अनभिज्ञ औरतें दर-ब-दर ठोकरें न खा रही होतीं, और न ही भूख से ग्रामीण भारत का भविष्य चौपट होता। उधर कानून बनते हैं, इधर कानून टूटते हैं और उत्तरदायित्व की दलील में वही दशकों पुराने घिसे-पिटे लफ़्ज सुना दिए जाते हैं। आज भी देश की आधी से अधिक आबादी अपने मूल अधिकारों से वंचित है और सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की ठेकेदारी करने वाला भारतीय प्रशासन आज भी उत्तरदायित्व के उसी कटघरे में खड़ा है जिसमें साठ साल पूर्व था। आखिर उनके लिये आज़ादी के क्या मायने हैं जो रोटी के चंद टुकड़ों के लिये स्वयं को बेचने के लिये मज़बूर हो, कूड़े करकट के ढेरों में कबाड़ खोजने को बेबस हैं?

अंक के सभी लेख सारगर्भित और विविध जानकारियों से पूर्ण हैं विशेषकर 'हिंसक होता बचपन', 'ग़रीबी निर्धारण का अर्थशास्त्र', 'बाल अधिकार और भारत' एवं 'वैश्विक मंदी से कैसे बचे भारत' जैसे लेखों से काफी अच्छी जानकारी मिली।

पत्रिका के पृष्ठ-21 में 'क्या है बच्चों से जुड़ी संवैधानिक प्रतिबद्धताएं' में चौथे बिंदु पर राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को ऐसी नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जिसे राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे, यह प्रावधान 86वें संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद-21(क) में किया गया था, जबकि पत्रिका में यह अनु.-14(क) बताया गया है।

गजेंद्र सिंह मधुसूदन
अतर्रा, बांदा, उ.प्र.

बाल अधिकार

योजना का नवंबर 2008 अंक पढ़ने के पश्चात पत्र लिखने की इच्छा हुई। प्रस्तुत अंक की उपादेयता इस बात से सिद्ध होती है कि यह अपने केंद्रीय विषय 'बाल अधिकार' के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण समसामयिक बिंदुओं पर भी उत्कृष्ट सामग्री प्रस्तुत करता है। शिक्षा का अधिकार विधेयक, 2008 एक स्वागत योग्य कदम है। अच्छा होगा यदि यह जल्दी ही अधिनियम का रूप ग्रहण करें क्योंकि नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा भारत में समय की आवश्यकता हैं शिक्षा के बिना कोई समाज प्रगति नहीं कर सकता। भारत जैसे विशाल देश में जहां 6 से 14 वर्ष के बीच के बच्चों की संख्या 20 करोड़ के लगभग है, ग़रीबी शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा है। अभिभावक बच्चों को न तो अच्छा पोषण दे पाते हैं और न शिक्षा के संस्कार। ग़रीबी के दुष्चक्र में जूझते हुए वे बच्चों को भी मेहनत-मजदूरी के काम में झोंक देते हैं।

इस संबंध में ज्या द्रेज़ व रितिक खेरा द्वारा मध्याह्न भोजन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया हैं उनका यह कहना उपयुक्त ही है कि इससे शैक्षणिक प्रगति, बाल पोषण तथा सामाजिक समानता को बढ़ावा मिलता है किंतु इन सबके बावजूद इस बात को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है कि शिक्षकों की कमी, विद्यालयों में आधारिक संरचना का अभाव भी समस्याएं हैं जिनसे निपटना है। अंक में प्रकाशित 'हिंसक होता बचपन' एक ज्वलंत मुद्दा है। देश के कुछ भागों में हाल में घटित घटनाओं ने सोचने पर विवश कर दिया है कि हमारे देश का बचपन आखिर क्यों कुंठित होता जा रहा है। गतिशील दिनचर्या के बीच मां-बाप के पास बच्चों के लिये समय का अभाव, भूमंडलीकरण के कारण फैली पश्चिमी संस्कृति, अपेक्षा व दमन से कुंठित बचपन को सन्मार्ग दिखाने के लिये कदम उठाएं जाने चाहिए।

परमाणु ऊर्जा पर सुरेश अवस्थी का लेख महत्वपूर्ण है। भारत-अमरीका असैन्य परमाणु सहयोग समझौता ऐतिहासिक है। इसके दीर्घकालिक परिणाम होंगे। आईएईए और एएसजी से मिली छूट ने भारत की वैश्विक स्थिति को सुदृढ़ किया है। इस क्षेत्र में अरबों डॉलर के निवेश से देश की अर्थनीति को नया आयाम मिलेगा।

वीरेंद्र कुमार त्रिवेदी
शिवनगर

भूखा न रहे बचपन

नवंबर अंक के मुखपृष्ठ पर मासूम बालिका के माथे पर लगी हल्दी व बिंदिया समाज का यथार्थ रूप बयां कर रही है। यह तस्वीर बोल रही है कि बालिका बाल विवाह की शिकार है। इससे चमकते भारत के माथे पर कलंक ही कहेंगे जो आज़ादी के 61 साल बाद भी बाल विवाह जैसी कुप्रथा को समाज से नहीं निकाल पाया। वैसे तो बचपन बचाने के लिये तमाम नियम-कानून बनाए गए हैं, लेकिन पढ़ने, खेलने, प्यार पाने की इस उम्र में उद्योगों, होटलों, रेस्तराओं तथा अन्य जोख़िम भरे कामों में बचपन बेचते इन बच्चों की तस्वीरों को कानून मूकदर्शक बनकर देख रहा है। इतना ही नहीं शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, मनोरंजन से कोसों दूर इन अबोध बच्चों को मालिकों की डांट-फटकार, मार, तिरस्कार एवं अन्य यातनाएं भी झेलनी पड़ती हैं।

दूसरी तरफ बाल-विकास एवं उनके पोषण के लिये तमाम योजनाएं चलाई जा रही हैं, फिर भी आबादी के आधे से अधिक बच्चे कुपोषण से ग्रसित हैं। दुनिया देखने से पहले ही मासूमों की हत्या हो रही है। सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों के सामने प्रसव से पीड़ित महिलाएं तड़पते हुए दम तोड़ रही हैं। आज हर दूसरा बच्चा स्वास्थ्य सुविधाओं, तीसरा प्राथमिक विद्यालय, चौथा स्वच्छ पेयजल से वंचित है। कूड़े-करकट के ढेर में दो वक्त की रोटी तलाशते इन करोड़ों मासूमों को देख सहज ही होठो से निकल पड़ता है :

जिस देश का बचपन भूखा हो,
उस देश का भावी क्या होगा?

अत: यदि विकसित भारत की परिकल्पना को साकार करना है, तो हमें बचपन को शोषण, कुपोषण से मुक्त करना होगा।

प्रेमनाथ नागर
सौंता, कलिंजर, बांदा, उ.प्र.

PATANJALI

दर्शनशास्त्र की तैयारी हेतु सर्वाधिक भारत का विशेषज्ञ संस्थान

IAS/PCS

पिछले पाँच वर्षों में **हिन्दी माध्यम** में दर्शनशास्त्र के साथ I.A.S. और P.C.S. में **सर्वोच्च स्थान** एवं **सर्वोच्च अंक** पाने वाले तथा **देश के सबसे युवा** एवं **प्रथम प्रयास** में सफल होने वाले अधिकांश अभ्यर्थी 'पतंजलि' संस्थान से संबंधित रहे हैं। इस बार भी हमने इस परंपरा को कायम रखा है।

हिन्दी माध्यम के टॉपर

देश भर में हिन्दी माध्यम में

सतीश कुमार — सर्वोच्च स्थान — Rank 22nd

"मैंने दर्शनशास्त्र के लिये विशेषीकृत संस्थान 'पतंजलि' के निदेशक श्रीमान कुमार सर के कक्षा अध्यापन में भाग लिया। युवा और नवीन अध्यापकगणों की भाँति, तार्किक एवं वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करने की उनकी कला ने मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाया तथा विषय की एक स्पष्ट समझ विकसित करने में सहायक थी। इसका लाभ अन्य पेपरों पर भी पड़ा। दर्शन सामग्री कोई सैद्धान्तिक पुस्तकों न होने के बावजूद भी मैंने इस विषय के साथ न्याय कर सकने में सफलता अर्जित की।"

देश भर में हिन्दी माध्यम में महिला वर्ग में दर्शनशास्त्र के साथ

मधुमा गुप्ता — सर्वोच्च स्थान — Rank 59th

"पेपर एवं माध्यम बदलकर प्राप्त की सफलता"

अमित कुमार — Rank 89th

पत्राचार कार्यक्रम

- संस्थान दर्शनशास्त्र हेतु परिष्कृत एवं पुनरावलोकन पूर्ण से संबंध सामग्री उपलब्ध कराता है। जो अभ्यर्थी व्यस्तता, अस्वस्थता या किसी अन्य कारण से दिल्ली आकर कक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकते, वैसे अभ्यर्थी पत्राचार के माध्यम से इस सम्पूर्ण सामग्री को प्राप्त कर सकते हैं। – दर्शनशास्त्र (मुख्य परीक्षा) संबंधित सामग्री को प्राप्त करने के लिए अपेक्षित राशि का दिल्ली में भुगतान योग्य बैंक ड्राफ्ट "PATANJALI IAS CLASSES" के नाम भेजें। **पत्राचार कार्यक्रम का शुल्क : 6000/-**

प्रारंभिक परीक्षा पत्राचार कार्यक्रम का शुल्क : 3000/-

PATANJALI

2598, Hudson Line, Kingsway Camp, Delhi-9
Ph: 011-32966291, Mob.: 9810172345

YH-1/09/9

संपादकीय

भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का सदा से गर्व रहा है। विश्व के उभरते हुए राष्ट्रों में 1950 के दशक में यही एकमात्र पसंद थी। तब से अनेक ऐसे अवसर आए हैं जब प्रश्न किए गए हैं कि क्या भारतीय लोकतंत्र परिस्थितियों की कसौटी पर खरा उतरेगा? और ऐसे प्रत्येक अवसर पर भारत ने 'हां' में उत्तर दिया है।

चुनाव लोकतंत्र की आधारशिला है। यह प्रसन्नता का विषय है कि जम्मू-कश्मीर, मिज़ोरम, दिल्ली, मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के 6 राज्यों में हुए विधानसभा चुनावों में साठ प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने निर्भय होकर मतदान किया है। इससे देश में चुनाव की स्वतंत्र व्यवस्था और मतदाताओं की लोकतांत्रिक आस्था की पुष्टि होती है। पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव भी शीघ्र होने को हैं। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने लोगों को प्रोत्साहित करने के लिये मतदान को एक पवित्र मिशन बताया था। मतदान का बढ़ता प्रतिशत इसी आशावादिता का परिचायक है।

भारत के संविधान के अनुसार समूची चुनावी मशीनरी भारत के निर्वाचन आयोग के अधीन काम करती है। संविधान की धारा 324 के तहत आयोग को एक कार्यकारी आदेश के द्वारा चुनाव कराने की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है। भारत जैसे विशाल देश में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (संविधान की धारा 326 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार) के अनुरूप समय-समय पर नियमित रूप से चुनाव कराना निश्चय ही एक दुष्कर कार्य है।

योजना का यह अंक चुनावों के इस विराट यज्ञ को समर्पित है। चुनावों के तमाम पहलुओं - लघुतम स्तर पर चुनाव प्रबंधन में निर्वाचन आयोग की भूमिका, पुनर्सीमन आयोग द्वारा निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण, चुनाव प्रचार की कला, चुनाव सुधारों का मुद्दा, चुनावों में मीडिया की भूमिका, राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती ताक़त अथवा भ्रष्टाचार और अब इससे जुड़े अपराधीकरण की बढ़ती भूमिका, इन सभी पर विस्तार से चर्चा इस विशेषांक में की गई है। इसके अतिरिक्त वाहनों में बने चलित मतदान केंद्रों और इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों जैसी नवीन प्रौद्योगिकियों के बारे में भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। नयी प्रौद्योगिकियों के आने से चुनावी कार्य बेहतर ढंग से संपादित करने में मदद मिली है। राजनीतिक दलों द्वारा अपनी आय के बारे में नियमित रूप से आयकर अधिकारियों को जानकारी देना, आय और व्यय का ब्यौरा देना आदि अनेक बातें हाल ही में चुनावी प्रणाली से जुड़ी हैं।

अंक में प्रसिद्ध मानवाधिकार कर्मी और पद्मभूषण से सम्मानित लेखक बलराजपुरी का हाल ही में संपन्न जम्मू-कश्मीर विधानसभा चुनावों के संदर्भ में लेख विशेष रूप से ग़ौरतलब है।

प्रत्येक राष्ट्र के विकास में सुशासन एक प्रमुख स्तंभ की भूमिका निभाता है। सरकारों को उत्तरदायी, पारदर्शी, सहभागी और समावेशी होना ही चाहिए। उनका आवश्यक प्रतिपर्ण है - एक सतर्क नागरिक - जो लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति जागरूक होता है और जो लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षक भी है।

पिछले अंक से हमने अपने लोकप्रिय स्तंभ 'शोधयात्रा' को पुनः आरंभ किया है। इसके अंतर्गत जमीनी स्तर पर किए जा रहे शोधकार्यों से हम आपको बारी-बारी से अवगत कराते रहेंगे। इस अंक से 'विविधा' नाम से एक और स्तंभ हम आरंभ कर रहे हैं जिसके तहत ज्ञान-विज्ञान की सभी विधाओं से रोचक सामग्री प्रस्तुत की जाएगी।

सभी पाठकों को नये वर्ष की शुभकामनाएं! ❑

आर्थिक संकेतक

संकेतक: वार्षिक	इकाइयां	2000-01	2001-02	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09 (प्रक्षेपित)
जनसंख्या (1 अक्तूबर तक)	करोड़ में	101.9	103.8	105.5	107.3	109	111	112.2	113.8	115.2
जीडीपी वर्तमान बाज़ार मूल्य पर	करोड़ रुपये	21,02,314	22,78,952	24,54,561	27,54,621	31,49,412	35,80,344	41,45,810	47,13,148	-
जीडीपी प्रतिव्यक्ति (वर्तमान मूल्य)	रुपये	20,631	21,955	23,266	25,696	28,920	32,372	36,950	41,416	-
सकल घरेलू बचत (वर्तमान मूल्य)	जीडीपी प्रति.	23.7	23.5	26.4	29.8	31.8	34.3	34.8	-	-
सकल घरेलू पूंजी निर्माण (वर्तमान मूल्य)	जीडीपी प्रति.	24.2	24.2	25.2	26.8	31.6	34.5	36.0	37.5	-
सकल राजकोषीय हानि	जीडीपी प्रति.	5.7	6.2	5.9	4.5	4.0	4.1	3.4	3.0	-

वर्तमान मूल्य पर जीडीपी एफसी का क्षेत्रवार हिस्सा

कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र	जीडीपी का %	23.4	23.2	20.9	21.0	19.2	18.8	18.3	17.8	-
उद्योग	जीडीपी का %	26.2	25.3	26.5	26.2	28.2	28.8	29.3	29.4	-
सेवा	जीडीपी का %	50.5	51.5	52.7	52.8	52.6	52.4	52.4	52.8	-

मूल्य (वार्षिक औसत)

थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूटी 100.00)	अप्रैल 1993=100	155.7	161.3	166.8	175.9	187.2	195.5	206.1	215.9	-
उपभोक्ता मूल्य सूचकांक - औद्यो. कर्म	जुलाई 2001=100	95.93	100.07	104.05	108.07	112.2	117.2	125.0	132.75	-

कृषि उत्पादन आम सूचकांक भारत

खाद्यान्न	मिलि. टन	196.8	212.9	174.8	213.2	198.4	208.6	217.3	230.7	235.1
मोटा अनाज	मिलि. टन	185.7	199.5	163.7	198.3	185.2	195.2	203.1	215.6	220.0
चावल	मिलि. टन	85.0	93.3	71.8	88.5	83.1	91.8	93.4	96.4	99.0
गेहूं	मिलि. टन	69.7	72.8	65.8	72.2	68.6	69.4	75.8	78.4	80.0
दालें	मिलि. टन	11.1	13.4	11.1	14.9	13.1	13.4	14.2	15.1	15.3
तिलहन	मिलि. टन	18.4	20.7	14.8	25.2	24.4	28.0	24.3	28.8	30.7
गन्ना	मिलि. टन	296.0	297.2	287.4	233.9	237.1	281.2	355.5	340.6	314.0

उद्योग और ऊर्जा

औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (मान-100) (वार्षिक औसत)	अप्रैल 1993 = 100	162.69	166.99	176.64	188.97	204.8	221.52	247.05	268.02	-
	% परिवर्तन	5.06	2.64	5.78	6.98	8.37	8.16	11.53	8.49	-
व्यावसायिक ऊर्जा उत्पादन	एमटीओई #	230.9	237.9	246.9	259.2	272.0	283.83	298.55	73.45	-
सार्वजनिक इकाइयों द्वारा ऊर्जा उत्पादन	मिलि. केडब्ल्यूएच	501.2	517.4	532.7	565.1	594.5	617.5	662.5	704.5	-

विदेश व्यापार

निर्यात	मिली. अम. डॉलर	44,147	43,958	52,823	63,886	83,502	1,03,075	1,26,276	1,59,089	1,91,000
आयात	मिली. अम. डॉलर	50,056	51,567	61,533	78,203	1,11,472	1,49,144	1,85,081	2,38,605	3,19,000
विदेशी मुद्रा भंडार^	मिली. अम. डॉलर	39,554	51,049	71,890	1,07,448	1,35,571	1,45,108	1,91,924	2,99,147	-
भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (शुद्ध)	मिली. अम.डॉलर	4,031	6,125	5,036	4,322	5,987	8,901.0	21,991	32,327	-
भारत में पोर्टफोलियो निवेश (शुद्ध)	मिली. अम. डॉलर	2,760	2,021	979	11,356	9,311	12,494	7,004	29,096	-
रुपया विनिमय दर	रुपये/अम. डॉलर	45.61	47.55	48.30	45.92	44.95	44.28	45.29	40.24	-

संकेतक : मासिक

मूल्य		जुलाई 07	अगस्त 07	सितं. 07	अक्तू. 07	नवंबर 07	दिस. 07	जन. 08	फर. 08	मार्च 08	अप्रैल 08	मई 08	जून 08	जुलाई 08	अगस्त 08	सितंबर 08	अक्तू. 08	नवंबर 08
थोक मूल्य सूचकांक 1993-94 = 100		213.6	213.8	215.1	215.2	215.9	216.4	218.2	219.9	225.5	228.5	231.1	237.4	240	240.8	241	-	-
(सभी सामग्रियां) परिवर्तन		4.71	4.14	3.51	3.13	3.25	3.83	4.47	5.27	7.52	8.04	8.86	11.82	12.35	12.62	12.05	-	-
कृषि																		
वास्तविक वर्षा: अखिल भारत	मिलीमीटर	259	299	194	75	14	16	19	19	32	37	38	159	276	249	175	62	14
सामान्य वर्षा से अंतर	प्रतिशत	0	-2	14	-22	-49	1	-19	-14	21	-15	-31	22	-15	2	0	-40	-54
चावल भंडार (केंद्रीय पूल)	मिलि.टन	-	6.67	-	10.65	10.05	11.15	-	-	13.84	12.86	12.13	-	9.793	8.472	-	-	-
गेहूं भंडार (केंद्रीय पूल)	मिलि.टन	-	10.862	-	9.02	8.36	7.352	-	-	5.8	17.69	24.12	-	24.38	23.259	-	-	-

निवेश (सीएमआईई कैपएक्सडेटाबेस)		मार्च '02	मार्च '03	मार्च '04	मार्च '05	मार्च '06	मार्च '07	मार्च '08	सितंबर '08
परियोजना निवेश	करोड़ रुपये	1,486,938	1,382,122	1,503,040	1,931,500	2,761,339	4,293,108	6,118,218	72,44,738
	परियोजना की संख्या	5,805	6,942	8,835	9,434	9,688	12,281	14,501	15,835

टिप्पणी: (क), % परिवर्तन वार्षिक आधार पर है; (ख) एमटीओई: मिलियन टन तेल का समतुल्य; (ग) ^ भारत सरकार के पास उपलब्ध विदेशी मुद्रा का कुल मूल्य (स्वर्ण एवं एसडीआर को छोड़कर); (घ) * यह देश में चल रहे सभी चालू पूंजीगत व्यय वाली परियोजनाओं की परियोजना लागत का सकल योग है। ये परियोजनाएं इनमें से किसी भी तीन अवस्थाओं में हो सकती है - घोषित अथवा जिनका क्रियान्वयन किया जा रहा हो।

स्रोत : योजना आयोग में स्थित i^3 (आई क्यूब) सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई)।

हम आतंकवाद को परास्त करेंगे : प्रधानमंत्री

लोकसभा में आमराय से संकल्प पारित

मुंबई में आतंकवादी हमलों की पृष्ठभूमि में लोकसभा में आतंकवाद पर हुई बहस में वक्तव्य देते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा कि "दुश्मनों को मुंहतोड़ जवाब दिया जाएगा।" उन्होंने मुंबई जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिये पाकिस्तान पर दबाव बनाने के अलावा सुरक्षा तंत्र को चाक-चौबंद करने का भी संकल्प जताया। जमात-उल-दावा पर प्रतिबंध और चार व्यक्तियों को आतंकवादी सूची में शामिल करने पर खुशी जताते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि "आतंकवाद से संघर्ष में दोहरे मापदंड अब नहीं चलेंगे।" मुंबई के आतंकवादी हमलों पर दोनों सदनों में चली चर्चा के समापन पर सरकार की ओर से लोकसभा और राज्यसभा में आतंकवाद के ख़िलाफ़ एकजुटता दिखाते हुए सर्वसम्मति से एक संकल्प पारित किया गया। इसमें कहा गया है कि भारत तब तक अपनी कोशिशें बंद नहीं करेगा जब तक आतंकवादियों और उन्हें प्रशिक्षण, धन व पनाह देने वालों को बेनक़ाब कर उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई नहीं की जाती।

प्रधानमंत्री ने कहा - "हम दुश्मनों को मुंहतोड़ जवाब देंगे।" उन्होंने ने कहा - "मैं देश की जनता से माफ़ी चाहता हूं कि यह दुर्दांत कृत्य रोका नहीं जा सका।" उन्होंने स्वीकार किया कि हाल के महीनों में आतंकवादी गतिविधियों में तेज़ी आई है जिससे सैकड़ों नागरिकों की जानें गईं।

उन्होंने यह भी कहा कि "मुंबई हमले पूरी तरह सुनियोजित थे। आतंक से मुक़ाबले के लिये सरकार को समीक्षा प्रणाली की ज़रूरत है।"

प्रधानमंत्री ने कहा, "हमारे देश को इन चुनौतियों से मुक़ाबला करने के लिये आधुनिक व सक्षम पुलिस बलों की ज़रूरत है। हमारा देश हर हमले से और भी मज़बूत हुआ है और भविष्य में भी हम ऐसा ही करेंगे।"

उनका कहना था कि आतंकवाद के मुक़ाबले के लिये हमारे संयम को हमारी कमज़ोरी न समझा जाए। हमें ज़्यादा रफ़्तार से जवाबी कार्रवाई की ज़रूरत है। हमें आतंकवाद को परास्त करना है। ऐसे अपराध करने वालों को क़ीमत चुकानी होगी।

प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान के बारे में कहा कि "उसे आतंकवाद पर नियंत्रण के लिये और उपाय करने होंगे।" उन्होंने कहा कि "हमारी वायु सीमा में सभी विमानों पर निगाह रखी जाएगी।"

प्रधानमंत्री ने आगे कहा "हमने सुरक्षा प्रणाली में ख़मियों की पहचान की है। सुरक्षाकर्मियों को लैस करने की ज़रूरत है ताकि देश की एकता और अखंडता के समक्ष उत्पन्न होने वाले अभूतपूर्व ख़तरों का मुक़ाबला किया जा सके। पिछले महीने के अंत में देश की वाणिज्यिक राजधानी मुंबई पर पाकिस्तानी आतंकवादियों द्वारा किए गए हमले से स्तब्ध और ख़फ़ा देश की संसद ने आज कमोबेश एक स्वर में पड़ोसी देश को सख़्त संदेश दिया कि आंतरिक और राजनीतिक मतभेदों के बावजूद अपनी एकता, अखंडता व संप्रभुता की रक्षा तथा आतंकवाद के ख़ात्मे के लिये पूरा देश एकजुट है।" आपसी राजनीतिक मतभेदों और आरोप-प्रत्यारोप से उबर कर अरसे बाद आतंकवाद के मुद्दे पर सत्तापक्ष और विपक्ष लगभग एक स्वर में बोले। संदेश साफ़ है कि अब पाकिस्तान की कथनी और करनी के फर्क़ को भारत मूकदर्शक बन नहीं देखता रहेगा।

विदेशमंत्री प्रणव मुखर्जी ने कहा कि "यदि पाकिस्तान ने कोई कार्रवाई नहीं की तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जो हमें पसंद नहीं है।" साथ ही उन्होंने कहा कि "परिस्थितियां पहले की तरह नहीं रहेंगी।" हालांकि विदेशमंत्री ने पाकिस्तान पर हमले की संभावना को ख़ारिज़ कर दिया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि "पाकिस्तान आतंकवाद का केंद्र है, लेकिन उस पर हमला इसका समाधान नहीं है।" इसके साथ ही उन्होंने यह भी साफ़ कर दिया कि भारत की संप्रभुता से इस तरह खिलवाड़ नहीं किया जा सकता और भारत अपनी अखंडता और संप्रभुता की रक्षा के लिये कुछ भी करेगा। उन्होंने कहा कि भारत आतंकवाद के विरुद्ध कार्रवाई के लिये दबाव बनाने की कोशिश करेगा। पाकिस्तान को चाहिए कि वह अपने यहां स्थित आतंकवादी गुटों के विरुद्ध कार्रवाई करे तथा उन्हें भारत पर हमले करने से रोके। विदेशमंत्री ने दो टूक कहा कि "मुंबई हमलों के नियंत्रक पाकिस्तान में ही थे और इस्लामाबाद को उनके विरुद्ध कार्रवाई करनी ही चाहिए।"

पाकिस्तान द्वारा फ़र्ज़ी टेलीफोन कॉल को लेकर किए गए प्रचार पर टिप्पणी करते हुए कहा कि "वह युद्धोन्माद फैला रहा है। भारत सरीखी बड़ी शक्ति की बाबत यह प्रचार कि वह हमला करना चाहता है दरअसल असल मुद्दे की ओर से ध्यान हटाने की कोशिश है। इस बात के अकाट्य सबूत हैं कि न सिर्फ़ मुंबई, बल्कि ऐसे ही कई अन्य हमलों का केंद्र भी पाकिस्तान ही है।" विदेशमंत्री ने कहा कि भारत में वांछित आतंकवादियों और अपराधियों को पाकिस्तान जानबूझ कर पनाह दे रहा है तथा बार-बार मांग किए जाने के बावजूद दाउद इब्राहीम को नहीं सौंप रहा है।

जैश-ए-मोहम्मद प्रमुख मौलाना मसूद अजहर को उसके घर में नज़रबंद किए जाने पर कटाक्ष करते हुए विदेश मंत्री ने कहा कि यह घर में नज़रबंदी क्या होती है। उन्होंने मांग की कि उसे न्यायिक या पुलिस हिरासत में रखा जाए। लश्कर-ए-तैयबा प्रमुख हाफ़िज सईद की गिरफ्तारी की भारत की मांग दोहराते हुए उन्होंने कहा कि "मुझे एक अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थ ने बताया था कि उसे गिरफ्तार कर लिया गया है, लेकिन दूतावास से सूचना है कि वह तो टीवी चैनलों पर इंटरव्यू दे रहा है।"

विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी की आशंका पर सरकार द्वारा मुद्दा संयुक्त राष्ट्र में उठाए जाने से कश्मीर मामले का अंतरराष्ट्रीयकरण हो सकता है, मुखर्जी ने कहा कि "सीमापार आतंकवाद को कश्मीर से जोड़ने के किसी भी प्रयास को ख़ारिज करने की

(शेषांश पृष्ठ 57 पर)

भारत में चुनाव – एक जबरदस्त हंगामा

● सतबीर सिलास बेदी
के.एन. कुमार

क्रिकेट और चुनाव न हों तो भारत को एक बेरौनक देश कहा जाता। भारत की सामूहिक चेतना पर इनकी पकड़ इतनी ज़ोरदार है कि बिना देखे इस पर यकीन करना मुश्किल होगा। एक अरब से ज्यादा आबादी वाले इस देश के लिये यह गनीमत की बात है कि थोड़े-थोड़े अंतराल से क्रिकेट मैच और चुनाव होते रहते हैं जिससे भारतीय समाज में नयी जान आती रहती है। जहां सबको अपने असर में लेने वाले क्रिकेट मैच एक दिन चलने वाले हो सकते हैं वहीं चुनावों का हंगामा क़रीब दो महीने तक जारी रहता है। अगर किसी को चुनाव के बारे में सिर्फ़ एक शब्दयुग्म बोल कर इसकी विशेषता बताने को कहा जाए तो यह शब्दयुग्म होगा – 'बेचैनी भरी लगन'। शोर-शराबा, उम्मीदें, भावुकता, गुस्सा, चिंता, खुशी सब कुछ चुनाव में एक साथ नज़र आते हैं। इन सब मानव भावनाओं को एक साथ संभालना अक्सर ही चुनाव प्रबंधकों के लिये एक टेढ़ी खीर बन जाता है। भारत की चुनाव प्रक्रिया में काम कर चुके किसी अधिकारी के लिये चुनाव संचालन का अनुभव किसी नव कलेवर धारण से कम नहीं होता।

भारत की चुनाव व्यवस्था में बहुमतधारी को विजेता घोषित किया जाता है और बाकी पीछे रह जाते हैं। आमतौर पर किसी विधायिका का कार्यकाल 5 वर्ष होता है और चुनाव हारने वाले अपनी हार के कारणों पर चिंतन-मंथन करते रहते हैं। निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव अधिसूचना जारी करने के दो महीने के अंदर केंद्रीय संसद अथवा राज्य विधायिका के लिये प्रतिनिधि चुनने का काम पूरा हो जाता है। इस दौरान उम्मीदवार मतदाताओं को अपनी विशेषताएं बताते हैं और मतदाता यह तय करते हैं कि उपलब्ध अनेक व्यक्तियों में से वे किसे चुनें। भारत में लोकतंत्र एक सतत प्रक्रिया है। यह कोई एकाएक आने वाला अवसर नहीं होता। मत डालते समय हर आम आदमी सिर्फ़ संसद का ही नहीं बल्कि हर लोकतांत्रिक संस्थान की सामाजिक लेखा परीक्षा करता है और उसका वोट पाकर वे सभी वैध बन जाते हैं। ग्राम स्तर की पंचायत, नगर निगम, राज्य विधायिका और संघीय संसद – सभी वैधता के लिये उसके वोट पर निर्भर करती हैं। यह कहना अन्यथा न होगा कि लोकतंत्र ऐसी अवधारणा है जिसकी जड़ें भारत में गहराई तक

जम चुकी हैं और जब भी वाद-विवाद होते हैं तो वे इस बात को लेकर होते हैं कि लोकतांत्रिक संस्थानों को कैसे सुदृढ़ किया जाए, न कि इसके बारे में कि इनके स्थान पर कैसे संस्थान सृजित किए जाएं। सिद्धांत रूप में अगर लोकतंत्र के विकल्प मौजूद हों भी तो एक औसत भारतीय के लिये इन पर विचार करना संभावना से बाहर की बात होती है। काफी लंबे अरसे से ऐसा ही चलता रहा है। भारत में सुशासन में जनता की भागीदारी कोई आधुनिक ज़माने की बात नहीं है। यहां अनादि काल से सामूहिक स्तर पर निर्णय प्रक्रिया चलती रही है। संविधान में सबके लिये वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करके संविधान निर्माताओं ने 1950 में ही राष्ट्रीय आधार पर चुनाव द्वारा सबकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का रास्ता खोल दिया था।

सार्वभौम वयस्क मताधिकार की भारतीय प्रणाली में भारत के 18 वर्ष से अधिक आयु वाले हर वयस्क को लिंग, जाति, धर्म, समुदाय या धर्म के आधार पर बिना किसी भेदभाव के मताधिकार प्रदान किया गया है और चुनाव प्रक्रिया के जरिये यह सुनिश्चित किया जाता है कि सभी इच्छुक मतदाताओं को निर्भय होकर स्वतंत्र रूप से वोट देने का अवसर मिले। भारत में वोट डालने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं है और यह नागरिकों का अधिकार है, कर्तव्य नहीं।

भारत में 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से 14 बार आम चुनाव और विधानसभाओं के 356 से भी अधिक चुनाव हो चुके हैं। देश में 543 चुनाव क्षेत्र हैं जहां से लोकसभा के लिये प्रतिनिधि चुने जाते हैं और 4,061 क्षेत्र हैं जहां से विधायकों का चुनाव होता है। 2004 के आम चुनाव में 67.15 करोड़ पंजीकृत मतदाता थे जिनमें 32.19 करोड़ महिलाएं थीं। अधिकतम मतदाता बाहरी दिल्ली क्षेत्र में थे। यहां 31 लाख मतदाताओं के नाम सूची में दर्ज़ थे। किसी संसदीय क्षेत्र में सबसे कम 37 हज़ार मतदाता लक्षद्वीप में थे।

इतनी बड़ी संख्या में मतदाताओं से संपर्क का प्रबंध करने में बड़ों-बड़ों के छक्के छूट सकते हैं। भारत में मतदाताओं की कुल संख्या कई देशों की आबादी से ज्यादा हो सकती है लेकिन मतदान का काम कानून सम्मत रूप से होता है और प्रक्रिया के अनुकूल किया जाता है। आमतौर पर यह शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न होता है। इसके लिये एक विस्तृत प्रक्रिया अपनाई जाती है। यह प्रक्रिया मतदान अनुभवों के आधार पर विकसित की गई है और अब स्थिर रूप धारण कर चुकी है। यह विस्तृत प्रलेखन, कार्मिकों के व्यवस्थित प्रशिक्षण और निर्वाचन आयोग की पैनी नज़र के तले विकसित प्रक्रिया से संभव हुआ है। इसको संपन्न कराने की संवैधानिक जिम्मेदारी भारत के निर्वाचन आयोग को दी गई है जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने का अधिकृत निकाय है।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि भारत जैसे देश में एक साथ कैसे निर्धारित समय सारणी के अनुसार चुनाव करा लिये जाते हैं जिसमें धरती की 4 प्रतिशत भूमि और 16 प्रतिशत आबादी आती है और जहां के भूभाग में पहाड़, रेगिस्तान, दूरदराज़ के द्वीप, मैदान, तटीय क्षेत्र और घने जंगल वाले प्रदेश शामिल हैं। पूरे देश में यह प्रक्रिया एक समयबद्ध तरीक़े से पूरी की जाती है। लोकसभा चुनाव की समय सारणी बनाते समय निर्वाचन आयोग फसल कटाई का समय, त्यौहारों की तारीख़ों स्कूल-कॉलेजों की परीक्षा, मौसम और विभिन्न प्रदेशों की कानून व्यवस्था की स्थिति का भी ध्यान रखता है। भारी संख्या में लोग आकर वोट डाल सकें, इसके लिये उक्त बातों का ध्यान रखा जाता है।

मतदाता बिना परेशानी वोट डाल सकें और इसके लिये उनहें ज्यादा दूर न जाना पड़े, इसके लिये कोशिश यह रहती है कि मतदान केंद्र उनके घर के पास हों। हर मतदान केंद्र के लिये सिर्फ़ उतने ही मतदाता निर्धारित किए जाते हैं जिनका प्रबंध आसानी से हो सके और उन्हें इंतजार भी न करना पड़े। 2004 में कुल मतदान केंद्रों की संख्या 6,87,402 थी। मतदान केंद्र खोलने में संसाधन लगत हैं - इनमें जनशक्ति और सामग्री शामिल है। इसके अलावा सभी तरह की प्रशासनिक सहायता उपलब्ध रखना होता है। चुनाव के दिन हर केंद्र पर 5 लोग भेजने होते हैं। मतपत्र, मतपेटियां, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन, न मिटने वाली स्याही और लेखन सामग्री भी हर केंद्र को उपलब्ध कराई जाती हैं।

हर मतदान केंद्र पर औसतन 1,000 से 1,200 तक मतदाता होते हैं। लेकिन कम आबादी वाले क्षेत्रों में काफी कम संख्या में मतदाता भी होते हैं। एक ऐसा भी मामला देखने में आया था जब अरुणाचल प्रदेश विधानसभा चुनाव में थिरिजिनो-बरागांव क्षेत्र में चाको में एक परिवार के तीन मतदाताओं के लिये केंद्र बनाया गया। लद्दाख में 5,000 मीटर की ऊंचाई पर एनले फू में दो मतदान केंद्र बनाए गए। आमतौर पर स्त्री-पुरुष मतदाताओं के लिये एक ही मतदान केंद्र होता है लेकिन कहीं-कहीं सामाजिक रीति-रिवाज़ और मान्यताओं के चलते महिलाओं के लिये अलग मतदान केंद्र भी बनाए जाते हैं।

द्वीप के मतदाताओं के लिये नावों पर चलते-फिरते मतदान केंद्र बनाए जाते हैं। राजस्थान के मतदाताओं के लिये मतदान केंद्रों के लिये ऊंटों से सामग्री पहुंचाई जाती है। असम के आंतरिक भागों में, जहां पहुंचने के लिये दुर्गम वन से हो कर जाना पड़ता है, सामग्री और कर्मचारी हाथी पर पहुंचाए जाते हैं। मध्य भारत के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में मतदान केंद्रों तक पहुंचने के लिये हेलीकॉप्टरों का इस्तेमाल किया जाता है।

भारतीय मतदाताओं के सामने उपलब्ध उम्मीदवारों में से एक को चुनना आसान नहीं होता। 1999 के आम चुनाव में 7 राष्ट्रीय पार्टियां, 40 राज्य स्तर के दल, 122 पंजीकृत (मान्यता रहित) दल और बड़ी संस्था में निर्दलीय शामिल थे जिनमें से मतदाताओं को एक का चुनाव करना था। कुल 4,648 उम्मीदवार 543 चुनाव क्षेत्रों से मैदान में थे। उत्तर प्रदेश के एक क्षेत्र में इनकी संख्या अधिकतम 32 थी। इस मामले में हाल के चुनाव सुधारों के बाद अब परिदृश्य बदला है। 1996 के आम चुनाव में एक ऐसा चुनाव क्षेत्र (नालगोंडा) आंध्र प्रदेश था जहां एक ही सीट के लिये 480 उम्मीदवार थे। 1996 के चुनाव के समय समाचारपत्र आकार के अथवा पुस्तिका के रूप में मतपत्र छपवाए गए थे। चुनाव के समय 8,000 मीट्रिक टन कागज़ ख़र्च हुआ जिस पर मतपत्र छापे गए।

भारतीय चुनावों की एक और विशेषता राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को चुनाव चिह्नों का आवंटन है। हालांकि भारत में साक्षरता दर में व्यापक वृद्धि हुई है लेकिन चुनाव चिह्न प्रणाली चुनावों का महत्वपूर्ण अंग बन गई है। शुरू में यह व्यवस्था इसलिये अपनाई गई थी ताकि निरक्षर मतदाताओं को कोई दिक्कत न हो। जैसे-जैसे समय बीतता गया, चुनाव चिह्न राजनीतिक दलों की पहचान बन गए। चुनाव चिह्न मतदाताओं में लोकप्रिय हैं और उसके कारण कोई भ्रम नहीं होता। 1991 में निर्वाचन आयोग ने तय किया था कि कोई चिड़िया अथवा पशु किसी दल को

चुनाव चिह्न के रूप में नहीं दिया जाएगा। कारण था सार्वजनिक सभाओं में पशु-पक्षियों के प्रति क्रूरता रोकना। अब केवल दो पशु, हाथी और शेर चुनाव चिह्न के रूप में मान्य हैं क्योंकि माना जाता है कि आकार में बड़ा होने के कारण इनके प्रति क्रूरता संभव नहीं है।

भारतीय चुनावों का मुख्य आकर्षण है चुनाव प्रचार। मतदाताओं को आकर्षित करने के लिये प्रचार अभियान में झंडों, पोस्टरों, बैनरों, ट्रैक्टरों, ट्रकों, बसों, बैलगाड़ियों, ऑडियो टेपों, बैग, टोपियों आदि का जमकर इस्तेमाल किया जाता है। अनेक पार्टियां अपनी ताक़त दिखाने के लिये रैलियां करती हैं। अब फिल्म स्टारों और कलाकारों को चुनाव प्रचार में शामिल किया जाने लगा है। इससे मतदाताओं को आकर्षित करने में मदद मिलती है तथा लोगों का मनोरंजन भी हो जाता है। प्रचार के दिनों में त्यौहार जैसा माहौल रहता है।

मतदान का दिन निर्णायक दिन होता है। इसी दिन जनतांत्रिक व्यवस्था के असली मालिकों, यानी मतदाताओं द्वारा उम्मीदवारों के भविष्य का फ़ैसला होता है। मतदाताओं को शांतचित्त होकर फ़ैसला करने का अवसर देने के उद्देश्य से मतदान के दिन सार्वजनिक अवकाश कर दिया जाता है। कानून में व्यवस्था है कि किसी भी काम, व्यापार, उद्योग आदि में लगे व्यक्ति को भी मतदान का अधिकार है अत: उस दिन सवेतन अवकाश होता है। केवल कुछ कर्मचारी वर्ग ऐसे अधिसूचित हैं जिन्हें डाक से वोट देने का अधिकार है। अन्य सभी को खुद जाकर मतदान करना होता है। इन दिनों केवल रक्षा कर्मचारियों को किसी अन्य के जरिये मतदान करने की सुविधा दी गई है।

मतगणना के लिये खुली और पारदर्शी प्रणाली अपनाई गई है जहां हर उम्मीदवार को मतगणना केंद्र पर अपना एजेंट भेजने की सुविधा है। एजेंटों द्वारा यह तसल्ली कर लेने पर कि हर मतदान पेटी/वोटिंग मशीन पर सील ठीक लगी है और उनसे कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है, मतपेटियां/मशीनें खोली जाती हैं। हर मतपत्र खोल कर मौजूद सभी एजेंटों को दिखाया जाता है, सत्यापित किया जाता है और इसके बाद गिना जाता है।

सभी मतों की गणना हो जाने के बाद ही परिणाम घोषित किए जाते हैं। अगर किसी भी मतपत्र पर कोई विवाद होता है तो पहले उसे निपटाया जाता है और उम्मीदवार की शिकायतों का समाधान किया जाता है तथा उन पर निर्वाचन आयोग की अनुमति प्राप्त कर ली जाती है। परिणामों की घोषणा के बाद एक बार फिर विजय रैली आदि होती है और विजेता खुशियां मनाते हैं।

चुनाव प्रक्रिया प्रबंधन के इस विशाल कार्य में लगभग 50 लाख सरकारी कर्मचारी लगाने पड़ते हैं। इन्हें विभिन्न मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों से चुनाव ड्यूटी के लिये लिया जाता है और चुनाव अवधि में वे भारत के निर्वाचन आयोग के प्रशासनिक नियंत्रण में रहते हैं। सरकारी अनुमानों के अनुसार 2004 के आम चुनाव पर कुल 1,300 करोड़ रुपये सरकार का ख़र्च हुआ था।

चुनाव के संपन्न हो जाने पर एक बात जो हर चुनाव में उभर कर विजेता के रूप में सामने आती है, वह है भारत के लोकतंत्र की अवधारणा। हर चुनाव के बाद यह एक बार फिर से सिद्ध हो जाता है कि लोकतंत्र भारत में गहरी जड़ें जमा चुका है। ❑

(सुश्री सतबीर सिलास बेदी दिल्ली की मुख्य निर्वाचन अधिकारी हैं तथा श्री के.एस. कुमार नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट, हैदराबाद के उपमहानिदेशक हैं)

SAROJ KUMAR'S
IAS ERA
IAS - 2009-10
GEOGRAPHY, G.S., HISTORY
With
SAROJ KUMAR
हिन्दी & English Medium
EXCLUSIVE P.T. COURSE - 2 Months
Special Batch for Day Scholars (Working)- Weekend & Holidays
FOUNDATION COURSE - 4-5 Months
MAINS - 3-4 Months
ADMISSION OPEN FOR ALL CLASSES
P.C.S. Special classes
Bihar, M.P., Chhatisgarh, Rajasthan, Uttarkhand, Jharkhand & West Benghal
TEST SERIES - 1 Month
POSTAL COURSE ALSO AVAILABLE
Contact:-
DR. VEENA SHARMA
SAROJ KUMAR'S IAS ERA
1/9, Roop Nagar, G.T. Karnal Road, Near Shakti Nagar Red Light, Above P.N.B. Near Delhi University North Campus Delhi-110007
Ph.: 011-64154427 Mob. : 9910360051, 9910415305
YH-1/09/3

चुनाव प्रचार
लोकतांत्रिक आदर्श और भारतीय अनुभव

● अभय कुमार दुबे

लोकतांत्रिक भारत में वर्ष 1952 में चुनावी अभियानों का सिलसिला शुरू हुआ था। और उस पहले अध्याय के बाद से ही भारत की चुनाव प्रचार प्रक्रिया औपचारिक प्रचार और अनौपचारिक सामाजिक नेटवर्किंग का एक रचनात्मक संगम रही है। चूंकि सामाजिक नेटवर्किंग विशिष्ट भारतीय सरज़मीं पर होती है, चुनाव प्रचार की औपचारिक विधि और उसके लहजे़ का उस बात से भिन्न होना स्वाभाविक है, जिसे लोकतांत्रिक चुनाव प्रचार के आदर्श के रूप में जाना जाता है। चुनाव प्रचार के भारतीय अनुभव की कहानी उन लोकतांत्रिक आदर्शों से कोसों दूर है जो लोकतंत्र के सिद्धांतकारों ने हमें सौंपी थी।

पहले आम चुनाव के चुनाव प्रचार के तरीक़े और आज जिस तरह से प्रचार किया जाता है, उनके बीच का अंतर स्पष्ट करने के लिये बेहतर होगा कि उस गैरकांग्रेसी उम्मीदवार की सत्यकथा सुनाई जाए, जिसने पचास के दशक के प्रारंभ में संसद का चुनाव लड़ा था। उस उम्मीदवार की विशेषताएं, उसके निर्वाचन क्षेत्र और राजनीतिक आदर्शवाद का यहां उल्लेख करना समीचीन होगा। अर्द्ध-शहरी पृष्ठभूमि वाले इस उम्मीदवार ने अपनी पूरी जवानी उपनिवेश विरोधी आंदोलन में खपा दी थी, जिसके दौरान भीड़ में भाषण देने की शानदार कला और लोगों से संपर्क बनाने के और अन्य तरीक़े उसने विकसित कर लिये थे। उसे कुछ-कुछ संगठनात्मक कार्यों की भी जानकारी थी। चूंकि वह बड़ी-बड़ी समाजवादी विचारधारा की बातें करता था, वह चंदा मांगने के लिये स्थानीय अथवा क्षेत्रीय सेठों के पास नहीं जा सकता था और न ही वह ग्रामीण क्षेत्रों में दबदबा रखने वाले पारंपरिक सामाजिक तत्वों के पास जा सकता था।

धनसंपत्ति के लिहाज़ से वह लगभग कंगाल था और अपनी राजनीतिक गतिविधियों के लिये पूर्णतया आम जनता से मिलने वाले दान पर ही निर्भर था। जैसे ही उसे अपने आदर्श डॉ. लोहिया से पार्टी का टिकट मिला, उस उम्मीदवार ने एक ऐसा प्रचार अभियान छेड़ने का निर्णय लिया जो उसके निकट प्रतिद्वंद्वी, कांग्रेसी उम्मीदवार की शैली और स्तर से बिल्कुल भिन्न था। कांग्रेसी उम्मीदवार न केवल जाना-माना स्वतंत्रता सेनानी था बल्कि क्षेत्र का अति सम्मानित नेता भी था। जिस उम्मीदवार की कथा यहां बताई जा रही है, उसने चुनाव प्रचार के अपने आदर्शों को बड़े स्पष्ट रूप से सबके सामने रखा। सर्वप्रथम, उसने अपने कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया कि जाति और समुदाय के आधार पर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने के लिये कोई अपील नहीं जारी की जाएगी। उसने घर-घर जाकर प्रचार करने को भी ग़लत बताया। जिस क्षेत्र से वह चुनाव लड़ रहा था, वह क्षेत्र आज के संसदीय क्षेत्र की तुलना में क़रीब तीन गुना बड़ा था। उसके पास केवल एक ही जीप थी और चुनाव कोष के रूप में चंद हज़ार रुपये। कार्यकताओं से कहा गया कि उन्हें अपना दैनिक ख़र्च का प्रबंध स्वयं ही स्थानीय लोगों से चंदा इकट्ठा कर, करना होगा। अंततोगत्वा, हमारा आदर्शवादी उम्मीदवार चुनाव हार गया परंतु चुनावी हार के अपमान से अपने आप को बचाने में सफल रहा। उसका प्रदर्शन उन 40 के क़रीब विपक्षी नेताओं के प्रदर्शन से काफी अच्छा रहा, जिन्होंने अपनी जमानत नहीं खोई थी। ध्यान रहे, उसके प्रतिद्वंद्वी के पास पांच जीप और विशाल चुनाव क्षेत्र में प्रचार कार्य के लिये ढेरों अन्य संसाधन भी थे। परंतु कांग्रेस उम्मीदवार की विजय का अंतर 10,000 मतों से अधिक नहीं था।

सिद्धांत और व्यवहार में अंतर

चुनाव प्रचार के विभिन्न पहलुओं पर मार्गदर्शी कार्य करने वाले एक विद्वान के अनुसार, चुनावी प्रचार अभियानों का विभिन्न दलों और उम्मीदवारों की नीतियों और कार्यक्रमों के प्रचार के माध्यम से आमतौर पर देश और संबंधित चुनाव की राजनीति और राजनीतिक मामलों से जुड़े विभिन्न मुद्दों के बारे में मतदाताओं को शिक्षित करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस विद्वान ने संभवत: अपने विचार प्रो. रजनी कोठारी के उस चर्चित प्रतिमान के आधार पर तय किए होंगे जिसके अनुसार पारंपरिक समाज का आधुनिकीकरण राजनीतिकरण के मार्ग से ही होता है। वे कहते हैं कि अधिकतम राजनीतिक संप्रेषण चुनाव प्रचार के दौरान ही होता है। चुनाव प्रचार के दौरान लोगों को विभिन्न नेताओं और दलों को प्रत्यक्ष रूप से सुनने का अवसर मिलता है। भारत के मतदाता

अधिकांशत: संचार और परिवहन सुविधाओं जैसी बुनियादी ज़रूरतों से परे दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले निरक्षर ग्रामीण होते हैं। चुनाव प्रचार के माध्यम से ही वे नेताओं और दलों के संपर्क में आते हैं और देश की राजनीति के विभिन्न पहलुओं के बारे में सीधे जानकारी प्राप्त करते हैं। आदर्श स्थिति तो यह होगी कि चुनावों में प्रचार अभियान के दौरान नेताओं और जनता के बीच की भौतिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं को मिटा दिया जाए तथा ऐसी स्थिति का निर्माण हो जिसमें लोग, आमतौर पर आसानी से अनुपलब्ध नेताओं से निर्भय होकर मुक्त रूप से संवाद कर सकें। प्रचार अभियान नेताओं और उनके दलों को अपने कार्यक्रमों और नीतियों को लोगों के सामने रखने का अवसर प्रदान करते हैं, यह दिखाते हैं कि वे अन्य लोगों से कितने भिन्न हैं और यह भी कि वे कैसे दूसरों की तुलना में स्थिति को बेहतर ढंग से सुधार सकते हैं। दूसरी ओर, मतदाताओं को भी दलों के संबंध में अपने विचार और दृष्टिकोण खुलकर रखने चाहिए तथा अपने व्यक्तिगत/सामूहिक हितों को पूरा करने के बारे में करार करना चाहिए। नेताओं से करार करते समय मतदाताओं को अपनी वे शर्तें स्पष्ट कर देनी चाहिए जिनके तहत वे उम्मीदवार को अपना समर्थन देंगे। उम्मीदवार बदले में उन्हें वादे पूरा करने का वचन देंगे।

प्रचार अभियान के जो सिद्धांत हैं, उनके अनुसार प्रतिस्पर्धी दलों और उम्मीदवारों पर राजनीतिक प्रणाली को कमज़ोर करने की बजाय उसे टिकाऊ बनाए रखने की महती जिम्मेदारी है। एक अन्य सिद्धांतवेत्ता के अनुसार, प्रणाली को बनाए रखने की जिम्मेदारी विशेष रूप से भारत के राजनीतिक अभिजातों के कंधों पर है। जब ये हस्तियां (राजनीतिक अभिजात) मतदाताओं का समर्थन मांगने के लिये होड़ में उतरती हैं, वे अपने प्रतिस्पर्धी की निगरानी और आलोचना का कार्य भी करती हैं। ये कार्य साधारण सक्रियता और रुचि वाले नागरिक शायद अपने लिये नहीं कर सकते।

चुनाव प्रचार का एक आलोचक चेतावनी देता है कि राजनीतिकरण की प्रक्रिया लोगों में पर्याप्त राजनीतिक प्रभावोत्पादकता पैदा कर देती है। यह कालांतर में रानीतिक उदासीनता पैदा कर देती है क्योंकि प्रचार के दौरान किए गए बड़े-बड़े वायदे शायद ही कभी पूरे किए जाते हों। संक्षेप में, यदि चुनाव प्रचार सही ढंग से लोकतांत्रिक सिद्धांतों और शर्तों के अनुसार किया जाए तो यह राजनीति को लंबी आयु दे सकता है। शनै: शनै: दलीय संगठनों के बिखरने के कारण भारत में चुनाव अब मामूली, तुच्छ मुद्दों पर लड़े जाते हैं और चुनाव प्रचारों में अब बड़ी गंदगी आ गई है। लोकतांत्रिक चुनाव प्रचार के सिद्धांतों और मूल्यों की परवाह किए बगैर, चुनाव में भाग लेने वाले 'महारथियों' ने केवल एक बात सीखी है : सफलता से बढ़ कर कुछ भी नहीं। इसलिये उन्हें वे तौर-तरीक़े और हथकंडे अपनाने में ज़रा भी संकोच नहीं होता जो उन्हें जीतने में मदद करे। अन्य मुद्दों को प्राय: टाल दिया जाता है और उन पर यदि कभी विचार किया तो सत्ता मिलने पर ही विचार किया जाता है, नेताओं द्वारा अपनी व्यक्तिगत शक्ति-संपत्ति का विस्तार और चुनाव थोपने की उनकी सनकभरी हरकतें, जिससे आसानी से बचा जा सकता है, और चुनाव के पहले व्याप्त सामाजिक और राजनीतिक स्थितियां, चुनाव प्रचार का लहज़ा तय करती हैं और विभिन्न प्रतिस्पर्धी दल और नेतागण अलग-अलग रणनीति अपनाते हैं। पहले के चुनावों में प्रचार अभियानों का अनिवार्य हिस्सा रही सैद्धांतिक बहसें अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं। यही हाल नीतियों और कार्यक्रमों का है। यद्यपि राजनीतिक दलों ने प्रत्येक चुनाव के लिये पृथक चुनावी घोषणापत्र जारी करने की प्रक्रिया अभी नहीं छोड़ी है, तथापि उसका अब कोई अर्थ नहीं रहा है। ऐसा मुख्य रूप से इसलिये है कि चुनाव प्रचार के प्रमुख खिलाड़ी यानी उम्मीदवार, जहां तक इन दस्तावेज़ों के महत्व को समझने का प्रश्न है, या तो निरक्षर होते हैं, या फिर ये दस्तावेज़ उनके उन तरीक़ों से मेल नहीं खाते जो वे जन समर्थन जुटाने के लिये प्राय: अपनाते हैं। ये तरीक़े प्राय: राजनीतिक होते हैं। इसके लिये राजनीतिक दल ही मुख्य रूप से दोषी हैं, क्योंकि वे ही अपने उम्मीदवारों के रूप में पूर्णतया गैरअनुभवी व्यक्ति को चुनते हैं। लोगों और राष्ट्र के आम हितों से जुड़े बड़े मुद्दों को भी उसी हिसाब से महत्व और प्रधानता नहीं मिलती। या तो उन्हें ताक पर रख दिया जाता है या फिर अपने फन में माहिर प्रचार अभियान चलाने वाली गैरराजनीतिक ताक़तें उन्हें दबा कर दफन कर देती हैं। नतीज़ा यह हुआ है कि आजकल के चुनाव अभियानों ने अपना शैक्षिक महत्व खो दिया है। अब के प्रचार अभियान तो लोगों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वालों द्वारा अपने क्षुद्र स्वार्थों की खातिर समाज और लोगों पर हमला कर उनको आपस में बांटने के लिये आयोजित किए जाते हैं।

भारतीय परिदृश्य के नये पहलू

भारत में चुनाव प्रचार के तौर-तरीक़ों के आलोचकों ने जो मुद्दे उठाए हैं उन पर गौर करने के पूर्व, मैं भारतीय राजनीति के उन नये पहलुओं पर प्रकाश डालना चाहूंगा जो हाल के दिनों में उभरे हैं और ऊपर वर्णित भटकाव में जिनका खासा योगदान रहा है। बिना इन नयी बातों पर विचार किए हम यह पता नहीं लगा सकते कि कथित भटकाव किस दिशा में जा रहा है या फिर पहले ही जा चुका है। क्या यह वास्तव में उतना ही नकारात्मक है जितना विश्लेषण कहता है, या फिर इसके कुछ सकारात्मक लक्षण भी हैं? ऐसा लगता है कि उपर्युक्त आलोचना अस्सी और नब्बे के दशकों के चुनावों के दौरान हुए अनुभवों के आधार पर की जा रही है। यह वह समय था जब राजनीतिक प्रणाली अनिश्चित रास्तों से गुजर रही थी। न केवल अर्थव्यवस्था बदल रही थी, दलीय प्रणाली भी कांग्रेसी प्रणाली के अंतिम बिखराव के बाद नयी रीति-नीति की तलाश में थी। पिछले पचासेक वर्षों से भी अधिक समय के चुनावी अनुभव पर आधारित हमारी दृष्टि अब पहले से अधिक संपन्न है। 1952 और 2007 के परिदृश्यों के बीच तीन प्रमुख अंतरों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है : प्रथम, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय मीडिया के अलावा इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट (अखबार आदि) मीडिया का बढ़ता प्रभाव। इससे चुनाव प्रचार के औपचारिक भाग में एक नया आयाम जुड़ गया है। व्यक्तिगत रूप से घर-घर जाकर प्रचार करने के बजाय अब मीडिया के जरिये प्रचार अभियान चलाया जाने लगा है। इनमें अख़बारों और टेलीविज़न का व्यापक उपयोग शामिल है। अख़बारों और टेलीविज़न पर ऐसे ढेरों विज्ञापन अब दृष्टिगोचर होने लगे हैं जिनमें किसी व्यक्ति अथवा दल के समर्थन में लोगों से वोट देने की अपील की जाती है। संवाददाता सम्मेलनों का उपयोग अब राजनीतिक दलों के प्रचार के मंच के तौर पर किया जाने लगा है। इसके अलावा, विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता विभिन्न राजनीतिक विषयों पर चर्चा के लिये अलग-अलग टेलीविज़न चैनलों पर भाग

लेते रहते हैं। इन चर्चाओं को राजनीतिक दलों के नेता प्रचार के अवसरों की तरह देखते हैं। इन सभी परिवर्तनों का अर्थ है कि व्यक्तिगत प्रचार प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक, दोनों ही प्रकार के मीडिया की सहायता से अब अधिक हाईटेक प्रचार अभियान की ओर मुड़ गया है। इन परिवर्तनों के पक्ष में झुकाव का एक प्रमुख कारण प्रचार अभियान के लिये मिलने वाले समय में कमी है। चुनाव के लिये अब तीन के स्थान पर केवल दो सप्ताह का समय ही मिलता है। चूंकि इस थोड़े से समय में ही उम्मीदवार अधिक से अधिक मतदाताओं के पास पहुंचना चाहते हैं इस वजह से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर उनकी निर्भरता हाल के दिनों में बढ़ गई है।

मेरे हिसाब से इस हाईटेक प्रचार अभियान के दो सकारात्मक पहलू हैं। पहला, अवैयक्तिक दृष्टिकोण का मैदान में वापस आने की संभावना। कुछ आलोचकों का यह कहना सही लगता है कि अस्सी और नब्बे के दशक में चुनाव प्रचार प्रत्याशी केंद्रित अधिक था और स्थानीय स्थितियों के हिसाब से चलता था। नतीज़तन, नीतियों और कार्यक्रमों तथा राष्ट्र और समाज की बेहतरी पर चर्चा नहीं हो पाती थी। परंतु मीडिया के राजनीतिक कार्यकलाप से एक तरह के राजनीतिक प्रवक्ता के उभरने की स्थिति पैदा हो गई है। यह राजनीतिक प्राणी पचास और साठ के दशक के जनप्रिय वक्ता जैसा तो नहीं है, परंतु राजनीतिक अभिव्यक्ति की एक शैली के रूप में हावी हो रहा है और राजनीतिक युग की उस आवश्यकता को पूरा करता है जिसमें भारत धीरे-धीरे प्रवेश करता जा रहा है। यहां ध्यान देने योग्य एक और बात है कि मीडिया के इस हस्तक्षेप पर होने वाला व्यय पार्टी का केंद्रीय या राज्यस्तरीय संगठन करता है। हाईटेक प्रचार अभियान का जो एक और लाभ हम सोच सकते हैं वह है भारत के दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों तक प्रचार की पहुंच, हाईटेक प्रचार दूरियों और अल्प विकास की बाधाओं को मिटा देता है।

मुझे विश्वास है कि ग्रामीण भारत भी इससे ज्यादा दिनों तक अछूता नहीं रहेगा और आने वाले समय में और अधिक लोगों तक टेलीविज़न पहुंच सकेगा। इन बदलती परिस्थितियों में यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि चुनाव प्रचार का तरीक़ा आगे और भी बदलेगा, वैयक्तिक प्रचार की जगह यह और अधिक अवैयक्तिक तथा तकनीक आधारित हो जाएगा। आज के मुकाबले मतदाताओं पर इसका और ज्यादा प्रभाव भविष्य में होगा।

परंतु इस निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाज़ी होगी कि हाईटेक चुनाव अभियान ने प्रचार की पारंपरिक शैली का स्थान ले लिया है, जिसमें टेलीविज़न, रेडियो और अख़बारों की बड़ी भूमिका है। ऐसे अनेक उदाहरण है जिनसे पता चलता है कि प्रचार की व्यक्तिगत शैली का अभी भी काफी प्रभाव है। राष्ट्रीय स्तर के चार सर्वेक्षणों से पता चलता है कि उम्मीदवारों, पार्टी कार्यकर्ताओं अथवा उनके समर्थकों ने चुनाव प्रचार के दौरान 50 प्रतिशत मतदाताओं से उनके घर जाकर संपर्क किया था। भारत जैसे देश में जहां लोकसभा के एक निर्वाचन क्षेत्र में औसतन क़रीब 12.5 लाख मतदाता होते हैं, प्रचार अभियान के दौरान क़रीब 6 लाख लोगों से उम्मीदवार अथवा उसके कार्यकर्ता मिले थे। इससे पता चलता है कि उच्च तकनीकी वाले अभियान के बावजूद उम्मीदवारों अथवा उनकी राजनीतिक पार्टियों ने घर-घर जाकर प्रचार करने की पारंपरिक शैली का परित्याग नहीं किया है। क़रीब एक चौथाई मतदाताओं ने इस बात की भी पुष्टि की कि उन्होंने उम्मीदवारों अथवा राजनीतिक दलों द्वारा आयोजित चुनावी जनसभाओं में भी भाग लिया था। यद्यपि अधिकांश मतदाताओं ने केवल एक या दो जनसभाओं में ही भाग लिया था, परंतु तथ्य इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कम से कम 2004 के लोकसभा चुनावों तक मतदाताओं ने चुनाव प्रचार की गतिविधियों में काफी हद तक दिलचस्पी दिखाई है।

एक ऐसे सामाजिक-राजनीतिक माहौल में जहां क़रीब 75 प्रतिशत संसदीय क्षेत्र प्रधानत: ग्रामीण हों, (कुछ तो पूरी तरह से ही ग्रामीण क्षेत्र हैं), टेलीविज़न आधारित उच्च तकनीकी मीडिया अभियान इतनी जल्दी पारंपरिक शैली का स्थान नहीं ले सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोगों की राय बनाने में मीडिया अहम भूमिका अदा करती है, परंतु इसी के साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे और भी साधन हैं जो नये हाईटेक तौर-तरीक़ों के मुक़ाबले कहीं बेहतर ढंग से लोगों की राय बनाने का काम कर सकते हैं। लोकसभा के 2004 में हुए चुनाव नतीज़ों ने दिखा दिया है कि जिन दलों ने हाईटेक प्रचार अभियान का सहारा लिया उनकी स्थिति कोई खास अच्छी नहीं रही। तेलुगू देशम पार्टी (आंध्र प्रदेश) ने उच्च तकनीक आधारित प्रचार अभियान छेड़ा था, मगर वह बुरी तरह चुनाव हार गई, जबकि बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) और राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) जो चुनाव प्रचार के लिये टेलीविज़न पर खास निर्भर नहीं थे, ने शानदार प्रदर्शन किया।

दूसरे, भारत की जनता का राजनीतिकरण पिछले कुछ वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ता हुआ काफी उच्च स्तर पर आ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन वर्षों में देश में राजनीतिक समुदाय ने जड़ें पकड़ ली हैं और लोगों में काफी राजनीतिक चेतना आ गई है। इस असाधारण घटना के उदाहरण के तौर पर दलितों, मुसलमानों, यादवों, रेड्डियों, कामा जाति के लोगों, पटेलों, कोलियों आदि के मतदान व्यवहार और पद्धति को लिया जा सकता है। ये राजनीतिक समुदाय जाति के आधार पर खड़े हुए हैं। अनुकूल क्षेत्रीय नेतृत्व ने उन्हें राजनीतिक रूप से और युक्तिसंगत बना दिया है। इन आधुनिक राजनीतिक समुदायों को ज्यादातर कुछ लोकतांत्रिक कार्यक्रमों के इर्दगिर्द संगठित किया जाता रहा है और यह राज्य के संसाधनों में अपना हक़ मांगने का भोंडा रूप भी हो सकता है। यहां उन्हें पुराने तरीक़े के वोट बैंक से अलग करके देखा जाना ज़रूरी है, क्योंकि उनकी स्थितियां तय करती हैं कि उनका नेतृत्व कैसा होगा, न कि इसका उल्टा। उत्तर प्रदेश के हालिया चुनावों में लोधी और कुर्मी नेतृत्व का क्या हश्र हुआ, यह तथ्य इसी बात का उदाहरण है। इस असाधारण घटना का परिणाम यह हुआ है कि चुनाव प्रचार का अनौपचारिक रूप से संपर्क स्थापित करने का तरीक़ा पूर्ण रूप से बदल गया है। यह ख़तरा बराबर बना हुआ है कि किसी खास राजनीतिक पसंद के लिये परिचित राजनीतिक समुदाय की अन्य राजनीतिक हित पूर्ण रूप से अनदेखी कर सकते हैं। व्यवहार में यह नियमित रूप से होता है, क्योंकि ये समुदाय चुनाव प्रचार शुरू होने के पहले ही अपने चुनावी पसंद की रणनीति बना लेते हैं। कुछ सकारात्मक संकेतक भी हैं। उत्तर प्रदेश के पिछले चुनाव में बीएसपी एक शक्तिशाली सामाजिक गठबंधन बनाने में सफल रही और अपना औपचारिक प्रचार बड़ी दृढ़ता से इसी आधार पर चलाया। राजनीतिक समुदायों के उभरने के बगैर इसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। दलित राजनीतिक समुदाय की

ठोस शक्ति के आधार पर बीएसपी अन्य सामाजिक समूहों से अधिक प्रगतिशील तत्वों को अपनी ओर खींचने से सफल रही। उनका प्रचार अभियान मुश्किल से ही दिखाई देता था तथा समाजवादी पार्टी सहित हाईटेक मीडिया की समझ रखने वाली दो राष्ट्रीय पार्टियों की तुलना में कम संसाधनों पर चलाया गया। बीएसपी के लिये, सामाजिक नेटवर्किंग ने एक व्यावहारिक रंग ले लिया था जिसने सामाजिक दरारों को बनाए रखने के बजाय उसको भरने का काम किया। इससे यह भी संदेश मिलता है कि यदि सामाजिक नेटवर्किंग का सिलसिला आगे बढ़ाया जाए तो चुनावों में ख़र्च कम हो सकता है। परंतु बीएसपी की यह सफ़लता भविष्य के अनौपचारिक नेटवर्किंग के बारे में पर्याप्त संकेत नहीं देती। यह मुख्यत: चुनाव प्रचार का अलिखित पहलू ही बन कर रह जाता है। ऐसा लगता है कि गुजरात विधानसभा के आगामी चुनावों में राजनीतिक समुदायों की यह विलक्षणता रंग दिखाएगी। यदि पटेल और कोइली समुदाय मिलकर काम करें तो वे चुनाव नतीज़ों को प्रभावित कर सकते हैं।

राजनीतिक समुदायों के इस अभ्युदय के कारण, भारतीय मतदाता पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न दलों के प्रति और भी अधिक प्रतिबद्ध हो गए हैं। ऐसे मतदाताओं की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, जो चुनाव प्रचार शुरू करने के काफी पहले ही अपने वोट के बारे में फ़ैसला कर लेते हैं। ऐसे मतदाताओं की संख्या 1996 में 28 प्रतिशत थी जो 2004 में बढ़कर 54 प्रतिशत हो गई। इससे पता चलता है कि हाल के वर्षों में विभिन्न राजनीतिक दलों के बारे में मतदाताओं की प्रतिबद्धता बढ़ गई है। ऐसे अस्थिर मन वाले मतदाताओं की संख्या में कमी आई है जो अपनी राजनीतिक पसंद के बारे में मतदान के दिन या उसके एक दिन पूर्व ही फ़ैसला करते हैं। लोकसभा के 1996 के चुनावों में क़रीब 72 प्रतिशत मतदाताओं ने अपनी राजनीतिक पसंदगी के बारे में फ़ैसला प्रचार खत्म होने के बाद किया था, जबकि 2004 के लोकसभा चुनावों में जिन लोगों ने प्रचार अभियान से प्रभावित होकर अपना राजनीतिक पसंद तय किया, उनकी संख्या घट कर कुल 46 प्रतिशत ही रह गई। यह कहा जा सकता है कि ऐसे मतदाताओं की संख्या जो मत देने के बारे में अपना निर्णय चुनाव अभियान के दौरान ही लेते हैं, अभी भी काफी है, क्योंकि क़रीब 50 प्रतिशत मतदाता अपनी राजनीतिक पसंद के बारे में फ़ैसला चुनाव प्रचार के दौरान ही लेते हैं। मतदाताओं का यही वर्ग, वास्तव में चुनाव नतीज़े तय करता है। और अंत में, भारतीय चुनावों की वित्तीय व्यवस्था का मुद्दा आता है। निर्वाचन आयोग ने 13वीं लोकसभा के चुनावी व्यय के पहलुओं का अध्ययन करने के लिये एक अध्ययन कराया था। इस अध्ययन के निष्कर्षों से स्थापित हो जाता है कि 1952 के युग का हमारा आदर्शवादी उम्मीदवार अब इतिहास के पन्नों में खो चुका है और अब कभी नहीं लौटेगा। व्यय और प्राप्त वोटों की संख्या के बीच स्पष्ट संबंध दिखाई देता है। जो जितना अधिक ख़र्च करता है, नतीज़े भी उतने ही बेहतर होंगे। औसत विजेता 82.87 लाख रुपये ख़र्च करता है और पराजित उम्मीदवार (मुख्य प्रतिद्वंद्वी) 68.09 लाख रुपये ख़र्च करता है। यदि कोई जमानत को बचाना चाहता है तो 73 लाख रुपये ख़र्च करना ज़रूरी है। निर्वाचन आयोग समय-समय पर चुनावी व्यय की सीमा तय करता रहता है जो अंतत: अयथार्थवादी सिद्ध होते हैं। जब तक पार्टी और समर्थकों द्वारा किए जाने वाले व्यय को उम्मीदवार के कुल व्यय में शामिल नहीं किया जाता, इन उपायों से वांछित लाभ नहीं मिलेगा। कंपनियों द्वारा वित्तीय सहायता देने का सुझाव अभी शुरू नहीं हुआ है, क्योंकि व्यापारिक घराने चंदा देने का अपना तरीक़ा पारदर्शी नहीं बनाना चाहते। ग्रामीण-शहरी चुनाव क्षेत्रों की प्रवृत्तियों से पता चलता है कि शहरी क्षेत्रों से चुनाव लड़ने में ज्यादा संसाधन लगते हैं। इस अध्ययन के निष्कर्ष इस तथ्य से मर्यादित होने चाहिए कि ये व्यय आम तौर पर सामान्य चुनावों से संबंधित हैं जबकि 'लहर' वाले चुनाव एक अलग ही धरातल पर लड़े जाते हैं। लहर पर सवार उम्मीदवार बिना कुछ ज्यादा ख़र्च किए ही जीत सकता है। परंतु लहर वाले चुनाव लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति में बार-बार नहीं हो सकते, और होने भी नहीं चाहिए। ❑

(**लेखक पत्रकार रहे हैं और इस समय** सेंटर फॉर डेवलपिंग सोसायटीज़, **दिल्ली के भारतीय भाषा कार्यक्रम के संपादक हैं।**
ई-मेल : abhaydube2001@yahoo.com)

योजना

फरवरी 2009

अंक

उपभोक्ता अधिकार पर केंद्रित

मूल्य : 10 रुपये मात्र अपनी प्रति सुरक्षित कराएं

राजनीति का अपराधीकरण

● एस.के. मेंदीरत्ता

लेखक का मानना है कि राजनीति के अपराधीकरण से प्रभावी ढंग से निपटने के लिये इतना तो किया ही जा सकता है कि जिन लोगों पर हत्या, डकैती, दंगा जैसे नैतिक पतन और घृणित अपराधों का मुकदमा चल रहा हो, और जिनके मामलों में न्यायालय ने संज्ञान ले लिया है तथा आरोप लगाए जा चुके हैं, उन्हें तब तक चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक उन्हें आरोप मुक्त नहीं किया जाता

यह निर्विवाद तथ्य है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक राष्ट्रों में इसे सबसे स्थिर लोकतंत्रों में शुमार किया जाता है। लक्ष्मी चरण सेन और अन्य बनाम ए.के.एम. हसनुज़्ज़मां और अन्य (एआईआर 1985 एस.सी. 1233) के मामले में उच्चतम न्यायालय के कथनानुसार, "भारत तो लोकतंत्र का नखलिस्तान है, समसामयिक इतिहास की सच्चाई।" यह बात तब और अधिक सच लगती है विशेषकर जब हम अपने उन पड़ोसी देशों की ओर देखते हैं जिन्होंने कमोबेश भारत की स्वतंत्रता के आसपास ही आज़ादी पाई। बावजूद इसके क्या हम दावे से कह सकते हैं कि हम सभी बुराइयों से मुक्त एक आदर्श लोकतंत्र हैं? संभवत: नहीं। दरअसल, कोई भी प्रणाली, चाहे वह चुनाव आधृत हो या अन्य, कभी भी किसी क्षेत्र में पूर्णता का दावा नहीं कर सकती। हमारी निर्वाचन प्रणाली भी कुछ ऐसी ही है।

हमारी चुनावी प्रणाली मुख्यत: तीन 'एम' मनी पावर (धनशक्ति), मसल पावर (बाहुबल) और मिनिस्टीरियल पावर (मंत्रिपद की ताकत अर्थात सरकारी तंत्र का दुरुपयोग) से पीड़ित है। इसे तीन 'सी' – कैश (पैसा), क्रिमिनल्स (अपराधी, बाहुबली) और करप्शन (भ्रष्टाचार) भी कहा जा सकता है। निर्वाचन आयोग द्वारा आदर्श चुनाव आचार संहिता पर सख़्ती और प्रभावी ढंग से अमल कराए जाने के कारण सरकारी तंत्र के दुरुपयोग पर अब काफी हद तक रोक लग गई है क्योंकि निर्वाचन आयोग चुनावों के दौरान सत्तारूढ़ दल अथवा सत्तारूढ़ गठबंधनों द्वारा सरकारी शक्ति के दुरुपयोग पर कड़ी नज़र रखता है। आयोग द्वारा उठाए गए कुछ रचनात्मक क़दमों के फलस्वरूप धनशक्ति के उपयोग पर भी प्रभाव पड़ा है। निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के ख़र्च पर नज़र रखने के लिये पर्यवेक्षकों की

नियुक्ति करता है। ये पर्यवेक्षक सहित अखिल भारतीय सेवाओं से लिये जाते हैं और चुनाव के दौरान उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों अथवा उनके अधिकृत एजेंटों द्वारा किए जाने वाले व्यय पर कड़ी नज़र रखते हैं। आयोग के निर्देशों और दिशा-निर्देशों के अंतर्गत राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के तड़क-भड़क वाले ख़र्चों पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए हैं। इनमें स्वागत द्वार खड़ा करने, नारे लिखकर अथवा पोस्टर चिपकाकर सार्वजनिक और निजी संपत्ति को विरूपित करने पर रोक आदि शामिल है।

परंतु चुनाव में बेईमानी करने के लिये बाहुबल का बढ़ता दुरुपयोग न केवल निर्वाचन आयोग के लिये चिंता का विषय है, बल्कि समूचे राष्ट्र के लिये भी चिंता का सबब है। जनता और मतदाता सभी राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण से गंभीर रूप से चिंतित हैं। सक्रिय राजनेता 1970 के उत्तरार्द्ध तक मतदाताओं को डरा-धमका कर और जबरन बूथों पर कब्ज़ा कर चुनाव जीतने के लिये अपराधियों और स्थानीय 'दादा' किस्म के लोगों का इस्तेमाल किया करते थे। एक बार जब इन अपराधी और असामाजिक तत्वों को यह लगने लगा कि नेता लोग उनकी सहायता से ही जीतते हैं, तो वे स्वयं ही चुनाव मैदान में उतरने लगे। उनकी निगाह में यह एक सर्वोत्तम व्यवसाय है, जो न केवल उन्हें राज्य (सरकार) की शक्ति प्रदान करेगा, बल्कि उनकी अन्य 'गतिविधियों' के लिये राज्य का संरक्षण और सुरक्षा भी प्रदान करेगा।

अपराधी कौन है, यह परिभाषित करना कठिन है। मुख्यत: पश्चिम से अनुप्रेरित भारतीय न्याय प्रणाली के अंतर्गत, कोई भी व्यक्ति तब तक निर्दोष होता है जब तक न्यायालय उसे अपराधी न ठहराए। परंतु आम आदमी की धारणा कुछ और ही है। उसकी नज़रों में वह व्यक्ति भी जिस पर किसी अपराध के आरोप में मुकदमा चल रहा हो, वह भी अपराधी है। वह माफिया, डॉन, हिस्ट्रीशीटर अथवा विभिन्न दुष्टतापूर्ण गतिविधियों में शामिल कुख्यात बदमाश को भी अपराधी मानता है। वह यह कतई नहीं हजम कर पाता कि हत्या, बलात्कार, डकैती, फिरौती, भयादोहन अथवा सार्वजनिक धन की हेराफेरी जैसे घृणित अपराधों का आरोपी न्यायिक फ़ैसला सुनाए जाने से पूर्व ही संसद या विधानसभा, या किसी भी निर्वाचित संस्था में, महज इस आधार पर उसका प्रतिनिधित्व करना चाहे कि मुक़दमे में समय लग रहा है।

वर्तमान कानून इस तरह के लोगों को चुनाव मैदान से दूर रखने की लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में अपर्याप्त है। वर्तमान कानून (जन प्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 8) में प्रावधान है कि किसी भी व्यक्ति को संसद अथवा राज्य विधानसभा का चुनाव लड़ने से केवल उसी समय अयोग्य घोषित किया जा सकता है, जब वह अपराधी करार दिया जा चुका हो। इसी धारा 8 के अंतर्गत, अधिकांश मामलों में केवल अपराधी करार दिया जाना ही अयोग्य घोषित करने के लिये पर्याप्त नहीं है, उसे एक निश्चित अवधि के लिये कैदी बनकर सजा भी काटनी होगी। धारा 8 की सामान्य दफा में अपराधी करार दिए जाने और कम से कम दो वर्ष की क़ैद की सजा के बाद ही अयोग्य घोषित किए जाने का प्रावधान है।

विडंबना है कि 1997 के पहले, तमाम खामियों और कमज़ोरियों के बावजूद वर्तमान कानून पर भी ईमानदारी से अमल नहीं किया जा रहा था। आश्चर्य की बात है कि इस विचार को मान्यता दी जा रही थी कि धारा 8 के तहत कोई भी व्यक्ति अपराधी तभी घोषित हुआ माना जाएगा जब अपीली अदालत उसे ऐसा घोषित करे, प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी घोषित करना पर्याप्त कारण नहीं है। इस प्रकार, हत्या, डकैती, उग्रवादी कृत्यों जैसे घृणित अपराधों के दोषी भी अपील के लंबित होने के दौरान, मजे से चुनाव लड़ रहे होते थे। जब तक निर्वाचन आयोग ने इस विषय पर दिए गए अदालतों के फ़ैसलों का व्यापक परीक्षण नहीं कराया, किसी ने इस मामले में वैधानिक स्थिति का पता लगाने की कोशिश भी नहीं की। निर्वाचन आयोग ने पाया कि कम से कम तीन उच्च न्यायालयों - इलाहाबाद, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश साफ़तौर पर और बिना किसी संदेह के यह फ़ैसला दे चुकी हैं कि केवल जमानत मिलने से ही जन प्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 8 के अंतर्गत अपराधी ठहराए जाने पर, अयोग्यता की स्थिति समाप्त नहीं हो जाती और इस तरह के अपराधी को अयोग्य ही माना जाएगा। बाद में पता लगा कि मुंबई उच्च न्यायालय का भी यही दृष्टिकोण था। आयोग ने 28 अगस्त, 1997 को घोषित किया कि संसद और विधानसभाओं के चुनाव लड़ने के लिये संबंधित धारा 8 के अंतर्गत अयोग्य घोषित होने की तारीख की शुरुआत उसी दिन से मानी जाएगी जब प्राथमिक अदालत ने उसे सजा सुनाई थी, भले ही वह अपनी अपील/पुनिर्विचार के प्रार्थनापत्र पर सुनवाई के दौरान जमानत पर छूटा हुआ हो।

इस घोषणा पर प्रभावी ढंग से अमल के लिये आयोग ने यह निर्देश भी जारी किया कि अब उम्मीदवारों को आयोग द्वारा निर्धारित प्रपत्र में हलफनामे (शपथपत्र) के साथ, अपने अपराधों के बारे में घोषणा करनी पड़ेगी। आयोग ने सभी पीठासीन अधिकारियों को यह स्पष्ट कर दिया कि इस तरह की घोषणा और शपथपत्र न देने वाले उम्मीदवारों का नामांकनपत्र यदि वे निरस्त करते हैं तो वे पूर्णतया उचित कर रहे होंगे। प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी करार दिए जाने की तारीख से ही अयोग्य ठहराए जाने के बारे में आयोग ने धारा 8 के तहत जो नज़रिया अपनाया था, उसके बारे में कुछ लोगों ने संदेह जताया था। परंतु उच्चतम न्यायालय ने बी.आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (एआईआर 2001 एससी 3435) (कु. जे. जयललिता को अयोग्य घोषित करने वाले मुक़दमे के रूप में चर्चित) तथा के. प्रभाकरण बनाम टी. जयराजन (एआईआर 2002 एससी 3393) के मामलों में स्पष्ट कर दिया कि अपराध के कारण अयोग्य घोषित होने की शुरुआत प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी घोषित किए जाने की तिथि से ही लागू मानी जाएगी। परंतु उच्चतम न्यायालय ने बाद में नवजोत सिंह सिद्धू बनाम पंजाब राज्य [2007 (टीएलएस) 43432] मामले में कहा कि यदि अपीली अदालत ने न केवल सजा देने पर रोक लगा दी है और जमानत दे दी है, बल्कि अपील की सुनवाई के दौरान अपराधी ठहराए जाने पर भी रोक लगा दी है, तो अपराध के कारण अयोग्यता पर भी तब तक रोक लगी रहेगी।

कानून में एक और ऐसा प्रावधान है, जिस पर कई लोगों की भृकुटि तन जाती है। कानून [धारा 8(4)] कहता है कि यदि अपराध घोषित होने की तारीख में अपराधी, संसद अथवा विधान मंडल का सदस्य होता है, तो उस मामले में अयोग्यता तत्काल प्रभाव से लागू नहीं होगी, बल्कि उसे कम से कम तीन महीने के लिये स्थगित कर दिया जाएगा। और, यदि इस तीन महीने की अवधि के दौरान, घोषित अपराधी

महज अपील या पुनर्विचार की याचिका दायर कर देता है, तो उस पर अपील अथवा पुनर्विचार याचिका के निपटारे तक अयोग्यता लागू नहीं होगी। निवर्तमान विधायकों के बारे में इस तरह का उदार दृष्टिकोण समझ से परे है। वास्तव में, कानून को तो इस तरह के व्यक्तियों के प्रति, जो कानून के निर्माता होते हैं और जिनसे समाज को अनुकरणीय और बेदाग चरित्र की अपेक्षा होती है, ज्यादा सख़्ती दिखानी चाहिए। गनीमत है कि के. प्रभाकरन बनाम टी. जयराजन (सुप्रा) मामले में उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त प्रावधान का प्रभाव यह कहते हुए कुछ सीमित कर दिया है कि धारा 8(4) के तहत वर्तमान संसद सदस्यों और विधानमंडल के सदस्यों को प्राप्त अयोग्यता से सुरक्षा का यह प्रावधान उनको वर्तमान सदन की सदस्यता के दौरान ही प्राप्त होगा, भविष्य में लड़े जाने वाले चुनावों के लिये नहीं। इसे पहले वे कानून द्वारा प्रदत्त आजीवन उपहार मानते थे।

चुनावी मुक़ाबलों के सुधार के मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक और प्रशंसनीय योगदान किया है। शीर्ष न्यायालय ने निर्वाचन आयोग को सभी उम्मीदवारों से उनकी परिसंपत्तियों, देनदारियों और शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ अपराधों की पूर्ववर्ती जानकारी यदि कोई हो तो, प्राप्त करने के निर्देश दिए हैं। यूनियन ऑफ भारतीय संघ बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म्स एंड अदर्स (एआईआर 2002 एससी 2112) और पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स (एआईआर 2003 एससी 2363) मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 'लोकतंत्र में सूचना प्राप्त करने के अधिकार को सभी जगह मान्यता प्राप्त है और इसे लोकतंत्र की धारणा से प्रवाहित प्राकृतिक अधिकार माना जाता है' और यह कि "मतदाता (आम नागरिक) का संसद या विधानसभा के अपने उम्मीदवार के आपराधिक अतीत सहित पुराने इतिहास को जानने का अधिकार, लोकतंत्र के बने रहने के लिये कहीं अधिक मौलिक और बुनियादी है। आम आदमी को कानून तोड़ने वाले को कानून बनाने वाले के रूप में चुनने के पहले सोचने का मौका मिलना चाहिए।" उच्चतम न्यायालय के इस आदेश के अनुसरण में निर्वाचन आयोग ने सभी उम्मीदवारों को उन सभी आपराधिक मामलों की जानकारी देने को कहा है जिनमें उन्हें पूर्व में अपराधी घोषित किया गया था अथवा न्यायालय द्वारा लगाए गए आरोपों का संज्ञान लेने के बाद उन पर मुक़दमा चल रहा है। यह जानकारी एक निर्धारित प्रपत्र में शपथपत्र के साथ देना होता है। शपथपत्र नहीं दाखिल करने की स्थिति में उसका नामांकनपत्र निरस्त किया जा सकता है। उम्मीदवारों द्वारा दी गई इस जानकारी का जनसंचार के सभी माध्यमों द्वारा प्रसारित किया जाता है। चुनावों पर नज़र रखने वाले गैरसरकारी संगठनों के माध्यम से प्रचारित करने के अलावा इसे आयोग की वेबसाइट पर प्रकाशित किया जाता है।

मौजूदा कानून के तहत चुनावी मुक़ाबलों से अपराधी तत्वों को बाहर रखने के अपने प्रयासों के तहत, आयोग ने 2005 में यह आदेश जारी किया कि जिन लोगों के ख़िलाफ़ अदालतों द्वारा जारी गैरजमानती वारंट पर 6 महीने या अधिक समय से अमल नहीं किया गया है, उनके नाम मतदाता सूचियों से यह मानते हुए हटा दिए जाएं कि मतदाता सूची में दिए गए पते पर वे आमतौर पर नहीं रहते। ऐसा करने का अर्थ है कि इस तरह का व्यक्ति न तो चुनाव लड़ सकता है और न ही मतदान कर सकता है, क्योंकि मतदाता सूची में मतदाता का पंजीकरण चुनाव लड़ने अथवा मतदान की पहली योग्यता है। आयोग के इस तरह के आदेश को देखते हुए अनेक फरार आरोपियों ने न्यायालय के समक्ष समर्पण किया है।

यह देखते हुए कि जब तक कानून में संशोधन नहीं होता, आयोग इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता, उसने राजनीतिक दलों से बारंबार अपील की कि वे चुनावों में सिर्फ़ स्वच्छ, सार्वजनिक छवि रखने वाले अच्छे उम्मीदवारों को ही उतारें। दुर्भाग्य से अधिकांश मामलों में इन अपीलों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और अपने दुष्कर्मों के लिये कुख्यात लोगों को अनेक दलों ने चुनाव मैदान में उतारा। इनमें राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त दल और राज्यस्तरीय दल भी शामिल हैं।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सही इलाज तो कानून में परिवर्तन से ही होगा, क्योंकि कानून ने ही इन आपराधिक और असामाजिक तत्वों को चुनावी मैदान में उतरने की अनुमति दे कर निर्वाचन प्रक्रिया की शुद्धता को कलुषित किया है। यदि राजनीति का अपराधीकरण समाप्त करना संभव न हो तो उससे प्रभावी ढंग से निपटने के लिये कम से कम इतना तो किया जा सकता है कि जिन लोगों पर हत्या, डकैती, दंगा जैसे नैतिक पतन और घृणित अपराधों का मुक़दमा चल रहा हो, और जिनके मामलों में न्यायालय ने संज्ञान ले लिया है तथा आरोप लगाए जा चुके हैं, उन्हें तब तक चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक उन्हें आरोप मुक्त नहीं किया जाता। दरअसल, इस तरह का एक सकारात्मक सुझाव निर्वाचन आयोग ने 1998 में दिया था कि वे व्यक्ति जो गंभीर आपराधिक मामलों के आरोपी हैं और जिन्हें जुर्म साबित होने पर पांच वर्ष या अधिक की कैद की सज़ा हो सकती है तथा जिनके मामलों में अदालतों ने आरोप तय कर दिए हों, उन्हें उनके मुकदमे के निपटारे तक चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। आयोग की दृष्टि में यह जनहित में एक उचित प्रतिबंध था। चुनाव लड़ने के अधिकार के बारे में इस विचार को माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक वैधानिक अधिकार माना था। यहां यह कहना अनावश्यक है कि जनहित में उचित प्रतिबंध लगाकर मौलिक अधिकारों तक को सीमित किया जा सकता है। विधि आयोग ने भी मई 1999 में अपनी 170वीं रिपोर्ट में कमोबेश इसी प्रकार की सिफारिश की थी। निर्वाचन आयोग और विधि आयोग की सिफ़ारिशों को गृह मंत्रालय द्वारा संसद की स्थायी समिति के समक्ष रखा गया था। स्थायी समिति ने मार्च 2007 में संसद में रखी गई अपनी रिपोर्ट में इस निरर्थक तर्क के आधार पर कि जब तक अपराधी घोषित नहीं किया जाता, कोई भी व्यक्ति निर्दोष है, उपर्युक्त सिफ़ारिश को ठुकरा दिया। क्या यह विरोधाभासी नहीं है कि मामूली अपराधों का आरोपी होने पर जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 62(5) के तहत अभियोगाधीन कैदी का स्वतंत्रता के सबसे प्रमुख मौलिक अधिकार, स्वतंत्रतापूर्वक आने-जाने, परिवार के साथ रहने और अपनी पसंद का व्यवसाय चुनने का अधिकार और यहां तक कि उसका मताधिकार भी छीन लिया जाता है अथवा निलंबित कर दिया जाता है? परंतु उसे चुनाव लड़ने से रोका नहीं जा सकता। आखिर उसके चुनाव लड़ने के अधिकार और संसद तथा विधान मंडलों में लाखों लोगों का प्रतिनिधित्व करने की इस इच्छा के पीछे कौन-से पवित्र कारण हैं? ❑

(लेखक भारत के निर्वाचन आयोग के कानूनी सलाहकार हैं।

ई-मेल : mandiratta.sk@eci.gov.in)

लोक प्रशासन (हिन्दी माध्यम) में सर्वोच्च स्थान के बाद एक बार फिर सर्वोच्च अंक

गिरिवर दयाल सिंह
390
(183/207)

मुकेश बहादुर सिंह : 342 (157/185)
अजय हिलौरी : 338 (151/187)
बलराज मीणा : 333 (160/173)
अनुभव वर्मा : 330 (.../...)
राजीव रंजन : 326 (149/177)
वीरेन्द्र कुमार पटेल : 323 (131/192)
और भी ...

लोक प्रशासन
(हिन्दी माध्यम)

By **Atul Lohiya**

(A person who believes in scientific approach and hard work)

UGC-NET
QUALIFIED IN TWO SUBJECTS
(HISTORY & PUB. ADMINISTRATION)

38 Rank
Shikha Rajput

51 Rank
Giriwar Dayal Singh

Virendra K. Patel
254 Rank

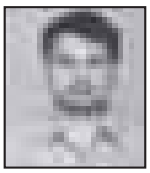
Ajay Hilori
391 Rank

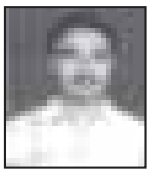
Mukesh B. Singh
465 Rank

Shailendra S. Rathour
615 Rank

यू.पी.पी.सी.एस.-05 में अपार सफलता

छत्तीसगढ़ पी.एस.सी. में 15 वीं रैंक पर हमारे संस्थान के दृष्टिहीन छात्र आशीष सिंह ठाकुर

MPPSC-05 में Top-13 में 4

3 Rank
Aadesh Rai

6 Rank
Nimisha Jaiswal

N.A.
8 Rank
Rinkesh Kumar

13 Rank
Akhilesh K. Jain

52 Rank
Sanmati Kumar

92 Rank
Shashi Kant

95 Rank
Deepali Jain

UPSC-06 में सर्वोच्च अंक - विकास कुमार-353 (184/169)

Abhishek Singh
Topper, UPSC-06

Lokesh Lilhare
Topper, UPSC-05

Vineet Jain
Topper, UPSC-05

A.P.S. Yadav
Topper, UPSC-04

Arvind Kumar
Topper, UPSC-03

Tirthraj Agarwal
SDM, 9th Rank, CG.

Shikha Rajput
31st Rank, CG.

Ranu Sahu (Dy. SP)
60th Rank, CG.

Ram M. Sahu
39th Rank, MP

Prakash Chandra
SDM Uttaranchal-02

आप भी प्राप्त कर सकते हैं 400+ अंक, कैसे? Winning Strategy के साथ

New Batch (Delhi): 8th January '09
Admission Open from 1st January '09

* *UPSC* के साथ *UP, MP, Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand Chhattisgarh, Haryana, Himachal PCS* की भी तैयारी;

संस्थान के सफल विद्यार्थियों द्वारा समय-समय पर मार्गदर्शन!

JOIN FOUNDATION COURSE
-: SHORT TERM COURSE :-
WRITING SKILL, ESSAY & PERSONALITY DEVELOPMENT

New Batch (Allahabad): 17th January '09
Admission Open from 10th January '09

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध
(पूर्णतः संशोधित; परिमार्जित एवं परिवर्धित कम्प्यूटराइज्ड नोट्स)
MAINS - 3000/-
MAINS + PRE. - 4000/-
डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त
Send DD/MO in favour of 'Atul Lohiya'

लोक प्रशासन
Mains के साथ-साथ
Pre. के लिए भी बेहतर विकल्प

'अतुल लोहिया'
शिक्षक; मार्गदर्शक और मित्र भी

"PRABHA"
AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
105, VIRAT BHAWAN (MTNL BLDG.), NEAR BATRA CINEMA, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
Phone : 27653498, 27655134, 32544250. Cell.: 9810651005, 9313650694
Branch : 305/250, COLONELGANJ, NEAR COLONELGANJ POLICE STATION, ALLAHABAD.

DOUBTLESS KNOWLEDGE, DESIRELESS SERVICE
प्रभा

YH-1/09/6

हमारी विविधता और क्षेत्रीय राजनीति का उदय

● अरविंद मोहन

आज हम इस बात के लिये खुद को काफी भाग्यशाली मानते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के हमारे नेताओं ने न सिर्फ़ अंग्रेज़ी हुकुमत को उखाड़ने की लड़ाई लड़ी बल्कि उन्होंने उसी दौरान भविष्य की लगभग सारी व्यवस्थाओं के बारे में एक स्पष्ट राय बना ली थी और इनको लेकर जो शंकाएं थीं उनका काफी हद तक समाधान भी कर लिया था। भारत में शासन व्यवस्था कैसी होगी, समाज कैसा रहेगा, विकास का कौन-सा साधन अपनाया जाएगा, नेतृत्व कैसा होगा, ये बातें उसी दौर में स्वरूप लेने लगी थीं। बल्कि दो सौ साल के ब्रिटिश हुकूमत ने तो हर क़दम पर अपने दाव पेंच चले या राष्ट्रीय आंदोलनों की स्थापनाओं को चुनौती दी। भारत एक राष्ट्र है या अंग्रेज़ों ने उसे यह रूप दिया, यह बात तब प्रमुख थी और हम पाते हैं कि आज भी हमारे कुछ अंग्रेज़ीदां बौद्धिक मानते हैं कि भारत का यह स्वरूप अंग्रेज़ों की देन है।

राष्ट्रीय आंदोलन के समय ही हमारे नेताओं ने भविष्य के शासन को लेकर जो-जो कल्पनाएं की या योजनाएं बनाई उनमें लोकतांत्रिक शासन, संसदीय रूप, सार्वभौम मताधिकार, सर्वाधिक मतों से जीत की व्यवस्था, दो-स्तरीय शासन प्रणाली प्रमुख हैं और हम पाते हैं कि ये व्यवस्थाएं तब इंग्लैंड और अमरीका में भी नहीं थीं और आज साठ साल बाद यही चीज़ें दुनियाभर में सबसे अच्छी और व्यावहारिक मानी जाने लगी हैं। भारत ने जब सार्वभौम मतदान की बात पर राष्ट्रीय सहमति बना ली थी तब इंग्लैंड और अमरीका में न तो महिलाओं को मतदान का अधिकार था और न ही समाज के अनेक छोटे वर्गों और ग़रीबों को। भारत के आनुपातिक प्रतिनिधित्व या राष्ट्रपति शासन व्यवस्था अथवा संघीय शासन को तब भारतीय समाज के बुनियादी स्वभाव के प्रतिकूल मानकर ठुकराया गया था जबकि आज हम काफी सारी जगहों से राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष चयन वाली व्यवस्थाओं पर आवाज़ उठते देखते हैं। बल्कि अमरीका का पिछला चुनाव जिसमें जार्ज बुश दोबारा चुने गए थे, तो अनेक स्तर पर विकारों से घिरा था।

पर बीते साठ वर्षों के अनुभव में हमारा लोकतंत्र भी काफी बदला है। बल्कि यह कहें कि जवान हुआ है। इसके बदलावों में कुछ ऋणात्मक प्रवृत्तियां भी हैं (जिनकी चर्चा अक्सर मीडिया और मध्य वर्ग में होती है) पर ज्यादातर बदलाव सार्थक और धनात्मक हैं। जब दुनियाभर में लोकतंत्र का ज़ोर बढ़ा है तब भी स्थापित लोकतांत्रिक दलों में लोगों की दिलचस्पी घटी है, खासकर कमज़ोर और अनपढ़ लोगों में। पर भारत में उल्टा हुआ है। यहां न सिर्फ़ मतदान का प्रतिशत बढ़ा है बल्कि इसमें कमज़ोर समूहों का प्रतिशत और ज्यादा बढ़ा है। इनमें लोकतंत्र के प्रति उत्साह और भरोसा बढ़ा है। जिस जम्मू-कश्मीर में सारी सुरक्षा के बावजूद किसी नेता को आम सभा करने की हिम्मत नहीं हो रही है वहां के मतदान का प्रतिशत हर किसी को चौंका रहा है। जो लड़के सुबह वोट न देने का नारा लगाते हैं वही शाम तक स्वयं बदल जाते हैं और बूथ पर मतदाताओं की लाइन में खड़े होते हैं।

आज़ाद भारत की लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में जो बदलाव सर्वाधिक आश्चर्यपूर्ण है उनमें केंद्रीय या राष्ट्रीय राजनीति की जगह क्षेत्रीय या राज्यवार राजनीति का उदय प्रमुख है। आज राष्ट्रीय राजनीति का व्यावहारिक मतलब राज्यवार नतीज़ों का कुल योगफल ही हो गया है। कभी मुल्क पर एकछत्र राज करने वाली कांग्रेस पार्टी को भी दो-दो, चार-चार सीटें जीतने वाली क्षेत्रीय पार्टियों और नेताओं के आगे हाथ पसारना पड़ता है और उनमें मात्रा में साझेदारी काफी होती है। राष्ट्रवाद का ठेका ले चुकी भाजपा को भी अपने दर्शन से एकदम उलट राजनीति करने वालों को साथ लेने में कोई परेशानी नहीं होती, बल्कि शासन में आने के लिये उसने अपने चुनावी एजेंडे की तीनों मूल बातों - राम मंदिर निर्माण, धारा 370 की समाप्ति और समान नागरिक संहिता के निर्माण को दफनाने में देर नहीं की। क्षेत्रीय दलों को भी इस नयी स्थिति में मेलजोल करने और अपने मतलब की मांग मनवाने में बहुत मजा आ रहा है।

हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने हर स्तर पर अंग्रेज़ों की चुनौती का सामना किया और राष्ट्रीय कांग्रेस में क्षेत्र, जाति, सामाजिक समूह और लैंगिक आधार पर लगातार संतुलन रखने का प्रयास किया गया। कांग्रेस पार्टी ने राज मिलने पर भी उसी परंपरा का पालन लंबे समय तक किया। पर जल्दी ही लगने लगा कि आंदोलन और शासन करने में फ़र्क है। ऐसे में कांग्रेस भी शासन पार्टी बनी और उसने चुनावी गणित को ध्यान में रखकर सभी जातियों, समूहों को समेटने, कुछ खास समूहों पर ज्यादा ध्यान देने, चुनावी समीकरणों को प्राथमिकता देने का काम करना शुरू किया। विभिन्न क्षेत्रों के नेताओं और सामाजिक समूहों के बीज एक किस्म की

प्रतिद्वंद्विता भी चलती रही पर केंद्रीय नेतृत्व की सोच के अंतर्गत ही पंडित नेहरू, इंदिरा गांधी वगैरह ऐसे नेता बने रहे जिन्हें कोई चुनौती नहीं मिली या जिन्होंने कानूनी चुनौतियों को दरकिनार किया। कांग्रेस पार्टी को चमत्कारिक नेतृत्व में भी चुनावी लाभ मिलता रहा। इनके आगे सारे विरोधी (राष्ट्रीय) नेता बौने बने रहे, विरोधी दल ढंग से खड़े भी नहीं हो पाए।

पर कांग्रेस पार्टी ने ठीक वही काम किया, मुल्क़ को वैसा ही नेतृत्व दिया जैसा राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हुआ था, यह कहना ग़लत होगा। एक तो यह शासन की पार्टी बन गई जिससे उसमें कई बुराइयां आ गईं। उसके काफी सारे फ़ैसले चुनावी लाभ को ध्यान में रखकर लिये जाते थे। फिर वह धीरे-धीरे व्यवस्थावादी भी बनती गई। वह दलितों, मुसलमानों के लिये चुनावी दल तो बनीं रही पर उनको समान अवसर देने, उनके हित में काम करने वाली पार्टी नहीं रही, उस तरह भी नहीं जैसा राष्ट्रीय आंदोलन में हुआ था। जमींदारी उन्मूलन जैसे क्रांतिकारी कार्यक्रम छोड़ दिए गए या चकबंदी और भूमि सुधार के सवाल पर वह मोलजोल वाला रवैया अपनाती रही। नेहरू और इंदिरा युग में ही चीजों में काफी अंतर आ गया था और पार्टी संगठन नामक चीज दिन-ब-दिन दिखावे की रह गई।

शायद यह कहना भी अपने आप में ग़लत होगा कि आज़ादी के बाद पूरा मुल्क उसी तरह कांग्रेसी प्रभाव में रहा जैसा कि आज़ादी के पहले था। शुरू में ही केरल, पंजाब, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और लगभग पूरा पूर्वोत्तर (तथा एक हद तक जम्मू-कश्मीर) कांग्रेसी प्रभाव के बाहर रहा और तब इन सब पर कम राष्ट्रवादी होने या अलगाववाद के ज्यादा क़रीबी होने के आरोप लगते रहे। तमिलनाडु के द्रविड़ आंदोलन के बाद तो लगभग अलगाववाद मानने का दौर ही चला। पूर्वोत्तर की स्थिति भिन्न रही है और आज भी वहां के कई इलाकों में सचमुच के अलगाववादी तत्व प्रभावी हैं।

कांग्रेस ने नीतियों के मामले में एक मध्य मार्ग अपनाने का दावा किया पर असम में यह स्पष्टत: व्यवस्थावादी बनी रही, इसके एजेंडे से क्रांतिकारी कार्यक्रम धीरे-धीरे गायब हो गए। अगर 'ग़रीबी हटाओ' का नारा लगा भी तो वह भी काफी कुछ 1967 के गैरकांग्रेसवाद की जीत का जवाब था। उसने कभी मुल्क़ टूटने का डर दिखाकर तो कभी विदेशी जीत के नाम पर वोट मांगे और पाए। इस दौरान पूरा का पूरा

दल-बदल विरोधी कानून, 1985

दल-बदल की कुरीति के कारण उत्पन्न होने वाली राजनीतिक अस्थिरता की समस्या से निपटने के लिये संविधान में 52वां संशोधन किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ी गई जिसमें संसद तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा दल-बदल के कारण उन्हें अयोग्य घोषित करने से संबंधित प्रावधान थे। इन प्रावधानों के अनुसार कोई भी संसद सदस्य अथवा राज्य विधानसभा का सदस्य निम्न स्थितियों में अपनी सदस्यता खो देता है:

- वह उस दल की सदस्यता त्याग देता है जिस दल की टिकट पर वह सदन का सदस्य निर्वाचित हुआ था।
- वह राजनीतिक दल के आदेश के विरुद्ध मत देता है अथवा मत का प्रयोग नहीं करता।
- चुनाव के पश्चात कोई स्वतंत्र सदस्य निर्वाचन के पश्चात किसी राजनीतिक दल का सदस्य बन जाता है।
- यदि कोई मनोनीत सदस्य सदन में अपना स्थान ग्रहण करने के 6 मास पश्चात किसी राजनीतिक दल की सदस्यता प्राप्त कर लेता है परंतु किसी भी सदस्य पर उपर्युक्त प्रावधान लागू नहीं होते, यदि (i) वह पार्टी के विभाजन के कारण दल की सदस्यता त्यागता है। दल में विभाजन तभी हो सकता है यदि उसके एक-तिहाई सदस्य दल से अलग हो जाते हैं और एक दल का गठन करते हैं। (ii) वह किसी अन्य दल के साथ विलय के कारण दल का गठन करते हैं। (iii) वह किसी अन्य दल के साथ विलय के कारण दल की सदस्यता से वंचित हो जाता है। विलय संबंधी निर्णय दल के दो-तिहाई सदस्यों द्वारा लिया जाना चाहिए। (iv) वह सदन का सभापति या अध्यक्ष निर्वाचित होने के पश्चात निर्दलीय बन जाता है।

इस बात का अंतिम निर्णय लेने का अधिकार सदन के सभापति को है कि क्या किसी सदस्य को दल-बदल के कानून के अंतर्गत अयोग्य घोषित किया जा सकता है या नहीं। प्रारंभ में अध्यक्ष के इस निर्णय को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती थी, परंतु 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि अध्यक्ष/सभापति द्वारा लिये गए निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय में, अधिकार क्षेत्र में त्रुटि के आधार पर चुनौती दी जा सकती है।

2003 में पारित संविधान के 91वें संशोधन द्वारा दल-बदल की कुरीति को रोकने के लिये विशेष प्रावधान किया गया तथा दल बदलुओं द्वारा किसी सार्वजनिक पद पर, जैसेकि मंत्री अथवा अन्य लाभप्रद राजनीतिक पद पर अधिवेशन की शेष अवधि के लिये अथवा नये चुनाव होने तक बने रहने पर प्रतिबंध लगा दिया। दल-बदल को रोकने के लिये केंद्र तथा राज्यों की मंत्री परिषद के आकार को लोकसभा या राज्य विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया। नए कानून के अंतर्गत राजनीतिक दलों के बंटवारे से संबंधित कोई प्रावधान नहीं है तथा छोटे दलों के मुट्ठीभर सदस्यों के लिये दलों में बंटवारा कराना संभव नहीं है। यदि कोई सदस्य दल के निर्देश का उल्लंघन करता है तो उसे संसद या विधानसभा की सदस्यता से वंचित किया जा सकता है। ❑

संगठन व्यक्ति केंद्रित होता गया। संगठन की जगह करिश्मा उसकी मुख्य ताक़त बनने लगा। दिखने को पार्टी जाति, धर्म और क्षेत्रवाद में उदासीन दिखती रही, पर असल में ऐसा था नहीं – कुछ-कुछ समूहों और क्षेत्रों को विशेष लाभ मिलता रहा।

1967 हो या 1977, दोनों ही दफा कांग्रेस को उन अधिकांश इलाकों और राज्यों में विपक्ष ने जबरदस्त टक्कर दी जो लगातार कांग्रेसी छतरी में रहे थे। जो पार्टियां उसकी जगह आईं वे भले ही ढंग से शासन और राजनीति न कर पाई हों लेकिन उन्होंने खुद को कांग्रेस के विकल्प के रूप में पेश करने की राजनीति की। मगर समाजवादी, साम्यवादी और अन्य एजेंडों को लेकर राजनीति करने वाले दल और जमात भी धीरे-धीरे कांग्रेसी एजेंडे अर्थात मध्य मार्ग के नाम पर यथास्थितिवाद की राजनीति पर आते गए। उन्हें कहीं न कहीं कांग्रेसी तौर-तरीक़े, सोच और एक हद तक खुलापन पसंद आता था – हिंदुस्तानी स्वभाव के अनुकूल लगता था।

पर धीरे-धीरे तमिलनाडु, केरल और पंजाब वाली राजनीति भी आगे बढ़ती रही जो प्रांतीय पहचान, धार्मिक पहचान और व्यवस्थित गठबंधन अर्थात सत्ता को सभी समूहों में ठीक से बांटने पर आधारित थी। केरल का अनुभव प. बंगाल में पहुंचा तो जम ही गया। तमिलनाडु का क्षेत्रीय चरित्र आंध्र प्रदेश आया तो कांग्रेस कमज़ोर हुई और बाकी दल मिल गए। पंजाब की अकाली राजनीति ने धार्मिक आधार पर राजनीति करने के लिये काफी लोगों को प्रेरित किया – भाजपा ने इस प्रयोग को राम मंदिर आंदोलन के जरिये राष्ट्रीय स्तर पर करके अपने लिये काफी लाभ लिये, पर कई मामलों में मुल्क का नुक़सान भी किया।

हिंदी प्रदेशों में कांग्रेस की प्रभावी जातियों को समेटने वाली राजनीति के ख़िलाफ़ सुगबुगाहट तो समाजवादी आंदोलन के दौर में भी चलती रहती थी। (जो पार्टी संगठन के हिलते-डुलते रहने के चलते कभी ढंग से परवान नहीं चढ़ी), वह अचानक 1989 के बाद एक बड़े आंदोलन पर लहर के रूप में उभरी और मंडल आयोग को लागू करने के फ़ैसले ने नौकरियों में पिछड़ों को चाहे जितना कम या ज्यादा लाभ दिया हो, इसने राजनीति में काफी हद तक उनका वर्चस्व बना दिया। वर्चस्व बनाने से भी ज्यादा महत्वपूर्ण था अगड़ों का वर्चस्व तोड़ना जो कांग्रेसी व्यवस्था के चलते बन गया था। इस बदलाव में क्या-क्या हुआ इसका ब्यौरा बहुत बड़ा है पर इसकी अपनी भी सीमाएं दिखीं। इसमें भी एक किस्म का क्षेत्रवाद है (समाजवादी पार्टी का प्रभाव उत्तर प्रदेश से बाहर शायद ही कहीं दिखा जबकि राष्ट्रीय जनता दल का असर भी बिहार तक सिमटा रहा), इसमें भी दिन-ब-दिन अधिक पिछड़ी जातियों का उभार दिखता है- यादवों के बाद कुर्मी-कोइरी-मल्लाह-दलित वगैरह। पर यह कुल मिलाकर अधिक लोगों, अधिक से अधिक कमज़ोर-ग़रीब लोगों के अधिक सक्रिय रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था में जुड़ने का अभियान ही है जो अभी जारी है।

अगर मुसलमानों ने संगठित होते हुए अपनी व्यवस्थित राजनीति की, अपने मुद्दों को ढंग से उठाया और अपने समुदाय की ज़रूरतों को नज़रों से ओझल नहीं होने दिया तो यह भी कम बड़ी उपलब्धि नहीं थी। क्योंकि उनके यहां मध्यवर्ग प्राय: नदारद रहा है और उच्च वर्ग का व्यक्त स्वार्थ शासन से जुड़ गया था। अब मुसलमान आज़ाद भारत में बहुत लाभ पाने वाले जमातों में नहीं हैं पर अधिकांश छोटे और स्पष्ट अलग पहचान रखने वाले समूहों की तुलना में कमज़ोर हालत में भी नहीं हैं।

कांग्रेसी छतरी में रहने वाला एक अन्य बड़ा समूह दलित भी उसी मंडल लहर के आसपास अपनी स्वतंत्र पहचान और ताक़त बनाने का प्रयास करता दिखता है जिसने अन्य पिछड़ी जातियों में जबरदस्त ऊर्जा भरी। बीस वर्षों से भी कम अवधि में देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में अपने दम पर शासन करना इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। आज दलित मतदाताओं की उपेक्षा कोई नहीं कर सकता और न ही उनका रहनुमा बनने का दावा भी। असमानता उनके लिये मुख्य राजनैतिक उपकरण है और हर प्रदेश में उनका भी अलग-अलग नेतृत्व और दल उभर आया है।

जब इतनी विविधताएं अपने-अपने ढंग से सक्रिय और सचेत हों, क्षेत्र का सवाल, मार्का, जाति, धर्म, सत्ता में हिस्सेदारी जैसे सवालों पर कोई समूह पीछे छूटने को तैयार न हो तो इसे लोकतंत्र की जीत ही मानना चाहिए। भारत में संसदीय लोकतंत्र को आए इतना वक्त बीत चुका है तथा वह इतना मज़बूत हो चुका है कि इन प्रवृतियों में उसे या मुल्क टूटने का कोई ख़तरा दिखे, इसकी गुंजाइश नहीं दिखती। कोई नेता अथवा राजनीतिक पार्टी ज्यादा लोकतांत्रिक है, कोई कम यह कहना मुश्किल है। किसी के समर्थक ज्यादा पक्के हैं और दूसरे के कम, यह भी नहीं कहा जा सकता।

यों ज्यादा समझदारी इसी में थी कि अधिक से अधिक स्पष्ट एजेंडे और सत्ता के पारदर्शी बंटवारे के साथ गठबंधन बनाया जाए और शासन किया जाए। इसे संयोग नहीं मानना चाहिए कि लोकतांत्रिक राजनीति के अनुभव से आए इस सबक को गैर-कांग्रेसी दलों में सबसे आगे निकली भाजपा ने पहचाना और उसने अपने एजेंडे के सबसे विवादास्पद मुद्दों को छोड़कर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का निर्माण किया और राज किया। कांग्रेस को यह सबक लेने में थोड़ी देर हुई, पर उसने भी ठीक वही किया – इतना ज़रूर हुआ कि अतिवाद की राजनीति से परहेज करने के चलते कांग्रेस को भाजपा की तरह अपने एजेंडे में ज्यादा नाटकीय बदलाव करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। पर राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को अभी भी गठबंधन की राजनीति, एजेंडे और सत्ता की हिस्सेदारी का गुर केरल जैसे राज्यों से सीखना होगा।

यह काम इसलिये भी ज्यादा ज़रूरी है कि आने वाले वक्त में कोई एक राष्ट्रीय राजनीति चलने की गुंजाइश कम से कम होती दिखती है। भारत में जितनी विविधताएं हैं, जितनी भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र के लोग हैं, उन सबको एक 'डंडे' से हांकना संभव नहीं है – वह भी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के खांचे के अंदर। अगर लोकतंत्र होगा, सभी लोगों में जागरुकता आएगी तो वे अपने-अपने विवेक के आधार पर जो फैसले लेंगे उनमें भी यह विविधता झलकेगी और झलकने भी लगी है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान मुख्य स्वर था आज़ादी का जिसके आगे बाकी स्वर मंद थे। महात्मा गांधी के नेतृत्व ने आंदोलन के स्वर को चाहे जितना भी बदला हो, इतना तो तय है कि आज की हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में कमज़ोर और छोटी जमातें जिस उत्साह और ऊर्जा से भागीदारी कर रही हैं उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में वैसी भागीदारी नहीं की थी। ❑

(**लेखक** सेंटर फॉर दी स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटी **(सीएसडीएस) से संबद्ध हैं।**
ई-मेल : arvindmohan2000@yahoo.com)

उद्यमशीलता — विश्वसनीयता — संवेदनशीलता

निर्माण IAS

Give the best ... Take the best

हिन्दी माध्यम का उभरता सर्वश्रेष्ठ संस्थान

by **कमल देव (K.D.)**

स्थापना वर्ष के परिणाम ने इसे प्रमाणित कर दिखाया

हमारे सफल अभ्यर्थी

इतिहास

RANJEET KUMAR
Rank 100rd
अंक : 331
इतिहास में कमल देव सर का मार्गदर्शन निर्णायक रहा है।

KRISHAN GOPAL
Rank 142nd
अंक : 352
इतिहास को अंकदायी और बेहतर बनाने में कमल सर का विकल्प नहीं।

Nitu	:	351
Manoj Kumar	:	361
R.K. Kadia	:	355
Ajay Jadeja	:	350
Ranjeet Kumar	:	331

& Others

सामान्य अध्ययन

SAROJ KUMAR
Rank 22nd हिन्दी माध्यम में प्रथम स्थान
अंक : 211+181=392
G.S. पढ़ाने में कमल सर और उनकी टीम का विकल्प नहीं है।

AMIT KUMAR
Rank 89th
अंक : 218+140=358
निर्माण में मैंने G.S की कक्षायें ली।

Nilima	:	358
Ranjeet	:	361
Shardendu	:	360
Kumar Ranjan	:	372
Pardeep	:	366

& Others

सफलता की प्रथम सीढ़ी यह विश्वास है कि 'मैं कर सकता हूँ'

सा. अध्ययन

प्रारम्भिक परीक्षा : 5 जनवरी, 2009

इतिहास

प्रारम्भिक परीक्षा : 3 जनवरी, 2009

पत्राचार पाठ्यक्रम उपलब्ध है।

आपके भविष्य निर्माण के हमारे आधार

- परिष्कृत लक्ष्यभेदी अध्ययन सामग्री
- परीक्षापयोगी विषय वस्तुओं पर विस्तृत प्रस्तुतिकरण
- विशेषज्ञों से व्यक्तिगत संपर्क की सुलभता
- प्रश्नों की विविधता एवं बदलते स्वरूप के अनुसार अध्यापन
- उत्तर लेखन पर विशेष बल
- तथ्य व विश्लेषण की समन्वयात्मक शैली विकास का अभ्यास

सफलता के लिए मजबूत नींव आवश्यक है और नींव का निर्माण हम करते हैं।

12 Hudson Lane, Kingsway Camp, Delhi-9, # 9891327521, 47058219

YH-1/09/7

चुनावी भ्रष्टाचार

● टी.एस. कृष्णामूर्ति

भारत में चुनावी भ्रष्टाचार की बुराई युद्ध स्तरीय प्रयासों के जरिये दूर की जाए ताकि हमारी आगामी पीढ़ियों के लिये लोकतंत्र सुरक्षित हो सके। इनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय है चुनाव सुधार और खासतौर से राजनीतिक दलों के वित्तीय सुधार। लेकिन यह पक्के तौर पर नहीं कहा जा सकता कि राजनीतिक दलों को वित्तीय सहायता देने से चुनावी भ्रष्टाचार की समस्या अंततः हल हो जाएगी

भ्रष्टाचार न केवल आज है
हर जगह इसका राज है
– जॉन ग्रे फेबल्स, 1738

भ्रष्टाचार जीवन की एक सच्चाई बन गई है। यह अनेक रूपों में दिखाई देता है और यह जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है। यह जनसामान्य के जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। यह हर समाज में पाई जाने वाली बुराई है। चाहे वे विकसित देशों के समाज हों अथवा विकासशील देशों के। यह हर युग में और तब से मौजूद रहा है जब से व्यापार और उद्योगों की शुरुआत हुई है।

सार्वजनिक जीवन में कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें भ्रष्टाचार अधिक पनपता है। इनमें सार्वजनिक खरीद, ठेकेदारी, लाइसेंस देने की प्रक्रिया, राजस्व संग्रह और आर्थिक गतिविधियों का विनियमन प्रमुख है। सार्वजनिक जीवन के प्रमुख पद चुनाव के लिये अधिकारियों की नियुक्ति अथवा सरकारी सेवा के लिये हर श्रेणी के कर्मचारियों के चयन में भ्रष्टाचार के अवसर प्रदान करते हैं। कुछ मामलों में भ्रष्ट राजनेता अपने समर्थकों को लाभ पहुंचाते हैं। अक्सर विकासशील देशों में राजनेताओं को भाई-भतीजावाद जैसी बुराइयों में लिप्त पाया जाता हैं। वे अपने परिजनों, संबंधियों और मित्रों को सार्वजनिक महत्व के पदों पर नियुक्त करते हैं।

भ्रष्टाचार के अवरोधक और क्रमशः विनाश की ओर ले जाने वाले परिणामों की (खासतौर पर विकासशील देशों में) कोई सीमा ही नहीं है। मुक्त व्यापार संचालन को तहस-नहस करके, आर्थिक विकास दर को धीमी करके और राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थानों को सार्वजनिक सेवाएं देने में विफल करके भ्रष्टाचार भारी आर्थिक लागत वसूल करता है। इसकी गैरआर्थिक क़ीमत भी चुकानी पड़ती है क्योंकि भ्रष्टाचार जीवनमूल्यों का क्षय करता है और ऐसा करते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी मानव मूल्यों को कमज़ोर बनाता है।

भ्रष्टाचार की परिभाषा हर देश में अलग है। इसका आंशिक कारण यह है कि यह काफी कुछ उस देश की आर्थिक स्थिति और जन अवधारणा पर निर्भर करता है। विश्व बैंक ने इसे 'निजी स्वार्थ के लिये सार्वजनिक पद के दुरुपयोग' के रूप में परिभाषित किया है।

अनेक विकासशील देशों में चुनावी भ्रष्टाचार को राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। इन देशों में राजनीतिक और नौकरशाही भ्रष्टाचार में साठगांठ पाई जाती है हालांकि अनेक अवसरों पर दोनों अलग स्वतंत्र रूप से भी पनपते हैं। अगर राजनीतिक नेता बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार में लिप्त होते हैं तो नौकरशाही भ्रष्टाचार खूब फलता-फूलता है। विकासशील देशों में विकास कार्यों पर ख़र्च के लिये काफी ज्यादा धनराशि उपलब्ध रहती है जिसमें से राजनीतिक नेता और नौकरशाह निजी उपयोग के लिये काफी हिस्सा हड़प लेने के फिराक़ में रहते हैं। इससे आर्थिक विकास तथा सामाजिक प्रगति प्रभावित होती है। वास्तव में उभरते लोकतांत्रिक देशों में सत्ता के उपयोग में विवेकाधिकार की मौजूदगी से प्रशासकीय और राजनीतिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है और विशेषाधिकार प्राप्त अधिकारी को संपत्ति जोड़ने का अवसर मिल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि लोग विकास के लाभों से वंचित रह जाते हैं। उन्हें कानून के शासन, मौलिक अधिकारों की रक्षा और सामाजिक समानता के लाभ नहीं मिलते और अच्छे लोकतंत्र के लाभ भी उनके लिये दुर्लभ हो जाते हैं।

हालांकि भारत में एक अद्भुत और सबसे लंबे लिखित संविधान के द्वारा कानून के शासन, मानवाधिकारों की रक्षा, सुशासन, सामाजिक समानता जैसे लाभ सुनिश्चित करने के लिये

सावधानीपूर्वक लोकतांत्रिक व्यवस्था की रचना की गई है, लेकिन भ्रष्टाचार उच्चस्तर पर व्यापक रूप से चल रहा है। ऐसा लगता है कि सार्वजनिक महत्व के पदों पर मौजूद भ्रष्टाचार की शुरुआत चुनाव के साथ हो जाती है। उच्चतम न्यायालय ने अब से काफी पहले 1996 में ही दीवानी याचिका नं. 24/1995 में राजनीतिक पार्टियों की वित्तीय अपव्यय पर टिप्पणी करते हुए कहा था :

आज़ादी मिलने के बाद से हर 5-6 वर्ष बाद यह तय करने के उद्देश्य से चुनाव कराए जाते हैं कि 8.50 करोड़ जनता पर कौन शासन करेगा। ख़र्च की जाने वाली धनराशि के हिसाब से यह बहुत बड़ी कवायद है। चुनाव के काफी दिन पहले ही 543 में से हर चुनाव क्षेत्र में सत्ताकांक्षियों द्वारा हज़ारों वाहन चुनाव कार्यों में लगा दिए जाते हैं। हज़ारों-लाखों पर्चे और करोड़ों पोस्टर छापे और बांटे जाते हैं। लाखों बैनर बनाए और लगाए जाते हैं। झंडे लगाए जाते हैं, दीवारों पर विज्ञापन पेंट करते हैं और हज़ारों-लाखों लाउडस्पीकरों से प्रचार किया जाता है। अनेक वादे किए जाते हैं। वीआईपी और वीवीआईपी आते-जाते हैं और बहुत से विमानों और टैक्सियों को किराए पर लिया जाता है। राजनीतिक पार्टियां सत्ता लोभ में सिर्फ़ संसद के चुनाव पर 1,000 करोड़ रुपये उड़ा देती हैं फिर भी न तो इनका कोई हिसाब-किताब रखा जाता है और न ही कोई इनकी जिम्मेदारी लेता है। कोई यह बताता कि उसे यह पैसा कहां से मिलता है। न इनका कोई हिसाब-किताब होता है न ही उनकी जांच। किसी लोकतंत्र में जहां कानून के शासन की बात होती है, कानून का उल्लंघन और काले धन के अश्लील प्रदर्शन की अनुमति नहीं दी जा सकती।

ऐसा लगता है कि हाल के वर्षों में चुनावी भ्रष्टाचार बढ़ा है। बुनियादी तौर पर इसका कारण यह कि चुनाव प्रचार का ख़र्च बढ़ गया है और राजनीतिक पार्टियां ऐसे तौर-तरीक़े अपनाने लगी हैं जिन पर सवाल उठाए जा सकते हैं। हालांकि निर्वाचन आयोग ने उम्मीदवार द्वारा किए जाने वाले चुनाव ख़र्च की सीमा तय कर दी है लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा होने वाले ख़र्च की कोई तय सीमा नहीं है और न उन पर विनियमन करने वाले कोई नियम हैं। इस समय एक नियम है जिसके अंतर्गत हर उम्मीदवार और राजनीतिक दल द्वारा ख़र्च का विवरण पेश करना पड़ता है। लेकिन इन पर नज़र रखने का कोई तंत्र नहीं है। इसके कारण इस

भारतीय डाक द्वारा आम चुनावों पर 1967 में जारी अब तक का एकमात्र टिकट।

बात की व्यापक आलोचना हुई है कि चुनावी भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और इस पर नज़र नहीं रखी जाती। सभी जानते हैं कि चुनावी ख़र्च के अधिकांश लेन-देन नकद किए जाते हैं और इनकी कोई मानीटरिंग नहीं की जाती। निर्वाचन आयोग अपने प्रेक्षकों के जरिये मानीटरिंग की कोशिश ज़रूर करता है। आजकल चुनाव प्रचार बहुत आक्रामक और प्रतिस्पर्धी होता है। इस काम में मीडिया - प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक दोनों का जम कर इस्तेमाल किया जाता है। इस कारण भी चुनाव ख़र्च बढ़ गया है और निधियों की ज़रूरत भी बढ़ गई है।

यह भी सर्वविदित है कि अनेक राजनीतिक दल उम्मीदवारों का नामांकन करने से पहले एक निश्चित धनराशि जमानत की रक़म के रूप में जमा करा लेते हैं। परिणामस्वरूप पार्टियां और उम्मीदवार दोनों ही अपने प्रचार अभियान और कालेधन का इस्तेमाल करते हैं। चुनाव अभियान के लिये पर्याप्त राशि की ज़रूरत पड़ती है अत: आपराधिक तत्व भी चुनाव के लिये नामांकन करने लगे हैं। यही कारण है कि सीधे-सादे लोगों के नामांकित होने के कोई आसार नहीं रह गए हैं। चालू प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप अच्छे उम्मीदवारों द्वारा चुनाव लड़ने की संभावनाएं कम हो गई हैं।

यह नुकसान राजनीतिक पार्टियों द्वारा समुचित उम्मीदवारों के चयन तक ही सीमित नहीं रहा। यह चुनावी प्रक्रिया के आगे भी जाता है। भारी ख़र्च करके विधायक बना उम्मीदवार इस ताक में रहता है कि वह पद का दुरुपयोग करके काफी आय अर्जित करे। इसके कारण जवाबदेही और संवेदनशीलता की भावना प्रभावित होती है। अक्सर कानून की सर्वोपरिता का उल्लंघन किया जाता है। व्यापारियों के पैरवीकार सरकारी फ़ैसलों को तोड़-मरोड़ कर अपने पक्ष में कराने की कोशिश करते हैं। जब विधायक ही कानून के उल्लंघनकर्ता हों तो सरकार में निष्ठा की संस्कृति नहीं रह जाती। आम आदमी लोकतंत्र में विश्वास खो देता है। इस प्रकार की उभरती लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं, ख़ासतौर से एशिया में ऐसी समस्याएं दिखाई देती हैं। इन्हें रोकने के लिये अनेक सुझाव दिए गए हैं ताकि राजनीतिक पार्टियों के विनियमन और इस बुराई को रोकने की कोशिश की जा सके। ऐसा लगता है कि भारत में कोई सरकार इस बुराई को रोकने के प्रति गंभीर नहीं है। 14-15 अगस्त, 1947 की रात भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने इस ख़तरे के प्रति संविधान सभा में देश को इन शब्दों में चौकस किया था :

''जब तक उच्च पदों पर हम भ्रष्टाचार खत्म नहीं करते, हर रूप में भाई-भतीजावाद, सत्ता लोभ, मुनाफाखोरी और कालाबाज़ारी रोकने में कामयाब नहीं होते, तब तक हम प्रशासन और आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में कुशलता नहीं ला पाएंगे। इन बुराइयों ने देश को बदनाम कर रखा है।''

ऐसा जान पड़ता है कि अभी तक इस चेतावनी का हमारे नेताओं पर कोई असर नहीं पड़ा है।

उक्त बातों के संदर्भ में ज़रूरी हो जाता है कि भारत में चुनावी भ्रष्टाचार की बुराई युद्धस्तरीय प्रयासों के जरिये दूर की जाए ताकि हमारी आगामी पीढ़ियों के लिये लोकतंत्र सुरक्षित हो सके। इनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय है चुनावी सुधार और खासतौर से राजनीतिक दलों के वित्तीय सुधार। हालांकि रेडियो और टीवी पर राजनीतिक दलों को समय देने का प्रावधान है लेकिन राजनीतिक दलों को कागज़, ईंधन आदि के रूप में सहायता देने के भी सुझाव दिए गए हैं। लेकिन यह पक्के तौर पर नहीं कहा जा सकता कि राजनीतिक दलों को वित्तीय सहायता देने से चुनावी भ्रष्टाचार की समस्या अंतत: हल हो जाएगी। यह भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि एक ऐसी व्यवस्था का प्रावधान हो जिसमें आपराधिक तत्वों को दूर रखा जा सके और ईमानदार लोगों को चुनाव लड़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाए। इस संबंध में निर्वाचन आयोग और न्यायमूर्ति एम.एन. वेंकटचलैया के नेतृत्व वाली संविधान समीक्षा समिति को अनेक सुझाव दिए गए हैं। हम इन सिफ़ारिशों पर जितनी जल्दी कार्रवाई करें उतना ही भारतीय लोकतंत्र के लिये अच्छा होगा। ❑

(लेखक भारत के पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त हैं।
ई-मेल : krishnamurthy.ts@gmail.com)

चुनावी लेखा परीक्षण

● जगदीप एस. चोक्कर

चुनावों का लेखा परीक्षण केवल मतदान के दिन तक ही सीमित रखना समीचीन नहीं होगा। राष्ट्र और लोगों के वास्तविक हित तभी पूरे होंगे जब चुनावों का लेखा परीक्षण समूची चुनाव प्रक्रिया के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाएगा

मरियम-वेबस्टर की ऑनलाइन डिक्शनरी के अनुसार ऑडिट (लेखा परीक्षण) का अर्थ है : (क) किसी संगठन अथवा व्यक्ति के खाते अथवा वित्तीय स्थिति का औपचारिक परीक्षण और (ख) व्यवस्थित परीक्षण और समीक्षा। अतएव चुनावी लेखा परीक्षण का अर्थ है चुनावी प्रक्रिया का व्यवस्थित परीक्षण और समीक्षा करना। किसी चुनाव के लेखा परीक्षण में क्या-क्या शामिल होता है, इस आलेख में उसी के बारे में बताने का प्रयास किया गया है।

चुनाव के लेखा परीक्षण का एक मानक और सरल वर्णन का अर्थ है यह आकलन करना कि सभी पात्र मतदाताओं को स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से मतदान करने का अवसर दिया गया है अथवा नमूने के तौर पर कुछ लोगों को और क्या सभी मतदान केंद्रों पर होता है? और बाद में इन पर्यवेक्षणों के आधार पर निष्कर्ष निकालना। परंतु जैसा कि प्राय: होता है, पहली नज़र में छुपता अधिक है दिखता कम।

चुनावी प्रक्रिया के वास्तविक और व्यापक अवलोकन से पता चलता है कि यह तो समाज की समस्त राजनीतिक प्रक्रिया में निहित है और उसका परिचायक है। एक प्रकार से इससे पता चलता है कि समाज की समस्त राजनीतिक गतिविधि कुल मिलाकर किस प्रकार प्रचलित होती है, कार्य करती है और संगठित होती है - यदि कभी संगठित होती है तो। वैसे तो चुनावी प्रक्रिया की निश्चित शुरुआत मतदाता सूचियों के निर्माण और चुनाव लड़ने के लिये उम्मीदवारों के नामांकन के साथ होनी मानी जाती है, परंतु असल शुरुआत तो सतत रूप से जारी वह व्यापक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें लोग अपने को निर्वाचन के योग्य अथवा पसंदीदा उम्मीदवार बनाने के लिये निरंतर काम करते रहते हैं और राजनीतिक दल एवं अन्य समूह आगामी चुनावों में उनकी सफलता सुनिश्चित करने के लिये काम करते रहते हैं। इस नज़रिये से देखने पर चुनाव एक ऐसी स्पर्धात्मक गतिविधि है, जिसमें व्यक्ति और समूह अपनी प्रतिस्पर्धी स्थिति को सुधारने के लिये निरंतर काम करते रहते हैं।

अत: यदि कोई चुनाव का विस्तृत लेखा परीक्षण करना चाहता है तो उसे देश की राजनीतिक प्रक्रिया पर निरंतर नज़र रखनी होगी। परंतु निश्चित चुनाव प्रक्रिया के हिसाब से भी चुनावी लेखा परीक्षण का पहला कदम मतदाता सूचियों की शुद्धता, प्रामाणिकता और व्यापकता की जांच करने से शुरू होना चाहिए। यह सर्वविदित है कि भारत के निर्वाचन आयोग और संबंधित राज्यों के चुनाव आयोगों के तमाम ईमानदार प्रयासों के बावजूद भारत की मतदाता सूचियां न तो पूरी तरह से त्रुटि विहीन हैं और न ही अद्यतन। त्रुटि विहीन मतदाता सूची सुनिश्चित करना कोई आसान काम नहीं है और इसमें कई जटिल मुद्दे शामिल होते हैं। संभवत: यही कारण है कि तकनीकी और आर्थिक रूप से उन्नत अमरीका जैसे देश में भी मतदाता सूचियों के बारे में लोगों को संतोष नहीं है। यह बात ओबामा प्रचार अभियान के मतदाताओं के पंजीकरण को लेकर एकॉर्न (एसोसियेशन ऑफ कम्युनिटी ऑर्गनाइजेशंस फॉर रिफॉर्म नाऊ) सामुदायिक समूह द्वारा खड़े किए गए विवाद से भली-भांति स्पष्ट हो जाती है। जैसाकि अन्य समाजों में भी है, भारत में पेचीदगियां अपने आप में अनूठी हैं।

देश में इधर-उधर फिरने वाले प्रवासी श्रमिकों की संख्या बहुत बड़ी है। ये लोग निर्वाचन आयोग द्वारा मतदाता के रूप में नाम दर्ज़ कराने की सभी शर्तों को पूरा नहीं कर पाते। ऐसा इसलिये कि वे अपने कार्यस्थलों पर अन्य स्थानों से आए होते हैं। यदि वे अपने मूल निवास स्थान से पंजीकृत भी होते हैं तो सिर्फ़ मतदान के लिये वहां जाना आर्थिक रूप से सहन नहीं कर सकते। अनुपस्थित मतदान की प्रक्रिया जटिल भी है और ख़र्चीली भी, खासकर निम्न आय वाले मतदाताओं के लिये। दरअसल, ग़रीबी के कारण ही तो वे अपना गांव छोड़कर आते हैं।

और फिर, मौजूदा मतदाता सूची का पुनरीक्षण और उसको अद्यतन बनाने का मुद्दा है। यहां पर सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात आगामी चुनावों की प्रत्याशा में मतदाता सूचियों के पुनरीक्षण और उसे अद्यतन बनाने के लिये अभियान या कार्यक्रम शुरू करने की प्रणाली है। यद्यपि निर्वाचन आयोग अपनी ओर से इन अभियानों

के प्रचार के लिये यथासंभव प्रयास करता है तथापि ऐसे अनेक नागरिक हैं जो पुनरीक्षण की तारीखों को चूक जाते हैं। यद्यपि निर्वाचन आयोग दावा करता है और उनका यह दावा सही भी है कि मतदाता सूची में नाम दर्ज़ कराने की एक नियमित प्रणाली है जो हमेशा उपलब्ध रहती है, परंतु यह प्रणाली न तो लोकप्रिय है और न ही मतदाताओं के अनुकूल। आवश्यकता इस बात की है, और वह भी तत्काल, कि मतदाता पंजीकरण की प्रक्रिया सदा जारी रहे, वह मतदाताओं को सुविधाजनक स्थानों पर उपलब्ध हो, और ज्यादा झंझट और परेशान करने वाली न हो। इस तरह की प्रणाली जगह-जगह भटकने वाले कामगारों की हलचल का भी लेखा-जोखा रख सकेगी। और यदि कोई कष्ट नहीं होगा तो लोग आसानी से अपने नए कार्यस्थल पर अपना नाम दर्ज़ करवा सकेंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे उन्हें टेलीफोन अथवा रसोई गैस का कनेक्शन मिलता है।

एक और प्रमुख मुद्दा जो प्राय: हर चुनाव में मतदान के समय सामने आता है वह है मतदाता सूचियों से नामों का गायब होना। मतदाताओं द्वारा नाम दर्ज़ करवाने और बार-बार उसकी जांच करने के बाद भी भ्रमपूर्ण स्थिति बनी रहती है। कई बार तो यह भ्रमपूर्ण स्थिति केंद्रीय चुनाव आयोग और राज्यों के चुनाव आयोगों द्वारा तैयार की जाने वाली अलग-अलग मतदाता सूचियों के कारण पैदा होती है। दोनों ही स्वतंत्र रूप से सूचियों का संधारण करते हैं- केंद्रीय चुनाव आयोग संसदीय चुनावों के लिये और राज्य चुनाव आयोग विधानसभा, पंचायत एवं स्थानीय निकायों के चुनावों के लिये मतदाता सूचियां तैयार करते हैं। ऐसा इसलिये कि केंद्रीय और राज्य चुनाव आयोगों का उत्तरदायित्व विभाजित है। यह सुझाव कई स्तरों और विभिन्न ढांचों पर कई बार दिया जा चुका है कि एक ही तरह का काम करने वाली दोनों संस्थाओं को एक ही मतदाता सूची बनानी चाहिए, परंतु इस पर अभी तक कोई कार्रवाई नहीं हुई है। कारण क्या है पता नहीं।

चुनावों के लेखा परीक्षण का एक तरीक़ा यह हो सकता है कि मतदाता सूचियों की शुद्धता की जांच के लिये मतदान के तुरंत बाद घर-घर जाकर यह पता लगाने के लिये सर्वे किया जाए कि मतदान के दिन जिन लोगों को वोट करना था, उन्होंने वास्तव में मतदान किया भी या नहीं। एसोसियेशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफार्म्स सहित अनेक एजेंसियों के विगत में किए गए सर्वेक्षणों से मतदाता सूचियों में 30-35 प्रतिशत त्रुटियों का पता चला है। इनमें नामों का गायब होना और नामों का जुड़ना दोनों शामिल हैं। यह शिकायत आम है कि कई बार योग्य मतदाता का नाम सूची से कटा होता है तो कई बार अपात्र मतदाता या जो मर चुका है अथवा अपने पुराने पते से कहीं और जा चुका होता है, उसका नाम सूची में बना रहता है। इन सर्वेक्षणों से मतदाता सूचियों की गड़बड़ियों का पता तो लग जाता है, परंतु उनको ठीक करने की जिम्मेदारी तो संबंधित चुनाव आयोगों की ही है।

चुनावों के लेखा परीक्षण का एक और पहलू है जिस पर लगभग बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया जा रहा है, वह है उम्मीदवारों की योग्यता। हाल के वर्षों में लगभग सभी राजनीतिक दलों में एक ऐसी प्रणाली बनती जा रही है जिसमें टिकट उम्मीदवारों की जीत की योग्यता और संभावना के आधार पर दिए जाते हैं और उम्मीदवार के पिछले रिकार्ड, व्यक्तिगत, व्यावसायिक, सामाजिक और सार्वजनिक सेवाओं का कोई ख्याल नहीं किया जाता। यही कारण है कि वर्तमान लोकसभा के 122 सदस्यों की पृष्ठभूमि आपराधिक है, उनके रिकॉर्ड आपराधिक हैं और उनके विरुद्ध मुकदमे चल रहे हैं। उनके ख़िलाफ़ लगाए गए आरोपों में हत्या, अपहरण और डकैती जैसे जघन्य अपराध शामिल हैं। कुछ सदस्य तो जेल में सजा भी काट रहे हैं। राज्यों की विधानसभाओं में भी स्थिति कुछ ज्यादा भिन्न नहीं है और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले विधायकों का अनुपात औसतन 20-25 प्रतिशत के आसपास है। यह आंकड़े भी इसलिये उपलब्ध हो सके हैं, क्योंकि उच्चतम न्यायालय के एक फ़ैसले के अनुसार उम्मीदवारों को अपने ख़िलाफ़ चल रहे मुकदमों/दर्ज़ अपराधों की जानकारी वाला शपथपत्र देना आवश्यक हो गया है। उच्चतम न्यायालय ने 13 मार्च, 2003 को एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म्स की पहल पर दायर किए गए एक प्रकरण में ऐतिहासिक फ़ैसला सुनाते हुए संसद और विधान सभाओं के चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को अपने विरुद्ध लंबित आपराधिक मुकदमों की जानकारी देना अनिवार्य कर दिया था। सुनवाई के दौरान समस्त राजनीतिक प्रतिष्ठान ने इसका जम कर विरोध किया था।

यह निर्णय सभी इच्छुक समूहों जैसे नागरिकों/मतदाताओं और मीडिया को चुनाव के लेखा परीक्षण का प्रभावी तरीक़ा उपलब्ध कराता है। इसके कुछ सकारात्मक प्रभाव दिखाई देने लगे हैं। कुछ राजनीतिक दलों ने कहना शुरू कर दिया है कि वे उन लोगों को उम्मीदवार नहीं बनाएंगे जिनके ख़िलाफ़ आपराधिक मामले चल रहे होंगे।

ऊपर जिन बातों का उल्लेख किया गया है उन पर आमतौर पर चुनावों के लेखा परीक्षण के बाबत चर्चा नहीं की जाती। भारत में चुनावों से संबंधित कुछ ऐसे अनुचित व्यवहार हैं जो सामान्य होते जा रहे हैं। भारत के मुख्य निर्वाचन आयुक्त एन. गोपालास्वामी ने इनके बारे में कहा था, ''ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं जिन पर हम बिल्कुल भी गर्व नहीं कर सकते- पैसा, बाहुबल, तिकड़म, ग़लत मतदाता सूचियां, फ़र्ज़ी मतदान, बूथों पर कब्ज़ा, चुनाव पूर्व और चुनाव के दिन हिंसा, धमकाना ...। हम अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने के लिये भी गर्व नहीं कर सकते। सरकारी नौकरों, विशेष कर पुलिस और चुनाव लड़ रहे अपराधियों की सेवाएं लेना, निर्धारित सीमा से अधिक व्यय करना तथा शराब और मुफ्त की चीज़ें बांटना आदि इसी श्रेणी में आते हैं। अत: आप कभी-कभी सोचने को विवश हो जाते हैं कि यह लोकतंत्र है या राक्षसतंत्र।''

इन गड़बड़ियों में से अधिकांश मतदान के दिन या उससे कुछ दिन पहले वास्तविक और भौतिक रूप से होती हैं। अत: चुनाव का वास्तविक रूप से लेखा परीक्षण मतदान के दिन या उससे कुछ पहले करना, सिद्धांतहीन बेईमान व्यक्तियों और समूहों द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के परिणामों में हेराफेरी करने और अवैध घोषित कराने के प्रयासों को रोकने के लिये समान रूप से महत्वपूर्ण है। चुनाव नतीज़ों में लोगों के व्यापक निहित स्वार्थ को देखते हुए संभवत: निष्पक्ष और गैरराजनीतिक नागरिकों के समूह ही सही ढंग से चुनावों का लेखा परीक्षण कर सकते हैं।

देश में चुनावों का और चुनाव लेखा परीक्षण का एक और अति महत्वपूर्ण पहलू राजनीतिक दलों की कार्यपद्धति है। चुनाव के लिये राजनीतिक दलों की कार्यपद्धति बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसका कारण बहुत ही सरल और आसान है - चुनावी अखाड़े में राजनीतिक

दल ही मुख्य खिलाड़ी होते हैं। राजनीतिक दल ही यह तय करते हैं कि मतदाता किसे चुनें। ऐसा इसलिये क्योंकि वे ही यह तय करते हैं कि कौन-सा अभ्यर्थी किसी दल विशेष का टिकट पाएगा। चुनाव में जीतने के बावजूद भी विधायक-सांसद को अपनी मर्ज़ी से सदन में वोट देने की आज़ादी नहीं है, क्योंकि यह उसका दल तय करता है। राजनीतिक दल ही अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों का मत व्यवहार तय करते हैं। यदि आवश्यक हुआ तो इसके लिये पार्टी का व्हिप (निर्देश) भी जारी किया जाता है। दल-बदल विरोधी कानून का भय भी दिखाया जाता है। विडंबना यह है कि यद्यपि सभी राजनीतिक दल चीख-चीख कर कहते हैं कि वे ही देश में लोकतंत्र के रक्षक हैं, परंतु वास्तव में, देश के किसी भी राजनीतिक दल में आंतरिक लोकतंत्र नहीं है।

इस विसंगति की ओर भारत के विधि आयोग का भी ध्यान गया है, जिसने चुनाव सुधारों पर अपनी 170वीं रिपोर्ट में - 'राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र से संबंधित कानून बनाने की आवश्यकता' पर पूरा एक अध्याय समर्पित किया है। विधि आयोग की कुछ टिप्पणियों और सिफ़ारिशों को यहां पूरा-पूरा उतारना बेहतर होगा।

पैरा 3.1.2 कहता है, "राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को शुरू और सुनिश्चित करने, उनकी कार्य पद्धति को मुक्त एवं पारदर्शी बनाने, और भारत के संविधान की प्रस्तावना और भाग तीन एवं चार में वर्णित संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में राजनीतिक दल प्रभावी साधन बन सकें, इसके लिये उनके गठन और कार्य पद्धति को कानून द्वारा नियमित करना ज़रूरी है।"

पैरा 3.1.2.1, आगे कहता है, "उपर्युक्त तर्क की सभ्यता के तौर पर यह कहना ज़रूरी है कि यदि लोकतंत्र और जवाबदेही हमारी संवैधानिक प्रणाली के सबसे महत्वपूर्ण अंश हैं तो, वही धारणा राजनीतिक दलों को जो हमारे संसदीय लोकतंत्र का अभिन्न अंग हैं, को नियंत्रित करने के लिये भी लागू होनी चाहिए। राजनीतिक दल ही सरकार बनाते हैं, संसद चलाते हैं और देश का शासन चलाते हैं। अत: यह आवश्यक है कि राजनीतिक दलों की कार्यपद्धति में, आंतरिक लोकतंत्र, वित्तीय पारदर्शिता और उनके काम काज में जवाबदेही लागू की जाए। जो राजनीतिक दल अपनी आंतरिक कार्य पद्धति में लोकतांत्रिक सिद्धांतों का सम्मान नहीं करता, उससे देश के शासन में इन सिद्धांतों के सम्मान की आशा नहीं की जा सकती।"

यह देखते हुए कि चुनाव एक निश्चित समय के अंतराल पर होते हैं और संभवत: लोकतंत्र की सबसे सुलभ (प्रत्यक्ष) अभिव्यक्ति है, राजनीतिक दलों की कार्य पद्धति, हमारे जैसे देश में प्रतिनिधिक लोकतंत्र के सबसे महत्वपूर्ण आधारों में से एक मानी जाती है। स्पष्ट है कि चुनावों का लेखा परीक्षण केवल मतदान के दिन तक ही सीमित रखना, समीचीन नहीं होगा। जहां तक लोकतंत्र की मज़बूती में इसके योगदान का प्रश्न है, वह इससे पूरा नहीं होगा। राष्ट्र और लोगों के वास्तविक हित तभी पूरे होंगे जब चुनावों का लेखा परीक्षण समूची चुनाव प्रक्रिया के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाएगा। ❑

(लेखक भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद के सेवा निवृत्त प्रोफेसर हैं और एसोसियेशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म्स के संस्थापक सदस्यों में से एक हैं।
ई-मेल : jchhokar@gmail.com)

● नया प्रकाशन ●

कपिलदेव सिंह समग्र

संपादक: रवीन्द्र भारती

समाजवादी संघर्ष की यह धरोहर न सिर्फ समाजवादी कार्यकर्ताओं-एक्टिविस्टों, बुद्धिजीवियों, शोधकर्त्ताओं, नेताओं के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि उनके लिए भी उतना ही जरूरी है, जो राजनीति में विशाल जीवन नीति के हिमायती हैं।

छह खण्डों में विभक्त इस पूरे सेट का मूल्य पाँच हजार रुपये (5000 रु.) निर्धारित किया गया है, जिस पर **15%** की छूट भी देय होगा।

हमारा सम्पर्क है :-

निदेशक
कपिलदेव सिंह समाजवादी फाउंडेशन
204, [illegible], नू बाक [illegible] रोड,
पटना - 800 001
दूरभाष - 0612-6453949

YH-1/09/5

R. C. SINHA'S ™

NEW DELHI IAS

A CENTRE FOR EXCELLENCE IN CIVIL SERVICES EXAM

JOIN AND FEEL -THE DIFFERENCE

★ **IN - GENERAL - STUDIES, ESSAY**
- **INTER-NATIONAL RELATIONS**
- **PUBLIC ADMINISTRATION**

★ **BY MR R. C. SINHA** (The Renowned Consultant)

श्री सिनहा अपने सुनियोजित, क्रमबद्ध, समयबद्ध, सरल किन्तु विचारोतेजक व्याख्यान के लिए विगत 18 वर्षों से सुविख्यात हैं। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक -व्यवस्था के लिए-एक ''सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास उनका प्राथमिक उद्देश्य है''।

अन्य वैकल्पिक विषय-दर्शनशास्त्र, समाज शास्त्र

★ मुख्य सह-प्रारम्भिक परीक्षा बैच-जनवरी 2009
★ **INTERVIEW BATCH MARCH-2009**
★ मुख्य सह-प्रारम्भिक परीक्षा बैच-जून 09
★ मुख्य परीक्षा बैच-अगस्त 09
★ मुख्य सह-प्राम्भिक परीक्षा बैच-अक्टूबर 09

CONTACT -

NORTH DELHI CENTER
A-1, Commercial Complex, IIIrd Floor Above "Apni Rasoi" Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi - 09.
CENTRAL DELHI (Corporate Office)
11A/19, Gol Chakkar, Old Rajinder Nagar Market, New Delhi - 60.
Ph.: 011-25751890. (M): +91-9313431890, 9312478450.

DOWN LOAD FREE REGISTRATION FORM **www.newdelhiias.com**

S. Alam
Director

SEPARATE ENGLISH AND HINDI MEDIUM BATCHES.
(Batch Duration - 5 Months)
✦ HOSTEL FACILITY ARRANGED ✦

YH-1/09/8

मीडिया और चुनाव

● विमल कुमार

भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में ऐसे किसी चुनाव की कल्पना नहीं की जा सकती जहां मीडिया की कोई भूमिका न हो। अमरीका जैसे देश में तो मीडिया की भूमिका और भी महत्वपूर्ण है। बराक ओबामा के राष्ट्रपति चुने जाने से पहले मीडिया के प्रचार ने पूरी दुनिया को एक तरह से यह बता दिया था कि चुनाव में ओबामा ही विजयी होंगे। इसे मीडिया का पूर्वानुमान कहें या मीडिया की मतदाता को प्रभावित करने की कोशिश?

सूचना क्रांति के दौर में मीडिया अब पहले से ज्यादा ताक़तवर हो गया है। इसका प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ गया है और साक्षरता बढ़ने के कारण यह अब अधिक लोगों तक पहुंचने लगा है। क्षेत्रीय चैनलों और समाचारपत्रों के विस्तार और विकास के कारण भी मीडिया की पहुंच पहले से अधिक बढ़ी है। इस कारण वह जनमत निर्माण प्रक्रिया में अपनी अधिक भूमिका निभाने लगा है। मीडिया के इस बढ़ते प्रभाव और ताक़त के कारण ही राजनीतिक दल इसके इस्तेमाल में अधिक रुचि लेने लगे हैं। वह जनमत को अपने बस में करने तथा जनमानस को काबू में करने के लिये इसका अधिकाधिक उपयोग करने लगे हैं। इलेक्ट्रॉनिक चैनलों की बाढ़ से राजनीतिज्ञों को अपनी बात कहने का अधिक मौका मिलने लगा है। इसलिये वे लोग टीवी स्क्रीन पर अधिक दिखने की भी लालसा रखने लगे हैं। इसके पीछे बाज़ार भी एक कारण है। मीडिया के लिये राजनीति ने भी वजन के दरवाजे खोल दिए हैं। राजनीतिज्ञ टीवी स्क्रीन पर बिकाऊ पात्र होता है। मिसाल के तौर पर कई राजनीतिज्ञ मीडिया के लिये एक ब्रांड बन गए है। मीडिया उनका दोहन करने लगा है तो वे भी मीडिया को अपने हक़ में भुनाने की कोशिश में लगे हैं। दोनों के बीच एक-दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप करने का खेल चल रहा है। जबकि दोनों के बीच में चैनल है। वह अब नियोक्ता है और समाचार उसके लिये उत्पाद बन गया है।

मीडिया की इस बढ़ती ताक़त का प्रभाव चुनाव पर भी पड़ने लगा है। शायद यही कारण है कि यूपीए सरकार ने एक्जिट पोल पर अब प्रतिबंध लगा दिया है। वर्षों से देश के भीतर यह गर्मागर्म बात चल रही थी कि क्या एक्जिट पोल पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए। अंततः सरकार ने इस पर रोक लगा दी। मीडिया की तरफ से इसका कोई विरोध देखने को नहीं मिला। काफी विलंब से एडीटर्स गिल्ड ने इसे अनुचित कदम बताया। इतना ही नहीं दर्शकों की ओर से भी इसका विरोध नहीं हुआ। इसका अर्थ यह है कि मीडिया और देश की जनता दोनों ही यह मान रही है कि एक्जिट पोल का चुनाव पर असर पड़ता है।

देश की जनता के लिये राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञों को जानने का सबसे बड़ा माध्यम आज भी मीडिया है चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। मीडिया राजनीतिक पार्टियों और राजनीतिज्ञों की छवि बनाता और बिगाड़ता भी है। हालांकि वह पूरी तरह वायवीय नहीं होता, उसका एक ठोस आधार भी होता है। कई बार जनता मीडिया द्वारा बनाई गई इस छवि को स्वीकार कर लेती है तो कई बार उसे अस्वीकार भी कर देती है। दरअसल, जनता अपने अनुभवों से भी चीजों को तौलती है और अपनी कसौटी पर उसे कसने की कोशिश करती है। एनडीए सरकार के समय से वाजपेयी जी की छवि को पं. नेहरू के बराबर में करने की कोशिश की गई, लेकिन आखिरकार जनमानस में श्री वाजपेयी नेहरू का स्थान नहीं ले पाए। इस छवि निर्माण में मीडिया का भी हाथ था। देखा यह गया है कि सत्ता बदलने के साथ-साथ मीडिया के रिश्ते भी बदल जाते हैं और मीडिया उसके सुर में सुर मिलाने लगता है। पर जब जनता की ओर से विरोध या प्रतिकार शुरू होता है तो वह भी उसमें शामिल हो जाता है। जेपी आंदोलन के समय मीडिया भी इंदिरा गांधी का कटु आलोचक बन गया था। इंदिराजी को मीडिया पर रोक लगानी पड़ी थी। यह अलग बात है कि उन्हें उसका खामियाज़ा भुगतना पड़ा। मीडिया का यह रवैया समय-समय पर बदलता भी रहता है। मंडल कमीशन लागू होने के बाद मीडिया स्व. वी.पी. सिंह के प्रति ज्यादा कटु हो गया था विशेषकर अंग्रेज़ी मीडिया। दरअसल, मीडिया में भी एक तरह का सवर्णवाद, सामंतवाद और वर्गीय पूर्वाग्रह दिखाई पड़ता है। इन बातों को ध्यान में रखकर ही अब चुनाव के प्रमाण में मीडिया का हस्तक्षेप किया जाने लगा है।

सच पूछा जाए तो साठ और सत्तर के दशक

में मीडिया इतना ताक़तवर नहीं था। इसलिये चुनाव को लेकर वह बहुत सतर्क और प्रायोजित नहीं था। लेकिन अब देखा जा रहा है कि मीडिया चुनाव को लेकर बहुत अधिक उत्साहित है। पिछले दिनों मुंबई की आतंकी घटनाओं ने विधानसभा चुनाव की कवरेज फीकी कर दी। कमांडो एक्शन में चुनाव से भी ज्यादा नाटकीयता और रोमांच था। लेकिन चुनाव परिणामों में मीडिया की ज्यादा दिलचस्पी शुरू से रही है। इसलिये वे इसकी ग़लत व्याख्या करते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मीडिया चुनाव को प्रभावित कर रहे हैं और जनमत बना रहे हैं। वह जनमत क्या है? मीडिया चुनाव को प्रभावित करे ही इसका कोई सीधा-सपाट उत्तर भी नहीं है। कई बार यह भी देखा गया है कि चुनावी सर्वेक्षणों की राय बिल्कुल उलटी साबित हुई है और चुनाव परिणाम कुछ दूसरी ही कहानी कहने लगे। गुजरात में नरेंद्र मोदी के चुनाव के संदर्भ में मीडिया ने, विशेषकर अंग्रेज़ी मीडिया ने जो ख़बरें दी वह ग़लत साबित हुई। नरेंद्र मोदी चुनाव जीते। इस तरह पार्टी के ख़िलाफ़ मीडिया की लड़ाई फुस्स हो गई। पार्टी ने तब मीडिया को खूब कोसा। प्रश्न यह है कि इस सर्वेक्षण को कराने वाला या संयोजित करने वाला व्यक्ति कितना उदार, कितना पूर्वाग्रह मुक्त और कितना तटस्थ है। पिछले दिनों मध्य प्रदेश के एक दैनिक ने भी वोट के जरिये सर्वे कर यह घोषणा की कि अगले चुनाव में जीत के बाद प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी ही बनेंगे। अब प्रश्न उठता है कि इस सर्वेक्षण को आयोजित कराने के पीछे आखिरकार क्या मकसद है? दरअसल, चुनावी नतीजों के विपरीत निकलने से इन सर्वेक्षणों की विश्वसनीयता भी कम हुई है पर ये सर्वेक्षण मतदाताओं तथा राजनीतिज्ञों और पार्टियों को थोड़ी देर के लिये मुश्किल में और चिंता में ज़रूर डालते हैं। कई बार कुछ तात्कालिक घटनाएं भी राजनीतिज्ञों और दलों के छवि निर्माण को प्रभावित करती है। मुंबई की आतंकी घटनाओं ने सरकार की छवि को धक्का पहुंचाया है। लोकसभा चुनाव पर इसका असर पड़ सकता है और तब मीडिया इस घटना में हस्तक्षेप भी करेगा। दरअसल, मीडिया सच और झूठ को छिपाने का भी एक माध्यम है। यही कारण है कि राजनीतिक दल चुनाव के मौके पर अपनी अधिक कवरेज़ चाहते हैं। वे अपना झूठ छिपाकर मतदाताओं को रिझाते तथा प्रभावित करते हैं। लेकिन यह भी सच है कि मीडिया के इस एक्सपोजर से मतदाता भी परिपक्व हुआ है और राजनीतिज्ञों के प्रलोभनों, झूठे भाषण और घोषणाओं को समझने लगा है। एनडीए सरकार के कार्यकाल में 'शाइनिंग इंडिया' का प्रचार करने में मीडिया का भी हाथ था, पर जनता ने नीर-क्षीर विवेक का परिचय देते हुए एनडीए सरकार को चुनाव में निकाल फेंका। इसीलिये कहा जा रहा है कि मीडिया के एक्सपोजर से जनता परिपक्व हुई है। समाज की वस्तुपरक सच्चाइयां भी मतदाताओं की आंखें खोलती हैं, तब मतदाता भी जान जाता है कि मीडिया झूठ का प्रचार कर रहा है। मीडिया के सर्वेक्षणों के कई बार ग़लत साबित होने से भी यह बात साबित हुई है लेकिन इसके बावजूद राजनीतिक पार्टियां यह ज़रूर चाहती हैं कि मीडिया के सर्वेक्षण उनके पक्ष में हों। राजनीतिक दलों में भी अपनी पार्टियों के प्रचार में दिलचस्पी बढ़ी है। वे 'मीडिया मैनेजमेंट' करने लगे हैं। भाजपा और कांग्रेस तो अपनी नियमित प्रेस ब्रीफिंग भी करती है। दोनों पार्टियों के बाकायदा मीडिया संभाग हैं और उनके यहां मीडिया की नियमित मॉनिटरिंग भी होती है। वे ख़बरे प्लांट भी करते हैं और अपने दावे पेश करते हैं तथा विरोधी दलों के दावों का खंडन भी करते हैं और आरोप-प्रत्यारोप भी करते हैं। ताकि मतदाताओं को अपनी ओर खींचा जा सके। दरअसल, चुनावी मुद्दों और प्रचार के जरिये मतदाता की मानसिकता को बदलने की कोशिश मीडिया के जरिये ही की जा रही है। उत्तर प्रदेश में गत चुनाव में मीडिया ने राजनीतिक दलों से प्रचार के लिये बाकायदा पैसे भी लिये। जद(यू) के अध्यक्ष शरद यादव ने चुनाव आयोग से इसकी बाकायदा शिकायत भी की। अगर राजनीतिक दलों के लिये मीडिया का महत्व नहीं होता तब वे इस तरह अपने लिये प्लॉट क्यों ख़रीदते? विज्ञापन, कट आउट, पोस्टर, पर्चे, झंडे, बैनर तथा कैसटों एवं भाषण की तरह मीडिया भी राजनीतिज्ञों के प्रचार का एक माध्यम बन गया है। यही कारण है कि कई पार्टियां और नेतागण पत्रकारों को अपने चुनावी दौरे पर ले जाते हैं और उनके आतिथ्य का पूरा ख्याल करते हैं। लेकिन प्रतिबद्ध, विश्वासी एवं ईमानदार पत्रकार इस तरह के प्रलोभनों में नहीं फंसते। यह भी देखा गया है कि एक खास घराने और वैचारिक आग्रह वाला मीडिया हाउस एक पार्टी विशेष या उम्मीदवार विशेष के पक्ष में वीडियो क्लिप्स के माध्यम से समां बांधने की कोशिश करता है। चुनाव के परिणाम चाहे कुछ भी हों, पर यह तो सच है कि मीडिया ताक़तवर हो गया है, चुनाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा है और कई बार सत्ता परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक भी बना है। बिहार में तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद की सत्ता को उखाड़ने में मीडिया द्वारा प्रचार भी विपक्ष के लिये सहायक साबित हुआ था। नीतीश कुमार के तथाकथित सुशासन का प्रचार भी मीडिया ही कर रहा है। मीडिया का यह प्रचार अभियान जनता के मन-मस्तिष्क पर असर तो डालता ही है, लेकिन जनता भी अपने निजी अनुभवों से इसे अपनी कसौटी पर कसने की कोशिश करती है। इस तरह मीडिया और जनता के बीच एक द्वंद्वात्मक रिश्ता काम करता है। भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में ऐसे किसी चुनाव की कल्पना नहीं की जा सकती जहां मीडिया की कोई भूमिका न हो। अमरीका जैसे देश में तो मीडिया की भूमिका और भी महत्वपूर्ण है। बराक ओबामा के राष्ट्रपति चुने जाने से पहले मीडिया के प्रचार ने पूरी दुनिया को एक तरह से यह बता दिया था कि चुनाव में ओबामा ही विजयी होंगे। इसे मीडिया का पूर्वानुमान कहें या मीडिया की मतदाता को प्रभावित करने की कोशिश? चुनाव के प्रसंग में मीडिया की भूमिका को इन्हीं अर्थों में देखा जाना चाहिए। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं कवि हैं तथा यूनीवार्ता से संबद्ध हैं)

एग्जिट पोल पर रोक हस्तक्षेप : एडिटर्स गिल्ड

चुनाव के दौरान एग्जिट पोल के प्रकाशन-प्रसारण पर रोक के फ़ैसले की 'द एडिटर्स गिल्ड आफ इंडिया' ने आलोचना की है। संपादकों की इस संस्था ने इस संबंध में कैबिनेट के हालिया फ़ैसले को प्रेस की आज़ादी में सीधा हस्तक्षेप करार दिया।

गिल्ड का कहना है कि जनता को सूचना मुहैया कराना मीडिया का अहम फ़र्ज़ है और चुनाव पूर्व सर्वेक्षण का प्रकाशन-प्रसारण भी इसी का एक हिस्सा है। गिल्ड के मुताबिक चुनाव पूर्व जनमत सर्वेक्षण के प्रसारण-प्रकाशन पर रोक से मतदाताओं को सूचना पाने के अधिकार से वंचित किया जा रहा है। ❑

चुनाव प्रचार का हथियार बने सर्वेक्षण

● अरविंद कुमार सिंह

चुनाव एवं सर्वेक्षणों को अखबारों और समाचार माध्यमों में व्यापक मुखरता दी जाती है। जब भी प्रतिष्ठा के चुनाव होते हैं तो सर्वेक्षण करने वाले ज्यादा व्यस्त हो जाते हैं।

यह छिपी बात नहीं है कि अतीत में हमारे देश में चुनावी सर्वेक्षणों का क्या हश्र हो चुका है। कुछ खास मौकों को छोड़ कर ऐसे सर्वेक्षणों की कोई विश्वसनीयता नहीं रह गई है और चहेते दलों को मदद पहुंचाने और माहौल पक्ष में बनाने के लिये होनेवाले इन सर्वेक्षणों के इरादों पर अन्य दलों और खुद चुनाव आयोग ने भी सवाल उठाए हैं। यूपी के चुनाव में सी-वोटर ने भाजपा के लिये ही काम किया था और अपने सर्वे को अखबारों में छपने के लिये मैनेज किया। इस सर्वे के हवाले से ही तत्कालीन मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह समेत उनके दल के प्रमुख नेताओं ने यह दावा शुरू कर दिया था कि भाजपा की यूपी में 222 सीटें आने से कोई रोक नहीं सकता। राजनीतिक दलों के दावों की जहां तक बात है, सभी अपने पक्ष में दावा करते हैं तथा अपनी नीतियों-कार्यक्रमों को लोगों तक पहुंचाते हैं। पर अब ताक चुनाव के छह माह पहले से ही सर्वेक्षणों के सहारे सियासत शुरू हो रही है।

जिन दलों के लिये सर्वे प्रायोजित होते हैं, उसके ख़िलाफ़ अन्य दल मैदान में जुट जाते हैं। कोई सर्वेक्षण पर तीखी प्रतिक्रिया जताता है तो कोई उसे घर बैठकर किया गया सर्वेक्षण बताता है। पिछली दफा उत्तर प्रदेश का चुनावी सर्वे करनेवाली एजेंसी सी-वोटर के प्रमुख यशवंत राव देशमुख आरएसएस के वरिष्ठ नेता यादवराव देशमुख के बेटे हैं। श्री यादवराव देशमुख प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के साथ लंबे अरसे तक काम कर चुके हैं और उनके नजदीकी रहे। उनकी सी-वोटर सर्वे एजेंसी 1993 में बनी थी। श्री देशमुख का कहना है कि यह सही है कि वे एक रानीतिक परिवार से आते हैं पर उनके ग्राहक सभी दलों के लोग हैं। वह मार्केट रिसर्च कंपनियों की तरह सर्वे नहीं करते हैं, बल्कि उनके पास एक भरोसेमंद नेटवर्क है। वह यह भी कहते हैं कि आज की स्थिति में उन्होंने जो सर्वे किया है वह अपनी जगह है, पर चुनाव तक बहुत से फेरबदल हो सकते हैं। अगर कोई दल टिकट वितरण में ही गलती कर दे तो कोई और पार्टी सत्ता में आ जाएगी।

यह तो एक बानगी है। सच बात यह है कि जहां, जिस राज्य में भी चुनाव हो रहे हैं, वहां पर चुनावी माहौल बदलने के लिये वे सभी प्रमुख दल ऐसी सर्वे एजेंसियों का उपयोग कर रहे हैं और पैसे देकर इनकी सेवाएं ले रहे हैं। यही नहीं ये सर्वे भाषणों में भी जगह पाते हैं और काडर का हौसला बढ़ाते हैं तथा समर्थकों का मनोबल। पिछले कुछ चुनावों से तो सर्वे के द्वारा पार्टी विशेष को लाभ पहुंचाने का काम तेजी से चल पड़ा हैं सर्वे एजेंसियों के प्रायोजक कहीं तो खुद राजनीतिक दल होते हैं जबकि कहीं उनके समर्थक उद्योग घराने। इस काम के लिये इन कंपनियों को मोटी रकम दी जाती हैं यानी बदल रही चुनावी दुनिया में सर्वे भी एक बड़ा चुनावी हथियार बन गया है। कारण साफ़ है, इससे जनमत प्रभावित होता है। पिछले लोकसभा चुनावों में जैन टीवी से लेकर कई एजेंसियों के सर्वे में परस्पर विरोधी दावे सामने आए तथा कसौटी पर एकाध सर्वे ही खरे उतरे। मगर अब फिर से कुछ एजेंसियां लोकसभा चुनावों के लिये भी सर्वे से हवा बांधने लगी हैं।

सर्वे एजेंसियां मार्ग (मार्केटिंग एंड रिसर्च ग्रुप), ओआरजी (ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप) एमआरएसीडीआरएस तथा सी-वोटर आदि ऐसे सर्वेक्षणों के काम में लगी हैं। हालांकि इनमें से ज्यादातर का काम मार्केट रिसर्च का है, चुनावी सर्वेक्षण का नहीं। पर ये चुनावी सर्वे मार्केट जैसा ही करती है। फिर भी *इंडिया टुडे* के द्वारा हाल के सालों में काफी सावधानी के साथ मार्ग और ओआरजी द्वारा कराए गए कई सर्वे सच्चाई के नज़दीक जरूर पहुंचे। ये सर्वे वर्गीकृत नमूना पद्धति के आधार पर किए गए और 1998 में इसने दिल्ली तथा राजस्थान में भाजपा को सत्ता से हटने और म.प्र. में फिर से कांग्रेस की सत्ता वापसी की भविष्यवाणी कर दी थी। तब कांग्रेस के ही तमाम बड़े नेता मान बैठे थे कि म.प्र. भाजपा के हाथ जा रहा है। लेकिन बाद में 1999 के लोकसभा चुनाव में टुडे द्वारा इनसाइड रिसर्च इनफॉरमेशन सर्विस को सर्वे का जो काम दिया वह सच्चाई के क़रीब पहुंचने में कामयाग नहीं रहा। इस सर्वे में राजग को 333 सीटों की भविष्यवाणी की गई थी। यही नहीं सर्वे ने वाजपेयी लहर की बात कही थी पर उत्तर प्रदेश में ही भाजपा को बहुत करारी हार का सामना करना पड़ा।

बिहार में पिछले विधानसभा चुनाव में डीआरएस-टुडे सर्वे में राजद और माकपा को मिला कर कुल 65 से 75 सीटों पर जीतने की भविष्यवाणी की थी। यह सर्वे राजग को 180 सीटों पर जितवा रहा था, जो साफ़ ग़लत साबित हुआ और राजग को बिहार में सारी कोशिशों के बाद करारा झटका लगा। काफी जोड़-तोड़ के बाद जद (यू)-भाजपा की सरकार तो बन गई पर उनको बहुमत साबित करने के पहले ही इस्तीफ़ा देना पड़ा। लेकिन सर्वे में हरियाणा तथा उड़ीसा का पूर्वानुमान एक हद तक सही निकला।

ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, जब तमिलनाडु में अन्ना द्रमुक को लेकर किए गए क़रीब सारे सर्वे बुरी तरह ध्वस्त हो गए। किसी ने इस बात को आंकने में सफलता नहीं पाई कि तमिलनाडु सुश्री जयललिता के समर्थन की आंधी चल रही है। ठीक इसी तरह से सर्वेक्षण एजेंसियों ने 1993 में उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा गठबंधन की ताकत का आभास नहीं लगा सकी थी, जबकि तब उसकी आसानी से सरकार बन गई थी। यही नहीं उत्तर प्रदेश में 1999 के लोकसभा

(शेषांश पृष्ठ 51 पर)

D दीक्षांत IAS — समाजशास्त्र के लिए समर्पित संस्थान

Tata McGraw-Hill
द्वारा शीघ्र प्रकाशित पुस्तकें

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा हेतु ...
समाजशास्त्र
डॉ. एस.एस. पाण्डेय
Tata McGraw-Hill

भारतीय समाज
एक परिचय
डॉ. एस.एस. पाण्डेय
Tata McGraw-Hill

अन्य प्रकाशित पुस्तक :
'Changing Focus on LMR in India'
by Dr. S.S. Pandey

समाजशास्त्र

by

DR. S. S. PANDEY

स्वतंत्र बैच प्रारम्भ
प्रा. परीक्षा हेतु Test Series
11 Jan.09

हमारे छात्रों द्वारा समाजशास्त्र
(हिन्दी माध्यम, CSE) में
अंक प्राप्त किया गया...

CSE-07 में हमारे संस्थान के सफल छात्र...

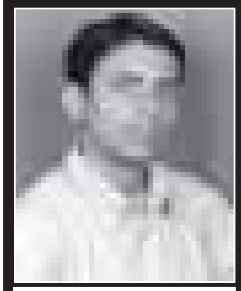
ASHISH PANDEY
CSE-07

ARWIND WANI
CSE-07

MAHENDER SHARMA
CSE-07

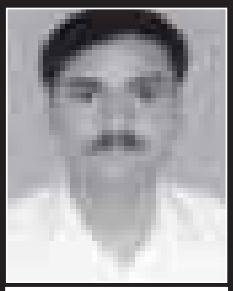
MUDIT
1st Rank UPPSC (H.E.O.)

Students	Paper-I		Paper-II		Total
Naval Kishor	177	+	181	=	358
Amit Kr. Singh	178	+	167	=	345
Kumar Abhishek	174	+	168	=	342
Saurabh Nayak	170	+	171	=	341
Ashutosh Goswami	164	+	174	=	338
Ashok Yadav	177	+	150	=	327
Mahendra Sharma	173	+	153	=	326
Mritunjay Singh	152	+	174	=	326
Chandra Shakher	158	+	168	=	326
Ashish Pandey	170	+	155	=	325
Sanjeev Pathak	170	+	165	=	325
Vivek Sukrishan	167	+	156	=	323
Punam	165	+	155	=	320
Arvind Wani	164	+	153	=	317
Shweta Chandraker	182	+	132	=	314
Saloni	138	+	175	=	313
Rahul Singh	170	+	142	=	312
Sunita	157	+	150	=	307
Manoj Patel	171(1st Paper)				

ARCHNA
CSE-06

NAVAL KISHOR
CSE-06

VIVEK KR. DUBEY
समाजशास्त्र में 72% अंक
UPPSC

PANKAJ SHUKLA
1st Rank Chtgh. Dy.S.P.

AVNISH KR. PANDEY
2nd Rank. UPPSC

SHARAD KUMAR
10th Rank, BPSC

PT +MAINS SPECIAL PROGRAMME, 09

- प्रश्नोत्तर परिचर्चा कार्यक्रम जिसमें संभावित प्रश्नों के उत्तरों के रूपरेखा पर चर्चा एवं UPSC में पूछे गये 10 वर्षों के प्रश्नों की समीक्षा
- नवीन घटनाओं एवं नवीन सैद्धान्तिक विकास के साथ सम्बद्ध करते हुए अध्यापन एवं प्रत्येक सप्ताह Class Tests.
- UPSC के अतिरिक्त U.P., M.P., Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand, Chhattisgarh, Haryana, Himachal, PCS के लिए भी विशेष अध्यापन – कार्यक्रम
- Non Sociological Background वाले छात्रों के लिए 1 घंटे (प्रतिदिन) का विशेष कार्यक्रम

Distence Education Programme%

PT- 2500/-	Mains-3000/-	PT+ Mains 5000/-
• Study Materials • Class Notes, • 20 Tests (PT)	• Study Materials • Class Notes, • 10 Tests (Mains)	

भेजें– D.D.
• Shipra Pandey के नाम देय
•2 Photographs

301-302, Jaina Building Extn. Comm. Comp., Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9, Tel. : 9312511015, 9868902785, 011-27654518 | s.s.pandey@gmail.com

YH-1/09/4

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन

● पी.वी. इंदिरेशन

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनें (ईवीएम) अब सुव्यवस्थित कुशल चुनावों की प्रतीक बन गई हैं। एक समय था जब ईवीएम के बारे में आपत्तियां और आशंकाएं जाहिर की जाती थीं। अब इन्हें मान्यता मिल गई है। इस जन स्वीकार्यता के पीछे एक रोचक कहानी है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का सबसे पहले इस्तेमाल 1982-83 में ग्रामीण, पहाड़ी और दूरदराज के स्थानों पर तथा कुछ शहरी इलाकों में किया गया था। केरल के पेरूर में इसका इस्तेमाल हुआ था और पराजित उम्मीदवार ए.

सी. जोस सुप्रीम कोर्ट चले गए न्यायालय ने चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। 1984 में सुनाए गए फ़ैसले में बताए गए अनेक कारणों में से एक कारण यह भी था कि कानून बना कर ऐसा कोई संशोधन संविधान में नहीं किया गया था कि वोटिंग मशीनों द्वारा मतदान कराया जा सकेगा। इस प्रकार का संविधान संशोधन अधिनियम पारित करने में 5 वर्ष लग गए और 15 मार्च, 1989 को संशोधन हो पाया। निर्वाचन आयोग ने 23 जून, 1989 को 150 संसदीय चुनाव क्षेत्रों में वोटिंग मशीनों के इस्तेमाल की घोषणा की। लेकिन 14 अक्तूबर, 1989 को श्री वी.पी. सिंह, श्री जार्ज फर्नांडीज और एक

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से जुड़े आम सवाल

- **इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन क्या है? यह परंपरागत मतदान के मामले में अलग ढंग से काम करती है?**
  इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के दो हिस्से होते हैं - कंट्रोल यूनिट और बैलटिंग यूनिट। दोनों 5 मीटर लंबे तार से जुड़ी होती हैं। कंट्रोल यूनिट पीठासीन अधिकारी के पास होती है और बैलटिंग यूनिट अलग स्थान पर रखी होती है। मतदान पत्र जारी करने की जगह चुनाव अधिकारी बैलट बटन दबाता है। ऐसा करने से मतदाता के लिये नीला बटन दबाना संभव हो जाता है और वह अपनी पसंद के मतदाता को वोट दे पाता है।
- **अगर किसी इलाके में बिजली न हो तो ईवीएम का इस्तेमाल कैसे किया जाए?**
  ईवीएम साधारण 6 वोल्ट की अल्कलाइन बैटरी से चलती है। अत: बिना बिजली के कनेक्शन के इन मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है।
- **ईवीएम के जरिये अधिकाधिक कितने मत डाले जा सकते हैं?**
  ईवीएम अधिकाधिक 3,840 वोट दर्ज कर सकती है। सामान्य रूप से किसी मतदान केंद्र पर 1,500 से अधिक मतदाता नहीं होते, अत: इन मशीनों की क्षमता पर्याप्त मानी जाती है।
- **ईवीएम अधिकाधिक कितने उम्मीदवारों के लिये मतदान दर्ज़ कर सकती है?**
  ईवीएम अधिकाधिक 64 उम्मीदवारों के लिये वोट दर्ज़ कर सकती है।
- **अगर किसी मतदान केंद्र की मशीन खराब हो जाए तो क्या होगा?**
  हर 10 मतदान केंद्र पर एक खंड अधिकारी रखा जाता है जिसके पास अतिरिक्त कलपुर्जे होते हैं। वह पुरानी की जगह नयी मशीन लगा सकता है। तब तक जितने भी वोट दर्ज़ किए गए होंगे वे मशीन की मेमोरी में सुरक्षित रहेंगे। इस प्रकार दुबारा मतदान कराने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।
- **इस मशीन की क़ीमत क्या है? क्या इनका इस्तेमाल महंगा नहीं पड़ता?**
  एक ईवीएम (एक कंट्रोल यूनिट, एक बैलटिंग यूनिट और एक बैटरी) 5,500 रुपये की आती है जो मतदान के समय ख़र्च होने वाले कागज़ की तुलना में काफ़ी सस्ती पड़ती है।
- **अपने देश में अशिक्षितों की काफी अधिक संख्या को देखते हुए क्या यह निरक्षर मतदाताओं के लिये समस्याजनक नहीं है?**

परंपरागत तरीक़े के मतदान में मतदाता चुनाव चिह्न के पास वाले उम्मीदवार के पास निशान लगाता है। फिर मतपत्र को मोड़कर मतदान बक्से में डालता है। ईवीएम में सिर्फ़ एक बटन दबाना पड़ता है। असलियत यह है कि ग्रामीण मतदाताओं ने इन मशीनों के जरिये मतदान पसंद किया है।

- **क्या ईवीएम के इस्तेमाल से मतदान केंद्रों पर कब्ज़ा करने को रोका जा सकता है?**
  ईवीएम से हर मिनट केवल 5 वोट दर्ज़ किए जा सकते हैं। मतपत्रों के इस्तेमाल में शरारती लोग सभी मतपत्र आपस में बांट कर, उन पर मोहर लगा कर मतपेटियों में डाल देते हैं और पुलिस के आने से पहले भाग जाते हैं। ईवीएम में शरारती लोग आधे घंटे में अधिकाधिक 150 वोट दर्ज़ कर सकेंगे, तब तक पुलिस के पहुंच जाने की संभावना होती है। साथ ही, किसी अनधिकृत व्यक्ति को देख कर चुनाव अधिकारी कंट्रोल यूनिट का क्लोज बटन दबा सकते हैं। जब तक क्लोज बटन दबा होगा, तब तक कोई वोट दर्ज़ नहीं हो पाएगा।
- **क्या संसद और राज्य विधानसभा चुनाव एक साथ होने पर इन मशीनों का इस्तेमाल संभव है?**
  हां।
- **ईवीएम के प्रयोग से क्या लाभ है?**
  सबसे बड़ा लाभ तो यह कि इसके होते लाखों मतपत्रों की छपाई की ज़रूरत नहीं पड़ती। सिर्फ़ एक मतपत्र छापना होता है जिसे मशीन के ऊपर चिपकाते हैं। अन्यथा हर मतदाता को एक मतपत्र दिया जाता है। इससे कागज़, छपाई, ढुलाई, भंडारण और वितरण का ख़र्च बचता है। दूसरे, मतगणना आसान हो जाती है और 2-3 घंटे के अंदर परिणाम घोषित कर दिए जाते हैं जबकि पारंपरिक तरीक़े से 30-40 घंटे लग जाते हैं। तीसरे, मत अवैध नहीं होते।
- **मतपेटिंग के द्वारा मतदान में मतपत्रों को मिला कर गणना की जाती है। क्या ईवीएम से भी ऐसा करना संभव है?**
  हर ईवीएम में दर्ज़ परिणामों को एक बड़ी (मास्टर) मशीन में डाला जा सकता है जिसके कारण कुल परिणाम मिलेगा लेकिन हर क्षेत्र के अलग परिणाम नहीं मिलते।
- **कंट्रोल यूनिट अपनी मेमोरी में परिणाम कितने दिन तक रखती है?**
  कंट्रोल यूनिट मेमोरी में परिणाम दस वर्षों तक या इससे भी ज्यादा समय तक रख सकती है।
- **अदालतें मतों की फिर से गिनती के आदेश दे सकती हैं। क्या ईवीएम को लंबे समय तक रखा जा सकता है? क्या बैटरी लीक नहीं कर जाएगी या मशीन में ख़राबी नहीं आ जाएगी?**
  बैटरी की ज़रूरत सिर्फ़ मशीन को मतदान और गणना के समय सक्रिय बनाने के लिये पड़ती है। बैटरी हटा लिये जाने के बाद भी माइक्रोचिप सुरक्षित बना रहता है।
- **वोटर को कैसे पता चलेगा कि मशीन ठीक काम कर रही है और वोट दर्ज़ हो गया है?**
  मतदाता जैसे ही नीला बटन दबाता है, बाईं ओर एक लाल बल्ब चमक उठता है और उसी समय लंबी बीप आवाज़ सुनाई पड़ती है। इस प्रकार मतदाता को आश्वस्त करने के लिये दोहरी (दृश्य-श्रव्य) व्यवस्था है।
- **क्या यह संभव है कि मशीन में ऐसा प्रोग्राम डाल दिया जाए कि सारे वोट एक ही उम्मीदवार के खाते में दर्ज़ हों?**
  इन मशीनों में जिन चिप्स का इस्तेमाल किया जाता है उन्हें आयात के समय ही सील कर दिया जाता है। अत: मशीनों में ऐसे प्रोग्राम डाले जाने की संभावना नहीं रह जाती कि वोट एक ही व्यक्ति, दल और एक दिशा में दर्ज़ हों।
- **मतदान के दिन ही कुल पड़े वोटों की संख्या कैसे पता चल जाती है?**
  हर मशीन में एक टोटल बटन लगा होता है। इसे दबाने से उस समय तक पड़े मतों की संख्या का पता चल जाता है हालांकि उम्मीदवारों को मिले मतों का पता नहीं चलता।
- **हर बैलटिंग यूनिट में 16 उम्मीदवारों की जगह होती है। अगर किसी चुनाव क्षेत्र में 10 उम्मीदवार हैं और मतदाता 11 से 16 तक के बीच का कोई बटन दबा दे तो क्या वे वोट बेकार जाएंगे?**
  उम्मीदवार सं. 11 से 16 तक पर इस्तेमाल से पहले ही मास्क लगा दिया जाएगा। साथ ही ऐसे भी उपाय कर दिए जाएंगे कि 11 से 16 तक के लिये दिए गए वोट दर्ज़ न हों। उम्मीदवारों के स्विच 10 तक सेट कर दिए जाएंगे। उक्त बातों को देखते हुए 11 से 16 तक के नंबर पर न तो कोई वोट पड़ पाएंगे और न ही दर्ज़ हो सकेंगे।
- **मतपेटियों पर पहचान उत्कीर्ण कर दी जाती है जिससे उनके बदले जाने की शिकायत नहीं की जा सकती। क्या इन मशीनों में भी ऐसी कोई व्यवस्था है?**
  हां। हर कंट्रोल यूनिट की एक अलग पहचान संख्या होती है। यह संख्या इन मशीनों पर न मिटने वाली स्याही के मार्करों से लिखी होती है।
- **क्या इन मशीनों में ऐसी कोई व्यवस्था है जिससे एजेंट इस बात से संतुष्ट हो सकें कि मशीनों में पहले से ही कोई वोट दर्ज़ नहीं है?**
  हां। मतदान शुरू होने से पहले पीठासीन अधिकारी मौजूद एजेंटों के सामने बटन दबा कर यह प्रदर्शित करता है कि मशीन में पहले से छिपे वोट दर्ज़ नहीं हैं। इसके बाद वह इन एजेंटों से कहता है कि वे अपने-अपने वोट दर्ज़ करके मशीन की आजमाइश करें। इसके बाद पीठासीन अधिकारी मशीन का क्लीयर बटन दबा कर एजेंटों के मत हटा देता है और इसके बाद असली मतदान शुरू हो जाता है।
- **इस संभावना से क्या इंकार किया जा सकता है कि मतदान बंद होने के बाद और गणना से पहले कुछ और वोट दर्ज़ कर दिए जाएं?**
  जैसे ही आखिरी मतदाता अंतिम वोट रिकार्ड करता है, प्रभारी अधिकारी क्लोज बटन दबा देता है। इसके बाद मशीन पर कोई वोट दर्ज़ नहीं होता। साथ ही, मतदान बंद होने पर, वह वहां मौजूद एजेंटों को पड़े हुए मतों का विवरण देता है। गणना होते समय इस विवरण से मिलान किया जाता है और अगर कोई गड़बड़ी मिलती है तो यह मतगणना अधिकारी की जानकारी में लाई जाती है। ❑

कंप्यूटर विशेषज्ञ अरुण मेहता ने सार्वजनिक प्रदर्शन करके सिद्ध किया कि इस प्रकार के कंप्यूटर प्रोग्रामों में हेराफेरी की जा सकती है। शिकायत की गई कि सरकार ने सभी दलों द्वारा गठित तकनीकी समिति से सलाह नहीं की है। उन्होंने आरोप लगाया कि जिन 150 क्षेत्रों में इन मशीनों का इस्तेमाल तय किया गया है वे सभी विपक्षी दलों के मज़बूत गढ़ हैं और सरकार ने इन मशीनों के जरिये सत्ताधारी दल के पक्ष में परिणाम लाने के लिये हेरफेर किया है।

इस कड़े प्रतिरोध के कारण ईवीएम इस्तेमाल का प्रस्ताव रोक दिया गया हालांकि 1,50,000 मशीनों के उत्पादन का काम चल रहा था। नवंबर 1989 में जाकर घोषणा की गई कि मतपत्रों के जरिये ही चुनाव होंगे।

9 जनवरी, 1990 को, सरकार के गठन के बाद स्व. वी.पी. सिंह ने श्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में विभिन्न दलों की सदस्यता वाली एक चुनाव सुधार समिति बनाई। इस समिति ने 1990 में अपनी रिपोर्ट पेश की। इसमें कहा गया कि 'उच्च शक्ति प्रपत्र तकनीकी विशेषज्ञों (प्रो. पी.वी. इंदिरेशन, डॉ. सी. राव कसरबाड़ा और प्रो. एस. संपत) की रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद यह समिति संतुष्ट है कि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनें किसी प्रकार की हेराफेरी अथवा हस्तक्षेप की संभावना से मुक्त हैं। इनका इस्तेमाल आगामी उपचुनावों और आम चुनाव में होना चाहिए तथा इस काम के लिये चुनाव कर्मियों हेतु सघन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

नीचे दी गई मतपत्र और ईवीएम की तुलना से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों के लाभ स्पष्ट हो जाएंगे :

मतपत्र पद्धति	ईवीएम पद्धति
मतगणना में समय लगता है। कभी-कभी 24 घंटे या इससे भी ज्यादा।	कुछ ही मिनटों में मतगणना पूरी हो जाती है।
मतपत्रों की छपाई में काफी ख़र्च हो जाता है।	मतपत्र छपाई का ख़र्च हज़ार गुना कम हो जाता है।
हर संसदीय क्षेत्र में मतपत्रों पर क़रीब 9 लाख ख़र्च; परिवहन ख़र्च भी काफी अधिक।	छपाई का ख़र्च बहुत कम, हर केंद्र के लिये एक प्रति काफी है।
बड़ी संख्या में मतपत्र अवैध हो जाने की संभावना है।	अवैध मतपत्रों की समस्या नहीं।
फर्ज़ी मतदान रोकना काफी कठिन होता है। बूथ कैप्चरिंग भी संभव।	फर्जी मतदान का पता लगाना आसान

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन

ईवीएम कोई पर्सनल कंप्यूटर नहीं होता। इस मशीन में एक बार इसके आरओएम में प्रोग्राम भर दिया जाता है तो फिर इसे न तो बदला जा सकता है, न कोई हेराफेरी हो सकती है और न ही इसको तोड़ा जा सकता है। इस प्रक्रिया में ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि इसका चिप तोड़ दिया जाए। यह बात फिर से स्पष्ट कर देना महत्वपूर्ण जान पड़ता है कि ईवीएम पर प्रोग्राम बदल देने का कोई उपाय नहीं है। हां, पूरा माइक्रो-कंट्रोलर बदल कर और पहले से पड़े प्रोग्राम की जगह दूसरा डाल कर ही इस प्रकार का कार्यक्रम बदलना संभव होगा। तब ऐसी हालत में, चुनाव से पहले नियुक्त सर्वदलीय तकनीकी समिति इसके कार्यों की बारीकी से जांच करेगी।

वोटिंग मशीन 'एक मतदाता एक वोट' के सिद्धांत पर इलेक्ट्रॉनिक रूप से वोट रिकार्ड करती है। अगर मतदान में पीठासीन अधिकारी भी हेराफेरी में साठगांठ करे तो मतदान की प्रक्रिया की जांच मशीन की बीप की आवाज़ से भी की जा सकती है और डाले गए मतों को इनसे सत्यापित किया जा सकता है। वहां एजेंट भी बैठे होते हैं जिससे अधिकारी मतदाता को दुबारा मतपत्र नहीं दे सकते।

मतदाता सूची वर्ण क्रमानुसार मतदान से केवल 2-3 हफ्ते पहले ही तैयार हो पाती है अत: कोई फ़र्जी मतदान करना भी चाहे तो उसे किसी उम्मीदवार को लाभ पहुंचाने वाला कार्यक्रम बनाने में मुश्किल पेश आएगी। ऐसा प्रोग्राम उसे कम से कम 2-3 महीने पहले लिखना होगा जब उसे यह भी मालूम नहीं होगा कि किस उम्मीदवार को किस नंबर पर रखा जा रहा है।

ईवीएम बूथ कब्ज़ा करने की घटनाएं रोक सकती है। मतपत्र प्रणाली में मतदान केंद्रों पर कब्ज़ा करने वाले समूह जल्दी-जल्दी वोट डाल सकते हैं। एक घंटे में कई हज़ार वोट डाले जा सकते हैं लेकिन ईवीएम प्रणाली में एक बार में एक ही वोट पड़ पाता है। साथ ही, एक मिनट में 5-6 वोट ही डाले जा सकते हैं। यही नहीं, अगर पीठासीन अधिकारी चाहे तो कंट्रोल यूनिट का क्लोज बटन दबा कर मतदान केंद्र पर क़ब्जा करने आए लोगों को देखते ही वोटिंग रोक सकता है।

आजकल लोगों को पर्सनल कंप्यूटर चलाना आता है। इन कंप्यूटरों में प्रोग्राम ग्राहक हितैषी बनाए जाते हैं। ये प्रोग्राम किसी भी उपलब्ध लैंग्वेज़ में लिखे जा सकते हैं जैसे डी-बेस, बेसिक आदि। ऐसे कार्यक्रमों में हेरफेर करना आसान होता है। इन कंप्यूटरों के प्रोग्राम की तुलना फ्यूज्ड या अंतर्निहित सॉफ्टवेयर वाले कार्यक्रमों से नहीं हो सकती क्योंकि ये कार्यक्रम ईवीएम के माइक्रो कंट्रोलर पर लिखे होते हैं।

ईवीएम की खास बातें

ईवीएम में हेराफेरी नहीं की जा सकती है। ईवीएम का डिज़ाइन ऐसा होता है कि जैसे ही कोई मतदाता किसी उम्मीदवार का बटन दबाता है, वोटिंग यूनिट गतिहीन हो जाती है और जब तक पीठासीन अधिकारी कंट्रोल यूनिट में बैलट बटन नहीं दबाता, मत वाला संकेत आगे नहीं जाता। हेराफेरी करने के लिये एक-एक करके कई बटन दबाने होंगे तभी गड़बड़ी हो पाएगी और इसमें पीठासीन अधिकारी का सहयोग ज़रूरी होगा। स्वाभाविक है कि सभी पार्टियों के मौजूद एजेंटों के सामने कम समय में ऐसा करना संभव नहीं होगा।

ईवीएम के जरिये मतदान के दो ऐसे पक्ष हैं जिनसे कुछ राजनीतिक नेताओं को कुछ करने का मौका मिल सकता है। एक है वह नियम जिसके चलते अनिच्छुक मतदाता अगर अंतिम क्षणों में मतदान न करने का फ़ैसला करें तो ऐसी हालत में ये नेता अपने किसी गुर्गे को भेज सकते हैं जो जा कर अनिच्छुक मतदाता की जगह हस्ताक्षर करें और मतदान के लिये जाएं। दूसरा यह कि ईवीएम में उम्मीदवारों की अधिकाधिक संख्या 64 हो सकती है। राजनीतिक नेता 64 से ज्यादा उम्मीदवार उतार दें। लेकिन ऐसा पिछले 10 वर्षों से कभी नहीं किया गया जिससे जान पड़ता है कि इसका ख़तरा नहीं है।

अगर फिर भी किसी को इसके बारे में संदेह हो तो उसे यह जान कर आश्वस्त हो जाना चाहिए कि अमरीका के अधिकांश राज्यों में ये मशीनें इस्तेमाल की जा रही हैं। ❑

(लेखक आईआईटी, दिल्ली के निदेशक रह चुके हैं।
ई-मेल: indiresan@gmial.com)

चुनाव में आर्थिक सुधारों का मुद्दा

● संजय कुमार

नियमित चुनाव लोकतंत्र की जीवनरेखा है। चुनाव ऐसी खिड़की है जिसमें मतदाता सरकार के प्रति अपने दृष्टिकोण, राय और गुस्से का इज़हार करते हैं। अन्य किसी भी लोकतंत्र की तरह भारत के लिये भी यह बात बिल्कुल सच है। नियमित चुनावों के कारण भारतीय लोकतंत्र बाधाओं को पार करता रहा है। जब से देश आज़ाद हुआ तब से 14 बार सफलतापूर्वक चुनाव कराए जा चुके हैं। इसके अलावा विभिन्न राज्यों में विधानसभा चुनाव भी कराए जाते रहे हैं। संविधान के 73वें संशोधन के बाद आम और विधानसभा की तरह पंचायत चुनाव भी इस सूची में जुड़ गए हैं। अब पहले की तुलना में अधिक संख्या में मतदाता अपने अधिकारों के प्रयोग के लिये आते हैं जिससे पता चलता है कि राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ी है और वे इसमें अधिक रुचि लेने लगे हैं। 1952 में पहले आम चुनाव में जहां 46 प्रतिशत मतदाताओं ने वोट डाले थे वहीं कुछ राष्ट्रीय चुनावों में मतदाताओं की भागीदारी 60 प्रतिशत से अधिक के निशान को पार कर गई। 2004 के आम चुनाव में 58 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने अधिकार का प्रयोग किया था।

किसी चुनाव में अधिकाधिक संख्या में मतदाताओं का आना विभिन्न राजनीतिक दलों की कोशिशों का नतीज़ा होता है। जहां एक तरफ चुनाव मतदाताओं को अपनी राय ज़ाहिर करने का अवसर प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर से राजनीतिक दलों को अपनी ताक़त और समर्थन जाहिर करने और उसकी परीक्षा का अवसर देते हैं। राजनीतिक गतिविधियों का उद्देश्य है- राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना और चुनाव इस प्रक्रिया का तंत्र है। चुनाव में सभी राजनीतिक पार्टियों को अपनी ताक़त आजमाने का समानता के आधार पर अवसर मिलता है। जो भी राजनीतिक पार्टी दूसरों से ज्यादा ताक़तवर होती है वही चुनाव जीतती है। सभी राजनीतिक दलों और उनके नेताओं का उद्देश्य भी यही होता है।

सिद्धांत रूप में यह आसान जान पड़ता है लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है। चुनाव जीतने के लिये राजनीतिक दलों को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। वे अपनी नीतियों और कार्यक्रमों की घोषणा करते हैं और मतदाताओं को अपने पक्ष में करने की कोशिश करते हैं। मतदाताओं को रिझाने के लिये जहां राजनीतिक दलों को लगातार प्रयास करने पड़ते हैं वहीं चुनाव जीतने के लिये वे मतदाताओं को मतदान केंद्रों पर जा कर वोट डालने को मनाते हैं। चुनाव प्रचार में वे इसके लिये अपने कार्यक्रमों और नीतियों का सहारा लेते हैं। हर राजनीतिक दल चुनाव से पहले अपना चुनाव घोषणापत्र जारी करता है और पहले प्राप्त अपनी उपलब्धियों का प्रचार करता है तथा भविष्य में जनहित में उठाए जाने वाले कदमों के बारे में वादे करता है। चुनाव घोषणापत्र को आम मतदाता तक अपना संदेश पहुंचाने का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है।

विभिन्न मुद्दों पर पार्टियों की विभिन्न राय होती है और उनके पास उन्हें सुलझाने के अनेक सुझाव होते हैं। भारत में ऐसा ही एक महत्वपूर्ण मुद्दा है- आर्थिक सुधारों का। इनके बारे में विभिन्न राजनीतिक दलों की राय में कुछ असमानता है। जहां कुछ राजनीतिक दल आर्थिक सुधारों के विरोधी हैं, वहीं आर्थिक सुधार समर्थक पार्टियां अपनी उपलब्धियों का बखान करती हैं और उनके समर्थन में वोटरों का समर्थन मांगती हैं। वे इन सुधारों को शुरू करने और आगे बढ़ाने का श्रेय लेने की कोशिश करती हैं।

भारत में आर्थिक सुधारों की शुरुआत 1980 में की गई थी हालांकि उस समय इसका क्षेत्र मात्र लाइसेंस व्यवस्था में उदारीकरण तक सीमित था और नीति में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं किया गया था। उस समय आर्थिक सुधारों को लेकर शायद ही किसी पार्टी ने मतदाताओं का मन जीतने की कोशिश की हो। 1980 में राष्ट्रीय चुनाव स्थिरता के मुद्दे पर लड़ा गया था और अनेक मुद्दों पर कांग्रेस मतदाताओं का समर्थन पाने में सफ़ल हुई थी। इस चुनाव में जितने वोट कांग्रेस के पक्ष में पड़े वे इस बात के सबूत थे।

आर्थिक सुधारों का दूसरा परीक्षण 1990 में शुरू हुआ। वित्तमंत्री की हैसियत से डॉ. मनमोहन सिंह ने आर्थिक सुधार नीति का सूत्रपात किया। इन सुधारों का उद्देश्य निजी क्षेत्र की भूमिका बढ़ाकर सरकारी नियंत्रण में कमी लाना, सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व कम करना और अंततः विश्व अर्थव्यवस्था के साथ समन्वय करना था। प्रथम पांच वर्षों (1991-96) में कांग्रेस ने आर्थिक सुधारों की गति तेज़ की और 1999 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने दुविधा से उबर कर साहसी ढंग से फ़ैसला किया और आर्थिक सुधारों को पार्टी के घोषणपत्र में स्थान दिया। पार्टी ने इस संबंध में नारा गढ़ा कि 'सुधारों के जरिये अर्जित प्रत्येक रुपया विकास के लिये अर्जित रुपया है।' कांग्रेस ने अमेठी चुनाव क्षेत्र में प्रचार अभियान की शुरुआत की

और नरसिंह राव ने अपने भाषण में आर्थिक सुधारों को मुद्दा बनाया। 1996 का चुनाव कांग्रेस हार गई। अनेक लोगों का विश्वास था कि कांग्रेस यह चुनाव इसलिये हारी कि लोगों ने आर्थिक सुधारों को नामंजूर कर दिया। अन्य कई लोगों ने कहा कि कांग्रेस इसलिये नहीं हारी कि लोगों ने कांग्रेस की नीतियां नामंजूर कीं बल्कि इसलिये कि आर्थिक सुधारों को पर्याप्त प्रचार नहीं मिला।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में भाजपा ने अपने प्रचार अभियान में उन आर्थिक उपलब्धियों को खूब प्रचारित किया जो उसके शासन काल में प्राप्त की गई थीं। पार्टी ने लोगों तक यह संदेश पहुंचाने का प्रयास किया कि देश में बहुत प्रगति हो रही है और हर क्षेत्र में सुधार आया है। भाजपा ने 'इंडिया शाइनिंग' को अपने प्रचार का मुख्य आधार बनाया और यह सोचा कि इसके चलते उसे खूब वोट मिल सकेंगे। लेकिन पार्टी हार गई और यह बहस शुरू हो गई कि क्या पार्टी के नारे 'इंडिया शाइनिंग' के विफल होने के कारण पराजय हुई। 1996 में जैसा कांग्रेस के साथ हुआ था, भाजपा में कुछ लोगों का ख्याल था कि पार्टी 'इंडिया शाइनिंग' नारे के कारण हारी जबकि कुछ अन्य का कहना था कि पार्टी आर्थिक सुधार के लाभ का संदेश आमजन तक पहुंचाने में विफल रही। इन दो अनुभवों को देखते हुए यह कहना मुश्किल है कि आर्थिक सुधारों के कारण पार्टियों को लाभ मिला या हानि हुई। लेकिन असली प्रश्न यह है कि एक मुद्दे के रूप में आर्थिक सुधारों ने मतदाताओं की राजनीतिक पसंद को कितना प्रभावित किया।

आर्थिक संपन्नता से जहां लोगों का सीधा सरोकार है वहीं यह भी महत्वपूर्ण है कि पिछले चुनावों में आर्थिक सुधार औसत भारतीय मतदाता को प्रभावित नहीं कर पाए। मुश्किल से एक चौथाई मतदाता ही आर्थिक सुधारों के बारे में जानकारी रखते हैं। 1996 के लोकसभा चुनाव के समय सिर्फ़ 18 प्रतिशत भारतीय मतदाताओं ने आर्थिक सुधारों के बारे में सुना था। जब पार्टी ने इनको लोकप्रिय बनाने के प्रयास किए तो यह जागरुकता स्तर 1998 में 26 प्रतिशत तक पहुंचा। अब अनुमान है कि क़रीब 28 प्रतिशत मतदाताओं को इस मुद्दे की जानकारी है। यह सच है कि पिछले एक दशक में मतदाताओं में इन सुधारों संबंधी जानकारी बढ़ी है लेकिन अब भी यह उस स्तर तक नहीं पहुंची है कि मतदाताओं को आकर्षित करने का एक मुद्दा बन सके।

अब जहां आर्थिक सुधारों संबंधी जानकारी का स्तर काफी कम है वहीं इस मुद्दे संबंधी जानकारी के कई रूप हैं। शहरी मतदाता इसके बारे में ग्रामवासियों के मुक़ाबले बेहतर जानते हैं। शहरी मतदाताओं में भी सिर्फ़ 40 प्रतिशत को आर्थिक सुधारों का ज्ञान है। इसी प्रकार युवा मतदाता इस मामले में पूर्व पीढ़ी के मतदाताओं की अपेक्षा ज्यादा जानते हैं। इस समय 35 प्रतिशत युवा मतदाताओं को इसके बारे में जानकारी है जबकि अधिक आयु वाले मात्र 23 प्रतिशत लोग इस संबंध में जानते हैं। ग़रीबों के मुक़ाबले अमीर मतदाता इसके बारे में अधिक जानकारी रखते हैं। समृद्ध लोगों में 48 प्रतिशत को इस संबंध में ज्ञान है जबकि 21 प्रतिशत ग़रीब मतदाता इस संबंध में जानकारी रखते हैं। पिछले एक दशक में इस मुद्दे पर जागरुकता बढ़ी है और यह हर वर्ग तक पहुंची है लेकिन अभी इस संबंध में चेतनास्तर इतना नहीं है कि इसे चुनाव जीतने के लिये और मतदाताओं को आकर्षित करने का मुद्दा बनाया जा सके।

भारतीय चुनाव में आर्थिक सुधार मुख्य मुद्दा नहीं बनाए जा सके, इसका एकमात्र कारण अधिकांश मतदाताओं में जागरुकता की कमी ही नहीं है। यह जानना रोचक होगा कि यद्यपि राजनीतिक दल यह संदेश देने की कोशिश करते हैं कि आर्थिक सुधारों से जनता में ग़रीबी कम करने में मदद मिली है लेकिन आमजन इसमें विश्वास नहीं करता। आमतौर पर यह सोचा जा रहा है कि इस दिशा में जो भी कदम उठाए गए हैं उनसे अमीरों को ही फायदा हुआ है और आम लोग इनसे वंचित रहे हैं। लगभग 48 प्रतिशत लोगों का विश्वास है कि आर्थिक सुधारों से सिर्फ़ अमीरों को लाभ हुआ है जबकि 19 प्रतिशत लोग मानते हैं कि इनसे देश के हर वर्ग के लोग लाभान्वित हुए हैं। 9 प्रतिशत लोगों का मानना है कि आर्थिक सुधारों से किसी को लाभ नहीं हुआ। समाज के हर वर्ग के मतदाताओं में कमोबेश यही स्थिति है। लेकिन ग़रीब मतदाताओं का सोचना यह है कि आर्थिक सुधारों से अमीरों को लाभ मिला है।

यदि आर्थिक सुधार भारतीय मतदाता को रिझाने में विफल रहे तो वे कौन से मुद्दे हैं जिनसे मतदाता अधिक प्रभावित रहे हैं? राष्ट्रीय और विधानसभा चुनावों में कौन-से मुद्दे भारतीय मतदाताओं को अधिक आकर्षित करते हैं? पहले तो चुनाव की प्रकृति के अनुसार राष्ट्रीय और स्थानीय मुद्दे चुनावों के मुख्य मुद्दे हुआ करते थे। राष्ट्रीय चुनाव के समय औसत मतदाता के मन में राष्ट्रीय मुद्दे होते थे। 1971 चुनाव की याद कीजिए जब 'ग़रीबी हटाओ' मुद्दे पर चुनाव लड़ा गया था। 1977 चुनाव का मुख्य मुद्दा था 'इंदिरा हटाओ'। 1980 में स्थिरता को प्रमुख मुद्दा बनाया गया था। 1984 के आम चुनाव में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सहानुभूति की

तालिका-1

आर्थिक सुधारों के बारे में मतदाताओं में कम जागरुकता

चुनाव वर्ष	आर्थिक सुधारों की जानकारी है (प्रतिशत में)
1996	19
1998	26
2007	28

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 1996 एवं 1998 राष्ट्रीय सर्वेक्षण; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र

तालिका-2

आर्थिक सुधारों के बारे में ग्रामीणों के मुक़ाबले शहरी मतदाताओं में अधिक जागरुकता

चुनाव वर्ष	शहरी मतदाता (प्रतिशत में)	ग्रामीण मतदाता (प्रतिशत में)
1996	31	14
1998	38	22
2007	40	24

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 1996 एवं 1998 राष्ट्रीय सवेक्षण; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र

लहर थी। 1989 में आम भ्रष्टाचार और बोफोर्स मामले को मुख्य मुद्दा बनाया गया। इन सभी मुद्दों का पूरे देश में असर था। इसी प्रकार विधानसभा चुनाव के समय हर राज्य के मुद्दे हावी थे।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में चुनाव की प्रकृति बदल गई है। अब शायद ही कोई ऐसे मुद्दे हों जिनका पूरे देश के मतदाताओं के लिये एक जैसा महत्व हो। 1990 के बाद शायद ही कोई चुनाव ऐसा रहा होगा जो राष्ट्रीय मुद्दों को आधार बना कर लड़ा गया हो। अनेक प्रकार के क्षेत्रीय दलों के गठन के बाद मतदाताओं की पसंद और राजनीतिक विकल्प बदले हैं। क्षेत्रीय पार्टियां आमतौर पर क्षेत्रीय मुद्दे उठाती हैं और आमतौर पर राज्य में लोकप्रिय हो जाती हैं। कुछ वर्ष पहले तक लोग राष्ट्रीय और राज्य स्तर के चुनाव में फ़र्क किया करते थे और वोट डालते समय यह फ़र्क उनके मन में होता था। यहां तक कि एकाध बार ऐसा भी हुआ जब क्षेत्रीय दल चुनाव में शामिल हुए तो लोगों ने राज्य के लिये अलग और केंद्र के लिये अलग प्रतिनिधि चुने। लेकिन राज्य विधानसभा चुनाव के समय उन्होंने अपनी पसंद बदल दी। लेकिन अब पिछले कुछ समय से यह अंतर अस्पष्ट हो गया है। मतदाताओं की राजनीतिक पसंद अब अधिक कठोर हो चुकी है। अब वे केंद्र और राज्य स्तर के चुनाव में राजनीतिक पसंद नहीं बदलते। अब उनकी पसंद का आधार राजनीतिक अधिक है। अब चुनाव को राष्ट्रीय चुनाव नहीं माना जाता। बल्कि इन्हें विभिन्न राज्य स्तर के चुनावों का महायोग माना जाता है। अब जहां राज्य या राष्ट्रीय स्तर के वोटों का प्रतिशत यह साबित करता है कि किसी पार्टी को कितने मतदाताओं का समर्थन प्राप्त है लेकिन असलियत यह है कि लोग व्यक्ति अधिक चुनते हैं, पार्टी कम। पिछले कुछ वर्षों में लोग पार्टी के मुक़ाबले व्यक्ति को अधिक महत्व देने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में भारत के मतदाताओं में एक और परिवर्तन आया है। अब वे मतदाता पार्टियों के साथ अधिक पहचान बना रहे हैं और समर्पित भाव से किसी पार्टी को वोट देने का रुझान बढ़ गया है। काफी बड़ी संख्या में मतदाता चुनाव प्रचार शुरू होने से पहले ही किसी व्यक्ति के प्रति अपनी पसंद बना लेते हैं। ऐसे में आर्थिक सुधार अथवा कोई भी अन्य मुद्दा उन्हें प्रभावित नहीं करता।

अब जबकि भारतीय चुनाव परिदृश्य और मतदाताओं की पसंद बदल चुकी है, यह कहना मुश्किल है कि आर्थिक सुधारों ने मतदाताओं को रिझाने में अथवा किसी पार्टी को जिताने में अहम भूमिका निभाई है। साथ ही, जब भारतीय मतदाताओं में इन सुधारों के प्रति जागरुकता स्तर ही बहुत कम है तो ये मतदाताओं को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण कैसे बन सकते हैं? कम से कम वर्तमान स्थिति तो यह बात एकदम ठीक जान पड़ती है। ❑

तालिका-3

युवा मतदाताओं में आर्थिक सुधारों के बारे में अधिक जागरुकता

चुनाव वर्ष	युवा मतदाता (25 साल से कम) (प्रतिशत में)	अधिक आयु वाले मतदाता (56 वर्ष से अधिक के मतदाता) (प्रतिशत में)
1996	18	14
1998	27	19
2007	35	23

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 1996 एवं 1998 राष्ट्रीय सर्वेक्षण जनवरी 2007; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र

तालिका-4

अमीर मतदाता ग़रीबों से अधिक जागरूक

चुनाव वर्ष	अमीर मतदाता	मध्यवर्गीय मतदाता	गरीब मतदाता
1996	41	26	14
2007	48	41	21

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 1996 एवं 1998 राष्ट्रीय सर्वेक्षण जनवरी 2007; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र, दिल्ली

तालिका-5

आम विश्वास: आर्थिक सुधारों से सिर्फ अमीरों को लाभ

चुनाव वर्ष	सबको लाभ (प्रतिशत में)	अमीरों को लाभ (प्रतिशत में)	किसी को लाभ नहीं (प्रतिशत में)	कोई राय नहीं (प्रतिशत में)
2004	27	44	14	15
2007	19	46	9	26

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 2004; राष्ट्रीय सर्वेक्षण जनवरी 2007; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र, दिल्ली

तालिका-6

पार्टी से ज्यादा व्यक्ति के प्रति रुझान

चुनाव वर्ष	पार्टी	उम्मीदवार
1999	56	25
2004	45	31

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन, 2004; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र दिल्ली

तालिका-7

मतदाता अब पहले से ज्यादा समर्पित

मत फ़ैसले का समय	लोकसभा			
	1996 प्रतिशत	1998 प्रतिशत	1999 प्रतिशत	2004 प्रतिशत
चुनाव के दिन	24	18	17	15
चुनाव से कुछ दिन पहले	36	39	26	15
चुनाव प्रचार के समय	12	12	19	16
चुनाव प्रचार से पहले	28	31	38	54

स्रोत : राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन 1996, 1998, 1999 और 2004; विकासशील समाज अध्ययन केंद्र, दिल्ली

(लेखक दिल्ली के विकासशील समाज अध्ययन केंद्र के फेलो हैं।

ई-मेल : sanjay@csds.in)

चुनाव आचार संहिता : कुछ बुनियादी बातें

● गरिमा मैहदीरत्ता

चुनाव आचार संहिता सभी राजनीतिक दलों को अपने प्रचार सुचारू रूप से करने, विभिन्न राजनीतिक दलों में आपसी टकराव रोकने तथा चुनावी वातावरण में शांति और व्यवस्था बनाए रखने का माध्यम है। इसका उद्देश्य सत्ताधारी पार्टी, चाहे वह केंद्र में हो या राज्य में, द्वारा सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग रोकना और चुनाव परिणामों पर अनुचित प्रभाव डालने से रोकना है। इसके द्वारा आयोग चुनाव की गतिविधियों पर अपनी नज़र रखता है

भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में जहां चुनावी प्रक्रिया द्वारा सरकार चुनी जाती है, चुनाव एक आवश्यक प्रक्रिया है और भारत के संविधान के भाग 15 में इसका प्रावधान है।

भारत में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने का दायित्व चुनाव आयोग पर है और संविधान के भाग 15 में आयोग के गठन और उसके अधिकारों और दायित्वों का वर्णन है। मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्त की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसी प्रकार राज्य मुख्य चुनाव आयुक्त और राज्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।

चुनाव आयोग संविधान द्वारा गठित एक स्वतंत्र संस्था है और इस पर सत्तारूढ़ दल अथवा किसी भी राजनीतिक दल का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, न ही यह किसी भी सरकार अथवा राजनीतिक दल के प्रति उत्तरदायी है।

संविधान के अनुच्छेद 326 के अनुसार भारत का प्रत्येक वयस्क नागरिक जो 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, मतदान में भाग लेने का अधिकारी है। प्रत्येक राज्य इसके लिये मतदाता सूचियां तैयार करता है और मतदाता को एक फोटो पहचानपत्र प्रदान किया जाता है। इसमें मतदाता का नाम, उसके पिता/पति का नाम, लिंग, आयु तथा वर्तमान पता लिखा होता है। यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है जो मतदान के लिये ही नहीं, अपितु अन्य विभागों के लिये भी एक पहचानपत्र और निवास स्थान के साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

भारत में चुनाव द्वारा सरकार चुनने की प्रक्रिया स्वतंत्रता पूर्व 1935 में गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 द्वारा आरंभ हुई थी और कौंसिल में पहली बार स्वतंत्र चुनाव द्वारा 1936 में जनता द्वारा जनता की सरकार चुनी गई थी। इसके पश्चात 1950 में संविधान के लागू होने पर 1952 में प्रथम लोकसभा का गठन हुआ था और तब से लेकर अब तक 14 लोक सभाएं गठित हो चुकी हैं। लोकसभा का सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष का होता है और फिर चुनाव द्वारा नयी लोकसभा का गठन किया जाता है।

राष्ट्रपति द्वारा चुनाव आयोग को लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव संपन्न कराने के आदेश के बाद चुनाव आयोग चुनावी प्रक्रिया आरंभ कर देता है। आयोग द्वारा चुनाव की घोषणा करते ही पूरे देश में चुनावी आचार-संहिता लागू हो जाती है और चुनाव के परिणाम आने तक प्रभावी रहती है।

चुनाव आचार संहिता है क्या?

चुनाव आचार संहिता निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित किए गए दिशानिर्देश हैं जिनका पालन सभी राजनीतिक दलों तथा प्रत्याशियों को पूरा करना होता है ताकि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से कराए जा सकें।

चुनाव आचार संहिता की आवश्यकता

चुनाव आचार संहिता सभी राजनीतिक दलों को अपने प्रचार सुचारू रूप से करने, विभिन्न राजनीतिक दलों में आपसी टकराव रोकने तथा चुनावी वातावरण में शांति और व्यवस्था बनाए रखने का माध्यम है। इसका उद्देश्य सत्ताधारी पार्टी, चाहे वह केंद्र में हो या राज्य में, द्वारा सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग रोकना और चुनाव परिणामों पर अनुचित प्रभाव डालने से रोकना है। इसके द्वारा आयोग चुनाव की गतिविधियों पर अपनी नज़र रखता है।

चुनाव आचार संहिता का लागू होना

चुनाव आयोग द्वारा लोकसभा के चुनाव की घोषणा करते ही पूरे देश में चुनाव

आचारसंहिता प्रभाव में आ जाती है। इसी प्रकार राज्यों में यह संहिता राज्य में विधान सभाओं, ग्राम पंचायतों और नगर पालिकाओं के चुनाव की घोषणा करने से प्रभाव में आ जाती है और चुनाव के परिणाम आने तक प्रभाव में रहती है।

आचार संहिता सभी राजनीतिक दलों, उनके प्रत्याशियों, राज्य में सरकार और सभी सरकारी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू रहती है।

सरकार और सत्ताधारी दल पर संहिता का प्रभाव

आचार संहिता के लागू होते ही केंद्र में प्रधानमंत्री और राज्य में मुख्यमंत्री सहित कोई भी मंत्री अपने चुनाव प्रचार के लिये सरकारी मशीनरी का उपयोग नहीं कर सकता और न ही सरकारी कर्मचारियों को चुनाव प्रचार के काम में लगा सकता है।

चुनाव की घोषणा होने और आचार संहिता के लागू होने पर चुनाव से संबंधित सभी अधिकारी और कर्मचारी चुनाव आयोग के निर्देश पर ही कार्य करते हैं। चुनाव से संबंधित किसी भी अधिकारी और कर्मचारी का चुनाव परिणाम आने तक स्थानांतरण नहीं किया जा सकता। यदि कोई अधिकारी या कर्मचारी अपने दायित्व का निर्वाह करने में असफल रहता है अथवा चुनाव आयोग यह अनुभव करता है कि कोई अधिकारी या कर्मचारी किसी राजनीतिक दल अथवा प्रत्याशी को पक्षपात द्वारा अनुचित लाभ पहुंचाने का प्रयास कर रहा है तो चुनाव आयोग उस अधिकारी या कर्मचारी को उसके दायित्व से मुक्त कर सकता है।

संहिता के लागू रहने तक कोई भी मंत्री अथवा विभाग किसी भी प्रकार का अनुदान तथा भुगतान नहीं कर सकता।

दूरदर्शन और आकाशवाणी पर प्रचार की सुविधा सभी राजनीतिक दलों और प्रत्याशियों को समान रूप से उपलब्ध होती है और इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता।

मंत्री और अन्य सरकारी विभाग किसी प्रकार की वित्तीय घोषणा और सार्वजनिक सुविधाओं के आरंभ होने की घोषणा या उनका उद्घाटन नहीं कर सकते हैं और सरकार तथा सरकारी उपक्रमों में तदर्थ नियुक्तियों पर भी रोक लग जाती है।

सरकारी पैसे से किसी भी प्रकार के विज्ञापन जारी नहीं किए जा सकते और न ही सरकार की उपलब्धियों के प्रचार के लिये सरकारी मीडिया का प्रयोग किया जा सकता है।

आचार संहिता के लागू रहने के दौरान प्रचार-प्रसार

राजनीतिक दल अपने दलों का घोषणापत्र, जिसमें उनके द्वारा आरंभ किए जाने वाले कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण होता है, जारी कर सकते हैं तथा अपने दलों के नेताओं की उपलब्धियों और विरोधी नेताओं की विफलताओं का प्रचार कर सकते हैं। साथ ही विरोधियों की नीतियों की आलोचना भी कर सकते हैं। यह आलोचना उनकी नीतियों के आधार पर होनी चाहिए न कि व्यक्तिगत। अपने इस प्रचार में वे नारों का भी उपयोग कर सकते हैं। रैलियों और सभाओं का आयोजन कर सकते हैं ताकि उनके प्रत्याशियों और सहयोगियों का मनोबल बढ़ाया जा सके। साथ ही वे अपने क्षेत्र के मतदाताओं से व्यक्तिगत संपर्क भी स्थापित कर सकते हैं।

राजनीतिक दल और प्रत्याशी अपने प्रचार के लिये मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारों आदि जैसे धार्मिक स्थानों का प्रयोग नहीं कर सकते। न ही वे अपने भाषणों में धार्मिक और जातिगत आधार पर वोटों की मांग कर सकते हैं और ऐसे शब्दों का प्रयोग भी नहीं कर सकते जिससे धार्मिक और जातिगत घृणा बढ़े और विभिन्न पक्षों के बीच तनाव उत्पन्न हो।

राजनीतिक दलों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसा कोई कार्य न करें जिससे नागरिकों की शांति भंग हो। वे सरकारी संपत्ति, भवनों आदि को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाएंगे और पोस्टर, नारों आदि से उन्हें बदरंग भी नहीं करेंगे। वे विरोधी दलों को अपना प्रचार शांतिपूर्वक करने देंगे और इसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पहुंचाएंगे।

मतदान से 48 घंटे पूर्व प्रचार समाप्त करना होगा और मतदान के दिन मतदाताओं को किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं दिया जाएगा। उनसे अपेक्षा की जाती है कि मतदान के दिन और मतगणना के दिन वे चुनाव से संबंधित अधिकारियों को अपना सहयोग देंगे।

यदि कोई भी दल अथवा उनका प्रत्याशी चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित किए गए दिशा निर्देशों का पालन नहीं करता या पालन करने से इंकार करता है तो चुनाव आयोग को उस प्रत्याशी को अयोग्य ठहराने का अधिकार होता है साथ ही चुनाव आयोग को उस राजनीतिक दल अथवा प्रत्याशी पर आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार भी होता है।

चुनाव आयोग के दिशानिर्देश और स्थानीय निकायों के चुनाव

संविधान के 73वें और 74वें संशोधन में स्थानीय निकायों यथा- ग्राम पंचायतों और नगरपालिकाओं की स्थापना और उनके चुनाव का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद 243 के द्वारा राज्य चुनाव आयोग पर इन स्थानीय निकायों के चुनाव संपन्न कराने का दायित्व है।

राज्य में विधानसभा अथवा स्थानीय निकायों के चुनाव की घोषणा होते ही चुनाव आचार संहिता प्रभाव में आ जाती है और चुनाव आयोग के सभी दिशानिर्देश लागू हो जाते हैं जो चुनावों के परिणाम आने तक प्रभाव में रहते हैं।

चुनाव और छात्रसंघ

विश्वविद्यालयों में छात्रसंघों के स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये विश्वविद्यालयों ने भी अपनी आचार संहिताएं जारी की हैं जो चुनावों की घोषणा होते ही तत्काल रूप से प्रभावी हो जाती हैं। इनके अनुसार पोस्टर और लाउडस्पीकर का प्रयोग वर्जित हो जाता है। चुनाव प्रचार के लिये विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज के प्रांगण में बाहरी व्यक्तियों का प्रवेश निषिद्ध होता है और छात्रावास में रात दस बजे के बाद प्रचार नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक प्रत्याशी को एक तय सीमा तक ही चुनाव के दौरान व्यय करने की अनुमति होती है। वर्तमान में यह सीमा 10,000 रुपये तक है।

इन दिशानिर्देशों का पालन न करने पर विश्वविद्यालय को अनुशासन भंग के आधार पर कार्यवाही करने का अधिकार होता है।

चुनाव पर्यवेक्षक

चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से संपन्न कराए जा सकें और यह देखने के लिये कि आचार संहिता का पालन सभी दलों और प्रत्याशियों द्वारा किया जा रहा है, इसलिये आवश्यकता पड़ने पर चुनाव आयोग संवेदनशील स्थानों पर स्वतंत्र चुनाव पर्यवेक्षक नियुक्त कर सकता है जो आचार संहिता के लागू रहने तक अपने क्षेत्र में होने वाली चुनाव संबंधी गतिविधियों की सूचना आयोग को देता है। आयोग पर्यवेक्षकों द्वारा दी गई सूचना को गंभीरता से लेता है और तदनुसार आवश्यक कार्यवाही करता है। ❑

(लेखिका दिल्ली उच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं।
ई-मेल: garima22@yahoo.com)

लिंग्दोह समिति की सिफ़ारिशें और

शैक्षिक परिसरों का लोकतंत्रीकरण

● रंजीत अभिज्ञान

लिंग्दोह समिति की कुछ अनुशंसाओं की वजह से छात्रों में अराजनीतिकरण की प्रक्रिया तेज़ होगी जो किसी भी नज़र से लोकतांत्रिक व्यवस्था के हित में नहीं होगी। विवादास्पद अनुशंसाओं को छोड़ दिया जाए, तो लिंग्दोह समिति की बाकी अनुशंसाएं सत्ता राजनीति की वजह से अराजकता की गिरफ़्त में समाए शैक्षिक संस्थानों को साफ़-सुथरा बनाने में एक प्रभावी भूमिका निभाने वाली हैं

वर्ष 2004-2005 में केरल में छात्रसंघों के चुनाव को लेकर उठे विवाद और वहां के हाईकोर्ट द्वारा उस बाबत दिए गए फ़ैसले की पृष्ठभूमि में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने दिसंबर 2005 में पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त जे.एम. लिंग्दोह की अध्यक्षता में एक छह सदस्यीय समिति का गठन किया और उसे चार माह के भीतर रिपोर्ट सौंपने को कहा था। तब शायद मंत्रालय को अंदाजा नहीं था कि इतने कम समय में इतने संवेदनशील विषय पर रिपोर्ट मांगना कितना दुश्वार साबित होगा। मंत्रालय ने लिंग्दोह समिति का गठन देश के कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में होने वाले छात्रसंघ चुनावों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने और उनकी संरचना व कार्य प्रणालियों को साफ़-सुथरी व चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिये उपयुक्त युक्तियां सुझाने के लिये किया था। सेंटर फॉर पॉलिटिकल स्टडीज से जुड़ी प्रोफेसर जोया हसन, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च के निदेशक डॉ. प्रताप भानु मेहता, निपा के निदेशक प्रोफेसर वेद प्रकाश, अवकाशप्राप्त उप महानियंत्रक व लेखाकार आई. पी. सिंह और एसोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटिज के महासचिव प्रोफेसर दयानंद की सदस्यता वाली समिति ने चार महीने के सरकारी आदेश की सीमा में रहते हुए चेन्नई, कोलकाता, लखनऊ, मुंबई और दिल्ली में शिक्षा से जुड़े प्रशासकों और चयनित छात्र संगठनों के प्रतिनिधियों से बातचीत कर एक 83 पृष्ठीय रिपोर्ट तैयार की और उसे मई 2006 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंप दिया। रिपोर्ट सौंपने के ढाई वर्ष गुज़र जाने के बाद भी जो शोरगुल जारी है, उसका एक बड़ा कारण कथित रूप से समिति का एक बड़े दायरे में नहीं जाना और तीन-साढ़े तीन सौ लोगों की राय पर तदर्थवादी तरीक़े से रिपोर्ट को मंत्रालय को सौंप देना है। आरोप लगाया गया कि समिति पर उन रसूख वाली कॉरपोरेट शक्तियों का प्रबल दबाव था, जो शिक्षा के व्यावसायीकरण व निजीकरण की राह में व्यापक समर्थन वाले छात्रसंघों को एक बड़ी रुकावट के रूप में देख रहे थे और छात्र संघों के औचित्य को ही एकेडमिक स्वच्छता के ख़िलाफ़ खड़ा कर चुनौती दे रहे थे। उसी दौरान मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने संसद में यह घोषणा कर दी थी कि उच्च शिक्षा पर होने वाले कुल ख़र्च का कम से कम बीस फीसदी छात्र-छात्राओं से वसूला जाना चाहिए। संकेत स्पष्ट था कि उच्च शिक्षा अब ज्यादा दिनों तक समावेशी नहीं रहेगी। चूंकि उस अ-समावेशी रुझान व नीति के ख़िलाफ़ छात्रसंघों द्वारा प्रबल प्रतिवाद खड़ा किए जाने की संभावना थी, इसलिये कुछ जानकार बताते हैं कि लिंग्दोह समिति की अनुशंसाओं के नाम पर छात्रसंघों की भूमिका को नियंत्रित किए जाने की योजना बनी।

सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर मंत्रालय द्वारा ऐसी समिति के गठन का निर्णय लेने के पीछे की प्रक्रियाएं अथवा तर्क़ जो भी हो, इतना तो कहा ही जा सकता है कि आज ढाई वर्ष बाद भी लिंग्दोह समिति की अनुशंसाओं पर विवाद जारी है। रिपोर्ट की अनिवार्यता, व्यावहारिकता और स्वीकार्यता पर व्यापक विभाजन बना हुआ है। जहां एक वर्ग समिति की अनुशंसाओं को वर्तमान अराजकता के दौर में बेहद समयानुकूल तथा अनिवार्य बता रहा है, वहीं शिक्षार्थियों की एक बड़ी जमात, उनके राजनीतिक प्रतिनिधि, बुद्धिजीवी तथा नागरिक समुदाय के लोग इन अनुशंसाओं को कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के लोकतंत्रीकरण की राह में बड़ी बाधा के रूप में देख रहे है। उन्हें बहुत सारी अनुशंसाएं अव्यावहारिक लगती हैं। वे लिंग्दोह समिति के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं कि कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में राजनीतिकरण अथवा राजनीतिक शिक्षण की प्रक्रिया नहीं चलनी चाहिए।

लिंग्दोह समिति की अनुशंसाओं पर पक्ष व

विपक्ष की मोर्चाबंदी पिछले दिनों एक गंभीर मोड़ पर पहुंच गई जब उन अनुशंसाओं के नाम पर सुप्रीम कोर्ट ने देश के प्रतिष्ठित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के छात्र संघ चुनाव पर रोक लगा दिया। इस रोक ने सबको अचंभित इसलिये भी किया कि जेएनयू छात्रसंघ के चुनाव का मॉडल देश ही नहीं, दुनिया के विश्वविद्यालयों में एक आदर्श लोकतांत्रिक मॉडल के रूप में जाना जाता है और खुद लिंग्दोह समिति ने उसे एक उन्नत व कारगर मॉडल के रूप में चिह्नित किया था। फिलहाल सुप्रीम कोर्ट ने इस वर्ष के जेएनयू छात्रसंघ चुनाव पर रोक लगा रखा है और मामला विचाराधीन है, वहीं जेएनयू समेत देश के कई अन्य विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राएं प्रतिकूल अनुशंसाओं के विरुद्ध सड़कों पर उतर आए हैं।

इस पूरे प्रसंग में विस्तार से चर्चा करने से पहले यह जानना महत्वपूर्ण है कि जब लिंग्दोह समिति ने 'छात्र राजनीति, राजनीतिक शिक्षा और शैक्षिक परिवेश, के बीच चुनौतीपूर्ण संतुलन बनाते हुए छात्र संघ चुनावों को प्रतिबंधित करने की अनुशंसा नहीं की, तब आखिर उस समिति की कौन-कौन सी ऐसी अनुशंसाएं हैं, जो छात्र-छात्राओं तथा लोकतांत्रिक मानस के लोगों के गले नहीं उतर रही हैं। जहां तक छात्रसंघ चुनावों के अपराधीकरण को रोकने से संबंधित अनुशंसाओं की बात है, उन पर देश में कोई विवाद नहीं है। लोकतांत्रिक जनमत उन अनुशंसाओं के पक्ष में है। छात्रसंघ चुनावों से संबंधित शिकायतों व विवादों के निपटारे के लिये शिकायत निवारण संस्था के गठन की अनुशंसाओं पर भी शायद ही कोई विवाद है। अगर जेएनयू का अपवाद भूल जाया जाए, तो लगभग उन सभी दिल्ली व लखनऊ जैसे विश्वविद्यालयों में जहां छात्रसंघ के चुनाव होते रहे हैं, वहां पैसा विधानसभा व लोकसभा चुनावों की तरह पानी की तरह बहता है। इसके बावजूद वित्तीय ख़र्च की सीमा व वित्तीय लेन-देन की पारदर्शिता से संबंधित अनुशंसाएं भी विवादों के घेरे में नहीं हैं। हालांकि एक बड़ा समूह आज के दौर में पांच हज़ार रुपये की 'सिलिंग' को अव्यावहारिक बताता है।

लिंग्दोह समिति की जिन अनुशंसाओं पर सर्वाधिक विवाद है, वे चुनाव लड़ने की अहर्ताओं तथा चुनावों के राजनीतिकरण से जुड़ी अनुशंसाएं हैं। समिति की अनुशंसा है कि चुनाव लड़ने के लिये कक्षाओं में कम से कम 75 फीसदी उपस्थिति अथवा संस्थान द्वारा तय सीमा को अनिवार्य बनाया जाए और चुनाव में भाग लेने की उम्र सीमा स्नातक तक के स्तर पर 22 वर्ष, स्नातकोत्तर स्तर पर 25 वर्ष और शोध स्तर पर 28 वर्ष किया जाए। इसके अलावा इनमें चुनाव प्रक्रिया के राजनीतिकरण पर बंदिश लगाने पर अनुशंसा है। कहा गया है कि चुनाव प्रक्रिया में छात्र-छात्राओं से इतर किसी भी तत्व के प्रवेश की इज़ाजत नहीं होगी। कोई गैरछात्र, बुद्धिजीवी अथवा राजनेता किसी उम्मीदवार के पक्ष में भाषण भी नहीं दे सकता। समिति छात्र संघ चुनावों के अराजनीतिकरण, असंगठनीकरण और राजनीतिक प्रक्रिया से छात्र प्रतिनिधियों को अलग-थलग करने की अनुशंसा करती है। साथ-साथ एक अन्य मुख्य अनुशंसा यह भी है कि कोई भी छात्र अथवा छात्रा छात्रसंघ के पदाधिकारी पद के लिये एक बार से ज्यादा तथा कार्यकारिणी के लिये दो बार से ज्यादा चुनाव नहीं लड़ सकते।

अनेक छात्रसंघ और उनसे जुड़े छात्र-छात्राएं इन अनुशंसाओं से सहमत नहीं है। इन अनुशंसाओं पर विवाद दिन-ब-दिन गहराते रहे हैं और विरोध के स्वर चौतरफा उठ रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्रसंघ के चुनाव पर रोक ने इस विवाद के स्वरूप को राजनीतिक व वैचारिक बना दिया है। जेएनयू का शैक्षिक समाज यहां तक कह रहा है कि लिंग्दोह समिति की सिफ़ारिशों को अतार्किक और अपने को तर्कसंगत व वैचारिक ठहरा रहा है। पिछले दिनों उक्त विवादास्पद अनुशंसाओं के विरोध में वहां छात्रों ने हड़ताल की अभी जेएनयू में अखिल भारतीय छात्रसंघ से जुड़े छात्र-छात्राएं छात्रसंघ के पदों पर काबिज़ हैं। इस संगठन ने बीते साल 14-15 नवंबर को दिल्ली में जेएनयू के आंदोलन के समर्थन में राष्ट्रीय स्तर का एक प्रतिवाद कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें विभिन्न प्रदेशों के विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया।

इस आंदोलन में शामिल एक छात्रा ने कहा कि "हम छात्र राजनीति ही क्या समूची राजनीति के अपराधीकरण के ख़िलाफ़ हैं, किंतु हमारा यह मानना है कि किसी शासकीय अथवा अदालती फरमान के जरिये राजनीति के अपराधीकरण का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। शैक्षिक परिसरों व समाज तथा राष्ट्र व्यवस्था के विभिन्न अंगों के मुकम्मल लोकतंत्रीकरण और छात्र-छात्राओं समेत आम लोगों की अधिकतम राजनीतिक भागीदारी के बल पर ही राजनीति के अपराधीकरण का मुक़ाबला किया जा सकता है।"

लिंग्दोह समिति की अनुशंसाएं कहती हैं कि देश के सभी सरकारी व निजी महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में छात्रसंघों के चुनाव होने चाहिए, किंतु वास्तविकता यह है कि देश के केवल आठ केंद्रीय विश्वविद्यालयों में ही ऐसे चुनाव होते हैं। बिहार में दशकों से छात्रसंघों पर ताला लगा हुआ है, वहीं उत्तर प्रदेश की निजाम ने पिछले वर्ष सभी छात्रसंघ चुनावों पर रोक लगा दिया है। सवाल उठता है कि लिंग्दोह समिति बिहार व उत्तर प्रदेश की लोकतंत्र विरोधी हुकूमतों पर नकेल क्यों नहीं कसता?

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय के अनेक शिक्षक व प्राध्यापक भी स्वीकार करते हैं कि लिंग्दोह समिति ने इस पूरे मसले को एक खास 'फ्रेम' में देखा है। उनकी राय में लिंग्दोह समिति की कुछ विवादास्पद अनुशंसाओं की वजह से छात्रों में अराजनीतिकरण की प्रक्रिया तेज़ होगी, जो किसी भी नज़र से लोकतांत्रिक व्यवस्था के हित में नहीं होगी। किंतु वे यह भी मानते हैं कि विवादास्पद अनुशंसाओं को छोड़ दिया जाए, तो लिंग्दोह समिति की बाकी अनुशंसाएं सत्ता राजनीति की वजह से अराजकता की गिरफ़्त में समाए शैक्षिक संस्थानों को साफ़-सुथरा बनाने में एक प्रभावी भूमिका निभाने वाली हैं।

इन सब वादों व प्रतिवादों के बीच देश के सर्वोच्च न्यायालय को लिंग्दोह समिति की अनुशंसाओं पर अपने निर्देश को स्पष्ट करना है। वह चाहे तो उन अनुशंसाओं की न्यायिक समीक्षा तक करवा सकता है अथवा मानव संसाधन विकास मंत्रालय को निर्देश दे सकता है कि वह इस विषय पर पूरे देश में एक व्यापक विमर्श कराए और उसके बाद अपने रुख से न्यायालय को अवगत कराए। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेल : abhigyanranjit@gmail.com)

राजनीति में महिला नेतृत्व
संभावनाओं की तलाश

● ऋतु सारस्वत

भारत को स्वतंत्र हुए छह दशक बीत चुके हैं और बीते दशक अपने गति को कायम रखते हुए परिवर्तन के नवीन आयामों को लाते रहे हैं। इस अवधि में समाज में बहुत कुछ बदला। स्वतंत्रता के बाद हमारे यहां जो लोकतांत्रिक प्रणाली लाई गई वह वैश्विक वयस्क मताधिकार पर आधारित है। नागरिकों को मिले समान अधिकारों के साथ ही भारतीय महिलाओं को समान शैक्षिक अवसर, संपत्ति और विरासत में बराबर का अधिकार प्राप्त हुआ, जिससे सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया, लेकिन राजनीतिक मानचित्र फिर भी नहीं बदला। भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में पिछले कुछ वर्षों से 'महिला सशक्तीकरण' की अवधारणा का प्रयोग हो रहा है। महिला सशक्तीकरण के संबंध में ऑफिस ऑफ द यूनाइटेड नेशंस हाई कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स ने लिखा है कि "यह औरतों को शक्ति, क्षमता तथा काबलियत देता है ताकि वह अपने जीवनस्तर को सुधार कर अपने जीवन की दिशा को स्वयं निर्धारित कर सकें।" अर्थात यह वह प्रक्रिया है जो महिलाओं को सत्ता की कार्यशैली समझने की न केवल समझ दे अपितु साथ ही साथ सत्ता के स्रोतों पर नियंत्रण कर सकने की क्षमता प्रदान करे।

राजनीति के क्षेत्र में लंबे समय से पुरुषों का वर्चस्व कायम रहा है। महिलाओं की स्थिति की विवेचना करने के लिये 1971 में एक समिति गठित की गई थी। 'टुवड्र्स इक्वलिटी' शीर्षक से 1974 में प्रकाशित इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि संस्थागत तौर पर सबसे बड़ी अल्पसंख्यक होने के बावजूद राजनीति पर महिलाओं का असर नाममात्र है। इस संबंध में समिति ने सुझाव दिया था कि इसका उपाय यही है कि हर राजनैतिक दल महिला उम्मीदवारों का एक कोटा निर्धारित करे और जब तक ऐसा हो, तब तक उपाय के तौर पर समिति ने नगरपरिषदों और पंचायतों में महिलाओं के लिये सीटें आरक्षित करने के लिये संविधान में संशोधन करने की सिफ़ारिश की। सन् 1993 में 73वें और 74वें संविधान संशाधनों के माध्यम से ऐसा किया भी गया। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान महिला सशक्तीकरण तथा निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता में वृद्धि की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। बिहार तथा राजस्थान ने इस आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया है। पंचायतीराज संस्था, जो ज़मीनी लोकतांत्रिक ढांचे निर्मित करती है, में महिलाओं की भागीदारी ने ग्रामीण संरचना को सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में बढ़ाया। महिलाओं की पंचायत के माध्यम से विकास प्रक्रियाओं एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहभागिता एक ओर लोकतांत्रिक, राजनीतिक, सामाजिक न्याय तथा समानता के मध्य संबंधों को अभिव्यक्त करती है तथा दूसरी ओर लोकतंत्र की जड़ों को मज़बूत करती है। यह सर्वविदित सत्य है कि महिलाएं वित्तीय संसाधनों का उचित प्रयोग करना भलीभांति जानती हैं और अपनी इस क्षमता का उपयोग उन्होंने गांव के वित्तीय संसाधनों को नियंत्रित व नियमित करने में किया है और इसके जीवंत उदाहरण राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश की उन महिला सरपंचों तथा पंचों के हैं जिन्होंने पानी, शिक्षा व सड़क के लिये प्रस्तावित बजट से कम में ही कार्य को पूर्ण कर दिखाया। ऐसा नहीं है कि ये सारे कार्य सहजता से हो गए। इनके मार्ग में अनेक बाधाएं आईं और आ रही हैं परंतु अनुभव और आत्मविश्वास उन बाधाओं को पार करने के रास्ते खोज लेता है। पुरुष सत्तात्मक समाज में महिला के नेतृत्व को स्वीकार कर पाना आसान नहीं है और यही कारण रहा कि येन-केन-प्रकारेण महिला सरपंचों को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटाने के प्रयास भी किए गए। इस समस्या से निबटने के लिये वर्ष 2008 के मध्य में केंद्र सरकार ने राज्यों से यह सुनिश्चित करने को कहा कि महिला सरपंचों को डेढ़ साल से पहले अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से न हटाया जाए। सरकार द्वारा उठाया गया कदम न केवल महिला नेतृत्व की स्वीकारोक्ति का प्रमाण है अपितु विश्वास का प्रतीक भी है जो कि महिला नेताओं पर किया गया है। पर दुख की बात यह है कि इस विश्वास का अभाव राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक मंच पर है।

केंद्र सरकार द्वारा संसद तथा विधान मंडलों में महिलाओं के लिये एक तिहाई सीटों पर

आरक्षण प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम 1996 में इसे संसद में पेश किया गया था। वर्ष 1998 में विधेयक को पास कराने हेतु सभी राजनीतिक दलों में आम राय बनाने का प्रयत्न किया गया जो असफल रहा और तब से लेकर आज तक राजनीति के गलियारे में यह विधेयक भटक रहा है।

आरक्षण का अभिप्राय समाज में शोषण व असमानता का शिकार रही जनसंख्या को संरक्षणमूलक अवसर देना है जिससे वे भविष्य में निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा बनें और कालांतर में स्वयं को लोकतांत्रिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय हिस्सा मानें। अगर महिलाओं को संसद तथा विधानमंडलों में आरक्षण प्राप्त होगा तो एक तरफ महिलाएं चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बनेंगी और दूसरी तरफ राजनीतिक दलों में सक्रिय सहभागिता का अवसर प्राप्त होगा जिससे महिला सशक्तीकरण की अवधारणा मूर्त रूप ग्रहण कर सकेगी। यह आरक्षण उन्हें संकीर्ण व सीमित दायरे से बाहर लाने में मददगार सिद्ध होगा और साथ ही यह भी साबित होगा कि पारिवारिक परिवेश से बाहर की समस्याएं भी उनकी समस्याएं हैं।

विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जिन्होंने महिलाओं की स्थिति को उच्च करने हेतु आरक्षण प्रदान किया है। विश्वभर में अधिकांश राजनैतिक दलों ने अपनी राष्ट्रीय विधायिकाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व दलगत प्रतिनिधित्व के माध्यम से प्राप्त किया है। रवांडा इसका उदाहरण है। रवांडा विश्व का एक ऐसा देश है जहां संसद की 50 प्रतिशत सीटों पर महिला प्रतिनिधियों ने विजय हासिल की है। 14 सितंबर, 2008 को रवांडा की संसद के लिये हुए चुनावों के आरंभिक नतीज़े उन देशों के लिये उदाहरण हैं जो महिलाओं को घर की चारदीवारी में समेट कर रखना चाहते हैं। 1994 के बाद रवांडा के संविधान में संसद में महिलाओं के लिये 30 प्रतिशत सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया गया था। 'इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन' के अनुसार 2005 में विभिन्न देशों में महिलाओं का वहां की संसद में प्रतिनिधित्व भारत की अपेक्षा बहुत अधिक रहा है। यह स्वीडन में 45.3 प्रतिशत, नार्वे में 37.9 प्रतिशत, फिनलैंड में 37.9 प्रतिशत, डेनमार्क में 36.9 प्रतिशत तथा मोजांबिक में 34.8 प्रतिशत था। यहां तक कि पाकिस्तान में भी संसद में महिला प्रतिनिधित्व 21.2 प्रतिशत है।

भारत में किसी भी राजनीतिक दल ने महिला आरक्षण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने के बावजूद इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया है। सबसे मज़बूत और विशाल लोकतंत्र का दावा करने वाले हमारे देश में संसद में महिलाओं की प्रतिनिधित्व मात्र 8.3 प्रतिशत है। ये आंकड़े पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के नेतृत्व की अस्वीकार्यता की संकीर्ण मानसिकता को उज़ागर करते हैं। भारतीय संसद में महिलाओं का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व 1999-2004 में था, जिसमें 49 महिला सदस्य थीं। विधायिका में महिला सदस्यों की दृष्टि से भारत का स्थान 183 देशों में 134वां है और वह उन 67 देशों में सम्मिलित है, जिनमें महिलाओं का प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत से भी कम है। उतना ही दुखद पहलू यह भी है कि केंद्रीय मंत्रियों में मात्र 9 प्रतिशत महिलाएं हैं।

महिला नेतृत्व को तभी बल मिल सकता है जब उन्हें आरक्षण प्राप्त हो। महिला आरक्षण से संबंधित विधेयक के विरोध में आमतौर पर यह तर्क़ दिया जाता है कि महिलाओं के लिये राजनीति के दावपेंचों को समझना मुश्किल है क्योंकि महिला का जीवन अधिकांशत: घर-परिवार के मध्य ही व्यतीत हो जाता है। इसलिये राजनीति जैसे गूढ़ विषय को समझना एवं नेतृत्व की क्षमता को विकसित करना महिलाओं की बस की बात नहीं है। परोक्ष रूप से कई पुरुष नेताओं का यह विश्वास है कि महिलाओं की चुनाव जीतने की संभावना कम होती है, परंतु यह धारणा तथ्यों से मेल नहीं खाती। 1991 में चुनाव लड़ने वाली महिलाओं में से 11.38 प्रतिशत चुनाव जीतीं जबकि पुरुषों में से सिर्फ़ 5.77 चुनाव जीत सकें। 1996 में चुनाव लड़ने वाली महिलाओं में 6.5 प्रतिशत चुनाव जीतीं, जबकि पुरुषों में से केवल 3.75 चुनाव जीत सके। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं में चुनाव जीतने की क्षमता पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक है परंतु परंपरावादी समाज का ढिंढोरा पीटने वाले भारतीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिला उम्मीदवारों के समक्ष विश्वसनीयता की समस्या ज्यादा होती है। विश्वसनीयता की समस्या तीन तथ्यों के आसपास घूमती है - योग्यता, दृढ़ता और चुनाव जीतने की क्षमता। पुरुषों को हमेशा ही योग्य माना जाता रहा है परंतु महिलाओं को अपनी योग्यता सिद्ध करनी होती है और इस कटु सत्य को किसी हद तक महिलाएं आत्मसात कर चुकी हैं। चुनाव जीतने की क्षमता का प्रश्न एक दुष्चक्र की भांति है जिसमें अपनी दृढ़ता साबित करने में काफी दिक्क़तों का सामना करना पड़ता है विशेषकर महिला राजनेताओं को आम जनता को यह विश्वास दिलाना होता है कि वे अपने राजनीतिक जीवन के लिये अपने परिवार की उपेक्षा नहीं कर रही हैं। चुनावी अग्नि परीक्षाओं को पार कराने में आरक्षण सहायक सिद्ध हो सकता है। स्वतंत्रता, विकास, खुलेपन एवं उदार दृष्टि का समुच्चय व्यक्ति की क्षमता और सामर्थ्य को अपरिमित बना देता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रवादी आंदोलन के गांधीवादी दौर में महिलाएं बड़ी संख्या में घर की चारदीवारी से बाहर निकली थीं और स्वतंत्रता की लड़ाई में उन्होंने अहम एवं सक्रिय भागीदारी निभाई थी। गांधीजी ने स्पष्टतौर पर यह कहा था कि ''समाज महिलाओं की समानता, उनके सम्मान और अधिकारों को स्वीकारे और उन्हें पतियों और परिवार के साथ बराबर की भागीदार माने।''

परिवर्तन के वाहक के तौर पर राजनीतिक दलों को लैंगिक विषयों के प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है। यहां तक कि जब महिलाओं को मताधिकार मिला था, तब भी राजनीतिक दलों के भीतर उनकी स्थिति में मात्र आंशिक सुधार ही आया था। विश्व के लगभग सभी हिस्सों में महिलाओं का बढ़ा हुआ प्रतिनिधित्व सिर्फ़ उन्हें समान नागरिक के तौर पर स्वीकार करने के लिये नहीं, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्त्रीपरक दृष्टिकोण को सम्मिलित करने हेतु किया गया। राजनीतिक नेतृत्व महिलाओं के विकास से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है इसलिये आवश्यकता है कि राजनीतिक दल और उनसे संबद्ध संगठन अपनी पुनर्रचना करें जहां महिलाओं के प्रति ज्यादा संवेदनशीलता और जवाबदेही हो। हमें इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि विधायिका में महिलाओं की संख्या न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करेगी, बल्कि लैंगिक समानता और न्याय के प्रति प्रतिबद्ध समाज का निर्माण भी करेगी। ❑

(लेखिका समाजशास्त्री हैं।

ई-मेल : saraswatritu@yahoo.co.in)

बीते छह दशक का चुनावी सफ़र

● अंजू कुमारी

भारत में गणतांत्रिक प्रणाली का इतिहास काफी पुराना है। वैशाली और लिच्छवी गणतंत्र के प्रामाणिक संदर्भ हमें उस काल में मिलते हैं जब न केवल समूचा यूरोप वरन सारा विश्व इसकी कल्पना भी नहीं कर पाया था। पंचायत व्यवस्था के रूप में यह जनतांत्रिक धारा किसी न किसी रूप में लगातार प्रवहमान रही। लेकिन यह भी सही है कि इसकी वैज्ञानिक और आधुनिक पद्धति पर यूरोपीय देशों की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का प्रभाव है। आज़ाद भारत में अबतक हुए लोकसभा तथा विधान सभाओं के आम चुनावों का संक्षिप्त विवरण इस लेख में प्रस्तुत है।

भारत की संसद के लिये अब तक 14 बार चुनाव हो चुके हैं। 15वां आमचुनाव इसी वर्ष होने को है। पहला आम चुनाव 1951-52 में हुआ। इसमें 1,800 के करीब प्रत्याशियों ने लोकसभा की 489 सीटों तथा लगभग 15,000 प्रत्याशियों ने 5,283 विधानसभा सीटों के लिये चुनाव लड़ा। सभी राज्यों में कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया तथा लोकसभा में इसने दो-तिहाई से भी अधिक स्थान प्राप्त किए। साम्यवादी दल दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आया।

दूसरा आम चुनाव फरवरी-मार्च 1957 में हुआ। इसमें लगभग 14,000 प्रत्याशियों ने लोकसभा की 494 सीटों तथा राज्यों की विधानसभाओं की 3,102 सीटों के लिये चुनाव लड़ा। इस चुनाव में भी कांग्रेस ने लगभग सभी राज्यों में (केरल तथा उड़ीसा को छोड़कर) स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। केंद्र में भी कांगेस ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। लोकसभा में एक बार फिर साम्यवादी दल दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आया। राज्यों में भी साम्यवादी दल ने अपनी सीटों में काफी वृद्धि की। केरल, पश्चिमी बंगाल तथा मुंबई की विधानसभाओं में भी इस की स्थिति में काफी सुधार हुआ।

तीसरा आम चुनाव 1962 में लोकसभा तथा कुछ राज्यों की विधानसभाओं (केरल तथा उड़ीसा में इससे पूर्व मध्यवर्ती चुनाव हो चुके थे) के लिये हुआ। यह चुनाव 10 दिन में पूरा कर लिया गया। इस चुनाव में लोकसभा की 494 सीटों के लिये 1,985 प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा।

चौथा आम चुनाव 1967 में हुआ। यह चुनाव लोकसभा की 520 सीटों तथा 17 राज्यों व 10 संघीय क्षेत्रों की 3,560 सीटों के लिये हुआ। इस चुनाव ने भारत की राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह से बदल दिया। इस चुनाव के फलस्वरूप कांग्रेस का सत्ता पर एकाधिकार समाप्त हो गया। भले ही कांग्रेस ने इस चुनाव में केंद्र में सत्ता प्राप्त करने में सफ़लता पाई परंतु लोकसभा में इसकी सीटों में काफी कमी आई। 17 में से आठ राज्यों में कांग्रेस का बहुमत समाप्त हो गया तथा वहां पर मिली-जुली गैर-कांग्रेसी सरकारें गठित की गईं।

अगला चुनाव समय से पूर्व 1971 में कराया गया क्योंकि उस समय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने समय से पूर्व लोकसभा को भंग करने की सिफ़ारिश की। इस चुनाव में लोकसभा की 518 सीटों के लिये 2,784 प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा। इस चुनाव ने लोकसभा में 352 स्थान प्राप्त किए। साम्यवादी दल तथा डीएमके के अतिरिक्त सभी विरोधी दलों का इस चुनाव में प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा।

छठा आम चुनाव आपातकाल की समाप्ति के पश्चात 1977 में कराया गया। इस चुनाव में सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने संयुक्त रूप से कांग्रेस(ई) के विरुद्ध चुनाव लड़ने का निर्णय लिया। इस चुनाव में कांग्रेस तथा जनता पार्टी (जिस का गठन कांग्रेस (औ), जनसंघ, भारतीय लोक दल, समाजवादी पार्टी तथा कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी के नेताओं द्वारा किया गया) में सीधी टक्कर हुई। जनता पार्टी ने अनेक अन्य राजनीतिक दलों के साथ भी चुनावी तालमेल कर लिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस चुनाव में पहले हुए चुनावों की तुलना में प्रत्याशियों की संख्या काफी कम थी। कुल मिलाकर 2,439 प्रत्याशी 542 लोकसभा सीटों के लिये मैदान में उतरे। इस चुनाव के फलस्वरूप केंद्र में कांग्रेस(ई) सरकार सत्ता से बाहर हो गई और जनता पार्टी ने केंद्र में सरकार बनाई। जनता पार्टी को इसके सहयोगी दल, कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी सहित लोकसभा में 297 सीटें प्राप्त हुई। जनता सरकार का नेतृत्व मोरारजी देसाई द्वारा किया गया।

भारत में सातवीं बार आम चुनाव 1980 में जनता दल की आपसी फूट के कारण हुए। आपसी मतभेदों के कारण जनता दल के नेता मोरारजी देसाई ने त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात चरण सिंह ने कांगेस(ई) के समर्थन से सरकार का गठन किया। परंतु चरण सिंह सरकार अधिक समय तक नहीं चल पाई और इसने लोकसभा का समर्थन प्राप्त किए बिना त्यागपत्र दे दिया। इस चुनाव में लोकसभा की 542 सीटों के लिये 4,620 प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा। इस चुनाव में कांग्रेस को बड़ी सफ़लता मिली और उसने लोकसभा में 351 सीटें जीत कर दो-तिहाई बहुमत प्राप्त किया। लोकदल 41 सीटों के साथ दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने

आया।

आठवां आम चुनाव दिसंबर 1984 में हुआ जिसमें पंजाब और असम को छोड़कर सभी राज्यों तथा केंद्र शासित क्षेत्रों ने भाग लिया। इस चुनाव में लोकसभा की 542 सीटों के लिये 5,301 प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा। इस चुनाव में राजीव गांधी के नेतृत्व में अभूतपूर्व सफ़लता प्राप्त की तथा 401 सीटें प्राप्त कीं। अन्य सभी विरोधी दलों का प्रदर्शन बहुत ही निराशजनक रहा। आंध्र प्रदेश का एक क्षेत्रीय दल तेलगु देशम लोकसभा में सबसे बड़े विरोधी दल के रूप में उभर कर सामने आया। इसे लोकसभा में 28 स्थान मिले।

नौवां आम चुनाव नवंबर 1989 में हुआ जिसमें असम को छोड़कर सभी राज्यों ने भाग लिया। असम लोकसभा चुनाव में इसलिये भाग नहीं ले पाया क्योंकि इसकी मतदाता सूचियां तैयार हो रही थीं। साथ ही बहुत से राज्यों- आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गोवा, सिक्किम तथा उत्तर प्रदेश- में भी विधानसभाओं के लिये चुनाव कराए गए। लोकसभा की 523 सीटों के लिये 6,000 से ऊपर प्रत्याशियों ने चुनाव में भाग लिया। भले ही कांग्रेस इस चुनाव में सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आई परंतु उत्तर भारत में इसे गहरा आघात पहुंचा। हालांकि दक्षिण में कांग्रेस का प्रदर्शन काफी अच्छा रहा। लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं था तथा कांग्रेस ने विपक्ष में बैठने का निर्णय लिया। इसलिये राष्ट्रपति ने लोकसभा के दूसरे सबसे बड़े दल नेशनल फ्रंट के नेता वी.पी. सिंह को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। भारतीय जनता पार्टी तथा अन्य वामपंथी दलों ने बाहर से सरकार का समर्थन करने का निर्णय लिया।

1991 में चंद्रशेखर सरकार द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के पश्चात देश में मध्यवर्ती चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। प्रारंभ में 20, 24 तथा 26 मई को चुनाव कराना तय हुआ परंतु 20 मई के चुनाव के पश्चात राजीव गांधी की हत्या के कारण चुनाव 12 व 15 जून को कराने का निर्णय लिया गया। लोकसभा के चुनाव के साथ-साथ अनेक राज्यों की विधानसभाओं के लिये भी चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। इन राज्यों में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पांडिचेरी, पश्चिमी बंगाल तथा केरल सम्मिलित थे। लोकसभा में कांग्रेस 226 स्थानों के साथ सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आई। भारतीय जनता पार्टी 119 सीटों के साथ लोकसभा के दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। जनता दल, जिसे नौवीं लोकसभा में 143 स्थान प्राप्त हुए, इस चुनाव में केवल 55 स्थान ही प्राप्त कर पाया। कांग्रेस ने पी. वी. नरसिम्हा राव के नेतृतव में एक अल्पसंख्यक सरकार का गठन किया। कुछ समय बाद अजीत सिंह के नेतृत्व में एक गुट के कांग्रेस विलय के उपरांत यह सरकार बहुसंख्यक सरकार में परिवर्तित हो गई।

मई 1996 में लोकसभा तथा असम, हरियाणा, केरल, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल तथा पांडिचेरी की विधानसभाओं के लिये चुनाव हुए जो भारत के चुनावी इतिहास में सबसे अधिक शांतिपूर्ण व कम ख़र्चीले माने जाते हैं। इन चुनावों में लोकसभा में तीनों मुख्य राजनीतिक गुटों- कांग्रेस (ई), भाजपा तथा राष्ट्रीय फ्रंट- वामपंथी फ्रंट में से कोई स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाया। इस चुनाव में भाजपा तथा उसके सहयोगियों ने 194 सीटें प्राप्त की जबकि कांग्रेस को केवल 136 सीटें मिली। नेशनल फ्रंट तथा वामपंथी फ्रंट 186 सीटें प्राप्त कर दूसरे स्थान पर रहा। क्षेत्रीय दलों ने भी इस चुनाव में काफी स्थान प्राप्त किए। 15 मई, 1996 को भाजपा सब से बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आया और उसे सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया गया। उसे लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिये दो सप्ताह का समय दिया गया। इसतरह अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में केंद्र में प्रथम भाजपा सरकार का गठन किया गया। परंतु 28 मई, 1996 को संसद में वाद-विवाद के पश्चात श्री वाजपेयी ने अपना त्यागपत्र दे दिया। उसके पश्चात 13 भिन्न विचारधारा वाले दलों ने जनता दल के नेता देवेगौड़ा के नेतृत्व में एक मिली-जुली सरकार का गठन किया। कांग्रेस तथा वामपंथी फ्रंट ने राष्ट्रीय फ्रंट सरकार को बाहर से समर्थन देने का आश्वान दिया। लगभग 10 माह के पश्चात संयुक्त मोर्चा सरकार से कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया तथा सरकार बनाने का दावा प्रस्तुत किया। इसके फलस्वरूप संयुक्त मोर्चा सरकार का पतन हो गया। क्योंकि कांग्रेस अपने आप सरकार का गठन नहीं कर पाई इसने संयुक्त मोर्चा को फिर से इस शर्त पर समर्थन देने का आश्वासन दिया कि वह किसी मित्र नेता को प्रधानमंत्री पद पर आसीन करे। इसके उपरांत यूनाइटेड फ्रंट ने इंद्र कुमार गुजराल को जो सरकार में विदेशमंत्री थे, अपना नया नेता चुन लिया और उसे 21 अप्रैल को प्रधानमंत्री पद पर आसीन कर दिया।

यह सरकार भी केवल कुछ समय के लिये कार्य कर पाई क्योंकि डीएमके को गठबंधन सरकार से अलग किए जाने के प्रश्न पर, कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया तथा सरकार का पतन हो गया। जब फरवरी-मार्च 1998 में नये चुनाव हुए तो किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो पाया। अंततः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 13 दलों की मिलीजुली सरकार गठित की गई। 13वीं लोकसभा में राजद गठबंधन में 24 पार्टियां सामिल थी। इसे राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का नाम दिया गया। इस सरकार ने पांच साल का अपना कार्यकाल पूरा किया। उसके बाद अप्रैल-मई 2004 में चौदहवीं लोकसभा के चुनाव हुए। इसमें भाजपा नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन हार गई और कंग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने सरकार का गठन किया। डॉ. मनमोहन सिंह इसके प्रधानमंत्री बने।

विधानसभाओं के चुनाव

असम में असम गण परिषद को विधानसभा चुनाव में 122 सदस्यीय सदन में 59 स्थान प्राप्त हुए तथा इसने अन्य समान विचार रखने वाले दलों जैसेकि सीपीआई, सीपीआई (एम), तथा स्वायत्त राज्य को मांग करने वाली समिति के सहयोग से प्रफुल्ल कुमार मोहंता के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। इस चुनाव में कांग्रेस को केवल 34 सीटें मिली। हरियाणा में हरियाणा विकास पार्टी-भाजपा गठबंधन ने बंसी लाल के नेतृत्व में सरकार गठित की। केरल में सीपीएम के नेतृत्व वाले वामपंथी लोकतांत्रिक फ्रंट ने 140 सदस्यों वाली विधानसभा में 80 सीटें प्राप्त कर ई.के. नयनार के नेतृत्व में सरकार गठित की। तमिलनाडु में डीएमके के नेतृत्व वाले गठबंधन ने 192 सीटें प्राप्त कर एम.करुणानिधि के नेतृत्व में सरकार गठित की। कांग्रेस तथा एआईएडीएम के गठबंधन को केवल 3 स्थान प्राप्त हुए। पश्चिमी बंगाल में शासक वामपंथी फ्रंट ने ज्योति बसु के नेतृत्व में निरंतर पांचवीं बार सरकार का गठन किया। वामपंथी फ्रंट को 294 सदस्यों वाले विधानसभा में 203 स्थान प्राप्त हुए। पांडिचेरी में डीएमके के आर.वी.

जानकीरमण के नेतृत्व में सरकार गठित की।

जम्मू-कश्मीर राज्य में लंबी अवधि के चल रहे राष्ट्रपति शासन को सितंबर 1996 में उठा लिया गया तथा राज्य की विधानसभा के लिये नये चुनाव कराए गए जिसमें नेशनल कांफ्रेंस को स्पष्ट बहुमत (57) मिल गया और फारूक अब्दुल्ला के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। राज्य की 87 सदस्यीय विधानसभा में अन्य दलों की स्थिति इस प्रकार थी : कांग्रेस 7; भाजपा 7; जनता दल 5; बसपा 4, अवामी लींग 1, पैंथर्ज पार्टी 1, सीपीआई (सम) 1; स्वतंत्र 3। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर में पहली बार 7 वर्ष की सैनिक गतिविधियों तथा अराजकता के पश्चात एक लोकप्रिय सरकार सत्ता में आई।

अक्तूबर 1996 में उत्तर प्रदेश में एक साल के राष्ट्रपति शासन के पश्चात विधानसभा के चुनाव हुए परंतु किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो पाया। क्योंकि किसी भी तीन प्रमुख दलों अथवा उनके गठबंधन (भाजपा यूनाइटेड फ्रंट तथा कांग्रेस-बसपा) सरकार बनाने की स्थिति में नहीं थे। राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया तथा नयी निर्वाचित विधानसभा को स्थगित जीवंत स्थिति में रखा गया। स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। तब भाजपा तथा बसपा में समझौते के तहत एक मिलीजुली सरकार का गठन किया गया। अंततः 21 मार्च, 1997 को मायावती के नेतृत्व में एक मिलीजुली सरकार का गठन किया गया। समझौते की शर्तों के अनुसार 21 सितंबर, 1997 को मायावती ने 6 माह की अवधि समाप्त होने पर सत्ता भाजपा को सौंप दी। परंतु कुछ ही समय पश्चात दोनों साझेदारों में मतभेद उत्पन्न हो गए तथा मायावती ने अक्तूबर 1997 में कल्याण सिंह से अपना समर्थन वापिस लेने का निर्णय किया। परंतु कल्याण सिंह ने कांग्रेस से टूट कर आए सदस्यों तथा बसपा के विधायकों की सहायता से सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया। इसके होते हुए भी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भंडारी ने राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफ़ारिश की परंतु राष्ट्रपति ने इस सिफ़ारिश को मानने से इंकार कर दिया और कल्याण सिंह सरकार पद पर बनी रही। फरवरी 1998 में एक बार फिर राज्यपाल ने कल्याण सिंह सरकार को बर्खास्त कर दिया और जगदंबिका पाल (जिसने 425 सदस्यीय सदन में 240 विधायकों के समर्थन प्राप्त होने का दावा किया) मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। कल्याण सिंह ने राज्यपाल के इस निर्णय को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी तथा उसकी सरकार एक बार फिर बहाल कर दी गई। इस निर्णय को जगदम्बिका पाल ने सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी। सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया की दोनों गुटों को अपने दावे सिद्ध करने के लिये सदन में मिला जुला परीक्षण करना चाहिए। 26 फरवरी, 1999 को यह परीक्षण सदन में किया गया जिसमें कल्याण सिंह 29 मतों से विजयी रहे। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह एक मिली जुली सरकार का नेतृत्व करते रहे।

फरवरी 1997 में पंजाब विधानसभा के लिये चुनाव हुए जिसमें शिरोमणि अकाली दल तथा भाजपा गठबंधन ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया तथा प्रकाश सिंह बादल के नेतृतव में सरकार का गठन किया। विधानसभा में इस चुनाव के पश्चात विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति इस प्रकार थी: अकाली दल (बादल) 75; भाजपा 18; कांग्रेस 14; सीपीआई 2; बसपा 1; अकाली दल (मान) 1; स्वतंत्र 6।

बारहवीं लोकसभा का पतन

बारहवीं लोकसभा के लिये चुनाव फरवरी-मार्च 1998 में हुए जिसमें किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। भाजपा तथा उसके सहयोगी दल 253 स्थान प्राप्त कर सबसे बड़े घटक के रूप में उभरे। इस घटक में भाजपा को 180 स्थान प्राप्त हुए तथा इसके सहयोगी दलों को 73 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस तथा उसके सहयोगी दलों को 167 स्थान मिले जिनमें से कांग्रेस को 141 मिले। यूनाइटेड फ्रंट को केवल 96 स्थान प्राप्त हुए जिनमें से सीपीआई को 32, तथा समाजवादी पार्टी को 21 स्थान प्राप्त हुए। राष्ट्रपति ने अटल बिहारी वाजपेयी के आश्वासन के पश्चात कि वह एक स्थायी सरकार प्रदान कर पाएंगे उन्हें सरकार गठित करने के लिये आमंत्रण दिया। 19 मार्च, 1998 को 13 दलों की मिलीजुली सरकार ने वाजपेयी के नेतृत्व में शपथ ली। इस सरकार में सम्मिलित होने वाले दल थे भाजपा, शिवसेना, अकाली दल, लोक शक्ति, समता पार्टी, बीजू जनता दल, हरियाणा विकास पार्टी, तृणमूल कांग्रेस, अरुणाचल कांग्रेस, एआईएडीएमके पीएमके तथा टीआरसी। 28 मार्च, 1998 को सरकार ने विश्वास मत प्राप्त कर लिया। सरकार को 274 मत प्राप्त हुए जबकि उसके विरोध में 261 मत पड़े। यह सरकार अप्रैल 1999 तक सत्ता में बनी रही जब इसके एक घटक डीएमके ने सरकार से अलग होने का फ़ैसला किया। सितंबर-अक्तूबर 1999 में लोकसभा के लिये फिर से चुनाव कराए गए जिसमें भारतीय जनता दल के नेतृत्व वाले 24 दलीय राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को बहुमत प्राप्त हुआ तथा इसने सरकार गठित की। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया।

मई 2001 में असम, तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी बंगाल तथा संघीय क्षेत्र पांडेचेरी की विधानसभाओं के लिये चुनाव कराए गए। असम में कांग्रेस ने विधानसभा की 126 सीटों में से 70 सीटें प्राप्त कीं। असम गण परिषद-भारतीय जनता दल गठन को केवल 40 स्थान मिले जबकि अन्य दलों को 15 स्थान प्राप्त हुए। एक विधानसभा क्षेत्र में चुनाव रद्द कर दिया गया। तमिलनाडु में एआईएडीएमके तथा उसके सहयोगियों को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और इसने विधानसभा के 234 स्थानों में से 197 स्थान प्राप्त किए। डीएमके तथा उसके सहयोगियों को केवल 36 स्थान प्राप्त हुए। केरल में यूडीएफ ने 140 सदस्यों वाली विधानसभा में 99 स्थान प्राप्त किए, पश्चिमी बंगाल में सत्तारूढ़ एलडीएफ ने भारी सफ़लता प्राप्त की तथा 294 में से 200 स्थान प्राप्त किए। तृणमूल कांग्रेस-कांग्रेस की जोड़ी ने 86 सीटें प्राप्त कीं जबकि भारतीय जनता दल को केवल एक स्थान प्राप्त हुआ। पांडिचेरी में किसी भी मुख्य दल को 130 सदस्यीय विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। डीएमके तथा इसके सहयोगियों को 12 स्थान मिले जबकि कांग्रेस तथा उसके सहयोगियों को 13 स्थान मिले। (एआईएडीएमके) तथा उसके सहयोगियों को तीन स्थान प्राप्त हुए।

फरवरी 2002 में उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, पंजाब तथा मणिपुर को विधानसभाओं के चुनाव हुए जिसके फलस्वरूप उत्तर प्रदेश में एक त्रिशंकु विधानसभा उभर कर सामने आई। 403 सदस्यीय विधानसभा में समाजवादी पार्टी तथा उसके सहयोगी 146 सीटें प्राप्त कर सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरे। भाजपा तथा उसके सहयोगियों ने 107 सीटें प्राप्त कर दूसरा स्थान प्राप्त किया। बहुजन समाजवादी दल 98 सीटें प्राप्त कर तीसरे स्थान पर रहा। कांग्रेस को केवल 25 स्थान

प्राप्त हुए।

उत्तरांचल में जहां पहली बार चुनाव हुए, कांग्रेस ने 70 सदस्यीय विधानसभा में 36 स्थान प्राप्त कर सरकार का गठन किया। भारतीय जनता पार्टी को 19 सीटें तथा बहुजन समाजवादी पार्टी को 7 स्थान प्राप्त हुए। उत्तराखंड क्रांति दल तथा नेशनल पार्टी को क्रमश: 4 व 1 स्थान प्राप्त हुए। पंजाब में कांग्रेस ने विधानसभा की 116 सीटें प्राप्त की जबकि शिरोमणि अकाली दल व भारतीय जनता पार्टी गठबंधन को 44 स्थान प्राप्त हुए।

फरवरी 2003 में हिमाचल प्रदेश, मेघालय, नगालैंड तथा त्रिपुरा की विधानसभाओं के लिये चुनाव हुए। हिमाचल में कांग्रेस ने 65 सदस्यीय विधानसभा में 40 स्थान प्राप्त किए। हिमाचल विकास कांग्रेस लोक जनशक्ति पाटी तथा हिमाचल लोकतांत्रिक मोर्चे को एक-एक स्थान प्राप्त हुआ। स्वतंत्र प्रत्याशियों ने 6 सीटें प्राप्त कीं।

नगालैंड में हुए चुनावों के फलस्वरूप एक त्रिशंकु विधानसभा गठित हुई जिसमें किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 60 सदस्यीय विधानसभा में कांग्रेस को 21 सीटें मिलीं जबकि नगा पीपुल्स फ्रंट को 19 स्थान प्राप्त हुए। भाजपा को 7 सीटें प्राप्त हुई। शेष स्थान जेडी (यू) 3, नेशनल डेमोक्रेटिक मूवमेंट 5, समता 1, तथा स्वतंत्र प्रत्याशी के हाथ 4 सीटें आईं।

मेघालय में भी किसी एक राजनैतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 60 सदस्यीय विधानसभा में कांग्रेस को 22 स्थान प्राप्त हुए जबकि मेघालय डेमोक्रेटिक पार्टी को 14 स्थान मिले। युनाईटेड डेमोक्रेटिक को 9 सीटें मिली। केएचएनएएम को दो सीटें मिली। त्रिपुरा में तीसरी बार सत्तारूढ़ वामपंथी मोर्चा सत्ता प्राप्त करने में सफ़ल रहा। इसने विधानसभा की 60 सीटों में से 41 सीटें प्राप्त कीं। कांग्रेस को 12 सीटें मिलीं। नवगठित दल आईएनपीटी जिसने कांग्रेस के सहयोगी के रूप में चुनाव में भाग लिया 7 स्थान प्राप्त करने में सफल रहा। अकेले सीपीआई (एम) ने 37 सीटें प्राप्त कीं।

नवंबर-दिसंबर 2003 में 5 विधानसभाओं (मिज़ोरम, छत्तीसगढ़, दिल्ली, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान) के चुनाव हुए। मिज़ोरम में मिज़ो नेशनल फ्रंट ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया, तथा दूसरी बार लगातार सरकार का गठन किया। कांग्रेस को 12 स्थान मिले जबकि एमसीसी तथा जेडएनपी को क्रमश: 3 व 2 स्थान प्राप्त हुए। एमडीएफ को एक स्थान मिला जबकि एक स्थान स्वतंत्र प्रत्याशी को मिला।

छत्तीसगढ़ में, जहां पहली बार विधानसभा के लिये चुनाव हुए, भाजपा को 50 स्थान मिले तथा कांग्रेस को 37 स्थान प्राप्त हुए। नेशनल कांग्रेस पार्टी को केवल एक स्थान मिला।

दिल्ली में कांग्रेस ने बहुत बड़ी जीत प्राप्त की तथा विधानसभा के कुल 70 स्थानों में से 47 स्थान प्राप्त किए भाजपा को केवल 20 स्थान मिले। शेष 3 स्थानों पर अन्य ने जीत दर्ज़ की।

मध्य प्रदेश में भाजपा ने 230 सदस्यों वाली विधानसभा में 172 सीट प्राप्त कर दो-तिहाई बहुमत प्राप्त किया। कांग्रेस को केवल 39 सीटें प्राप्त हुई। शेष 19 स्थानों पर अन्य दल विजयी रहे। उमा भारती के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया।

राजस्थान में भी भाजपा ने बड़ी सफ़लता प्राप्त की तथा 200 सदस्यीय विधानसभा में 120 स्थान प्राप्त किए। कांग्रेस को केवल 56 सीटें मिली। अन्य ने 24 स्थान प्राप्त किए।

अप्रैल-मई 2004 में संसद (लोकसभा) तथा 4 विधानसभाओं- कर्नाटक, सिक्किम, उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश के लिये चुनाव हुए। लोकसभा में किसी भी राजनैतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। कांग्रेस तथा इसके सहयोगियों ने संसद की 22 सीटें प्राप्त कीं जिनमें कांग्रेस को 145 स्थान मिला। दूसरी ओर भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए गठन ने 185 स्थान प्राप्त किए जिनमें से 138 सीटें भाजपा को प्राप्त हुईं, वामपंथी दलों को 61 तथा अन्य दलों को 70 सीटें प्राप्त हुईं। किसी भी गठन के पास इतनी सीटें नहीं थी कि अपने आप सरकार बना सकता। काफी सांठ-गांठ के पश्चात मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस गठबंधन ने सरकार बनाई जिसे वामपंथी राजनीतिक दलों, समाजवादी पार्टी, बसपा इत्यादि ने बाहर से समर्थन देने का आश्वासन दिया।

कर्नाटक की विधानसभा के लिये हुए चुनावों में किसी भी गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। भाजपा तथा उसके सहयोगियों को 84 सीटें प्राप्त हुईं। कांग्रेस को 60 स्थान मिले जबकी अन्य दलों को 75 स्थान प्राप्त हुए। काफी सांठ-गांठ के पश्चात कांग्रेस ने जनता दल (एस) के साथ मिल कर सरकार का गठन किया।

सिक्किम में एसडीएफ ने 31 स्थान प्राप्त कर स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया तथा पवन चैमलिंग के नेतृत्व में सरकार बनाई।

उड़ीसा में बीजद-भाजपा गठबंधन ने 89 स्थान प्राप्त किए तथा सत्ता में बना रहा। कांग्रेस को 40 स्थान मिले जबकि अन्यों को 10 स्थान प्राप्त हुए।

आंध्र प्रदेश में कांग्रेस तथा उसके सहयोगियों ने भारी सफ़लता प्राप्त की तथा 9 वर्ष के पश्चात फिर से सत्ता प्राप्त की। इस चुनाव में टीडीपी भाजपा गठबंधन का प्रदर्शन बहुत निराशाजनक रहा। ❑

(लेखिका सामाजिक कार्यकर्ता और पत्रकार हैं।
ई-मेल :
stuntaran_1996@hotmail.com)

भारत के मुख्य निर्वाचन आयुक्त

1. सुकुमार सेन	21 मार्च, 1950 - 19 दिसंबर, 1958
2. के.वी.के. सुंदरम	20 दिसंबर, 1958 - 30 सितंबर, 1967
3. एस.पी. सेन वर्मा	1 अक्तूबर, 1967 - 30 सितंबर, 1972
4. डॉ. जगेंद्र सिंह	1 अक्तूबर, 1972 - 6 फरवरी, 1973
5. टी. स्वामीनाथन	7 फरवरी, 1973 - 17 जून, 1977
6. एस.एल. शकधर	18 जून, 1977 - 17 जून, 1982
7. आर.के. त्रिवेदी	18 जून, 1982 - 31 दिसंबर, 1985
8. आर.वी.एस. पेरि शास्त्री	1 जनवरी, 1986 - 25 नवंबर, 1990
9. श्रीमती वी.एस. रमादेवी	26 नवंबर, 1990 - 11दिसंबर, 1990
10. टी.एन शेषन	12 दिसंबर, 1990 - 11 दिसंबर, 1996
11. एम. एस. गिल	12 दिसंबर, 1996 - 12 जून, 2001
12. जे. एम. लिंगदोह	13 जून, 2001 - 6 फरवरी, 2004
13. टी.एस. कृष्णामूर्ति	7 फरवरी, 2004 - 29 जून, 2006
14. एन.गोपालास्वामी	30 जून, 2006 से अबतक

भारत की लोकतांत्रिक यात्रा और चुनाव सुधार

● नवीन पंत

स्वतंत्रता के बाद लोकतंत्र की राह में भारत की यात्रा की कहानी बड़ी, साहसभरी और विस्मयकारी है। पहले आम चुनाव में भारत ने अपने सभी वयस्क नागरिकों (21 वर्ष या इससे अधिक आयु के सभी स्त्री-पुरुषों) को बिना किसी भेदभाव के मताधिकार प्रदान किया। इसी के साथ भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बन गया। लोकतंत्र की राह में भारत के कदम कभी डगमगाए या विचलित नहीं हुए। उसने सदैव दृढ़ता और मज़बूती से अपने कदम आगे बढ़ाए। अब उसकी इस यात्रा के लगभग छह दशक पूरे होने को हैं। इस बीच पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यामां में लोकतंत्र की राह में गंभीर संकट और चुनौतियां आईं और वहां की जनता को वर्षों सैनिक शासन के अंतर्गत रहना पड़ा। म्यामां में स्थिति आज भी संकटपूर्ण है। भारत में लोकतंत्र पर कभी आंच नहीं आई। इस बीच भारत के निर्वाचन आयोग ने अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा और देश में स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण चुनाव कराने के लिये चुनाव प्रणाली में अनेक सुधार किए।

भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद देश का नया संविधान बनाया। संविधान सभा ने नया संविधान 26 जनवरी, 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया। नया संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया।

नया संविधान लागू करने के बाद देश के नेताओं की पहली प्राथमिकता बालिग मताधिकार के आधार पर लोकसभा और राज्य विधान सभाओं के लिये पहला आम चुनाव कराने की थी। सुकुमार सेन मार्च 1950 में पहले मुख्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्त किए गए। सुकुमार सेन की उच्च शिक्षा प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता और लंदन विश्वविद्यालय में हुई थी। लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें गणित में विशेष योग्यता हासिल करने के लिये स्वर्ण पदक प्रदान किया था। सुकुमार सेन 1921 में आईसीएस में आए। उन्हें न्यायपालिका और प्रशासन में उच्च पदों पर काम करने का व्यापक अनुभव था। मुख्य निर्वाचन आयुक्त के रूप में नियुक्ति के समय वह पश्चिम बंगाल सरकार के मुख्य सचिव थे।

गणितज्ञ सेन यह समझते थे कि पहला आम चुनाव कराना एक ऐतिहासिक तथा चुनौतीभरा काम है। देश के मतदाता 10 लाख वर्गमील के क्षेत्र में फैले थे। इसमें से कुछ क्षेत्र सर्दियों में बर्फ़ से ढके रहते थे तो राजस्थान के रेगिस्तान में धूलभरी आंधी चलती थी। इस क्षेत्र में ऊंचे-नीचे घने वन, घाटियां, नदियां, नाले और अनेक टापू थे। कुछ गांव ऐसे दुर्गम स्थानों में थे जहां पहुंचना समस्या थी।

21 वर्ष या उससे ऊपर की आयु के मतदाताओं की संख्या 17 करोड़ 60 लाख थी। इनमें से 85 प्रतिशत अशिक्षित थे। इन मतदाताओं की पहचान करना, उनके नाम मतदाता सूची में दर्ज़ करना साधारण कार्य नहीं था। फिर विभिन्न पार्टियों के चुनाव चिह्न निर्धारित करना, मतपत्र और मतदान पेटियां तैयार करना, मतदान केंद्र निर्धारित करना, उनका संचालन, अधिकारी, कर्मचारी, सहायक और पुलिसकर्मी नियुक्त करना भी आसान नहीं था।

निर्वाचन आयोग को 4,500 सीटों के लिये चुनाव कराना था। इसमें 500 सीटें लोकसभा की और शेष विधानसभा की थीं। देशभर में 2 लाख 24 हज़ार मतदान केंद्र बनाए गए, उनमें 20 लाख स्टील के बक्से रखे गए, 16 हज़ार 500 व्यक्तियों ने 6 महीनों तक मतदाता सूचियां टाइप की और फिर जांच के बाद वह प्रकाशित की गई। 56 हज़ार प्रीजाइडिंग (पीठासीन) अधिकारियों, 2 लाख 80 हज़ार सहायकों और 2 लाख 24 हज़ार पुलिसकर्मियों ने चुनाव संपन्न कराया। कुछ क्षेत्रों में 1951 में मतदान हो गया जबकि देश के बाकी हिस्सों में 1952 में मतदान पूरा हुआ। नेहरूजी चाहते थे कि आम चुनाव 1951 में पूरे हो जाएं लेकिन सकुमार सेन उन्हें यह समझाने में सफल हुए कि इस विषय में जल्दबाजी करना उचित नहीं होगा।

मतदान केंद्रों की विविधता के अलावा वे विस्तृत और दुर्गम भूभाग में फैले थे। निर्वाचन कर्मियों को उन स्थानों पर पहुंचने के लिये हाथी, जीप, नावों का इस्तेमाल करना पड़ा। इसके अलावा सामाजिक रीति-रिवाजों के चलते उत्तर भारत के क्षेत्रों में कुछ औरतें मतदाता सूची में अपना नाम गोपाल की मां और कन्हैया की पत्नी लिखाना चाहती थीं। चुनावकर्मियों के समझाने के बाद भी वे अपना नाम लिखवाने के लिये तैयार नहीं हुईं। मुख्य चुनाव आयुक्त ने इस मामले में कठोर रवैया अपनाया और चुनावकर्मियों को आदेश दिया कि केवल उन्हीं महिलाओं के नाम मतदाता सूची में दर्ज़ किए जाएं जो अपना नाम लिखवाएं। उनके इस आदेश के कारण लगभग उन 28 लाख महिलाओं के नाम मतदाता सूची से हटा दिए गए जो अपना नाम लिखवाने के लिये तैयार नहीं थीं। लेकिन यह कठोरता ऊपरी तौर पर भले असह्य लगे लेकन एक अच्छा कदम था क्योंकि अगले आम चुनावों के दौरान औरतों ने बड़े उत्साह से अपना नाम मतदाता सूची में दर्ज़ कराया।

पहले आम चुनाव के बाद से अब तक देश में लोकसभा के 14 आम चुनाव हो चुके हैं और पंद्रहवां निकट भविष्य में होगा। चौथे आम चुनाव यानी 1967 तक लोकसभा और अधिकांश विधान सभाओं के चुनाव साथ-साथ हुए। 1967 के बाद इस स्थिति में बदलाव आया जो निरंतर बढ़ता गया। 1967 का आम चुनाव पंडित नेहरू के निधन के बाद होने वाला पहला आम चुनाव था। 1967 तक राज्यों और केंद्र में सत्ता पर

लगभग कांग्रेस का एकाधिकार रहा। यद्यपि 1967 के चुनावों में राज्यों में कांग्रेस की स्थिति अपेक्षाकृत कमज़ोर हो गई।

संसद, राज्य विधानसभाओं, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के चुनाव के लिये मतदाता सूचियां तैयार कराने और इन चुनावों की व्यवस्था, निर्देशन और नियंत्रण का दायित्व निर्वाचन आयोग को है। निर्वाचन आयोग का गठन संविधान के अनुच्छेद 324(1) के तहत किया गया है। निर्वाचन आयोग एक स्वतंत्र और संवैधानिक संस्था है। अस्सी के दशक का निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय संगठन था। नब्बे के दशक के आरंभ में राष्ट्रपति ने आयोग में दो निर्वाचन आयुक्त नियुक्त कर दिए। तीनों निर्वाचन आयुक्तों के अधिकार समान हैं। किसी विषय पर मतभेद होने पर निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। पहले आम चुनाव के बाद जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप मतदाताओं की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अस्सी के दशक में मतदाता की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। इससे मतदाताओं की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है। जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 में संशोधन करके 15 मार्च, 1989 से मतदान में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का इस्तेमाल शुरू करने की व्यवस्था की गई।

पहले आम चुनाव के दौरान निर्वाचन आयोग और कार्यपालिका ने मिल-जुलकर काम किया। चौथे आम चुनावों तक लगभग यही स्थिति रही। इस बीच निर्वाचन आयोग को सत्ता के दुरुपयोग, जाली मतदान, मतदान केंद्रों पर असामाजिक तत्वों के कब्ज़े और बाहुबलियों द्वारा समाज के ग़रीब वर्गों को रोकने की शिकायतें मिली। अत: धीरे-धीरे निर्वाचन आयोग ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाई।

निर्वाचन आयोग ने सभी पार्टियों के साथ विचार-विमर्श करने के बाद और उनकी सहमति से चुनावों की अधिसूचना के जारी होने के साथ आदर्श आचार-संहिता लागू की। आचार-संहिता चुनावों की घोषणा के अधिसूचित होने के बाद लागू हो जाती है। इसके लागू होने के बाद सत्ता और सरकारी साधनों के दुरुपयोग पर रोक लगी। आदर्श आचार-संहिता के लागू होने के बाद कोई मंत्री या नेता चुनावों को प्रभावित करने वाला कोई कार्य या घोषणा नहीं कर सकता है।

देश के कुछ भागों में बाहुबली और कुछ सशस्त्र गुट चुनावों के दौरान लोगों को डरा-धमकाकर मतदान केंद्रों पर जाने से रोकते थे। अगर किसी तरह ये लोग मतदान केंद्रों पर पहुंचते थे तो उन्हें बताया जाता था कि उनका वोट डाल दिया गया है। निर्वाचन आयोग ने पर्याप्त संख्या में सुरक्षा बल नियुक्त करके बाहुबलियों के आतंक को समाप्त किया। शांतिपूर्ण चुनाव कराने के लिये चुनावों से पहले लोगों के हथियार नज़दीकी पुलिस थाने में जमा करा दिए जाते हैं। अपराधी और उपद्रवी तत्वों को गिरफ़्तार करके बंद कर दिया जाता है। मतदान के दिन शराब की बिक्री पर पाबंदी लगा दी जाती है।

स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण चुनाव संपन्न कराने के लिये निर्वाचन आयोग चुनावों के दौरान संबंधित राज्यों में अपने प्रेक्षक भेजता है। आमतौर पर ये प्रेक्षक वरिष्ठ आईएएस अधिकारी होते हैं। उम्मीदवार अपने प्रचार में अंधाधुंध धन ख़र्च न करे इसके लिये निर्वाचन आयोग चुनाव प्रचार संबंधी गतिविधियों की वीडियो रिकार्डिंग कराता है और चुनाव ख़र्च पर नज़र रखने के लिये चार्टर्ड एकाउंटेंट (लेखा परीक्षकों) को प्रेक्षक के रूप में नियुक्त करता है।

विधान मंडलों और संसद में सदस्यों के अनियंत्रित, अशोभनीय और अमर्यादित आचरण का मुख्य कारण इन स्थानों पर कभी-कभी ऐसे लोगों का पहुंचना है जिनकी गुणवत्ता खरी नहीं होती। सूचना माध्यमों में एवं विधान मंडलों में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों के पहुंचने की भी ख़बरें आम हैं। ये लोग वहां बाहुबल और धन बल के जरिये पहुंचते हैं। इस स्थिति के लिये देश के राजनीतिज्ञों को दोषी ठहराया जाता है। लेकिन इसके लिये केवल राजनीतिक दलों को दोषी ठहराना उचित नहीं है। राजनीतिक पार्टियां हमारे समाज की उपज हैं, वे उसी में विकसित होती हैं और उससे अलग नहीं हैं। अत: समाज और राजनीतिक दल दोनों इसके लिये समान रूप से जिम्मेदार हैं।

यद्यपि पिछले वर्षों के दौरान इंद्रजीत गुप्त समिति, दिनेश गोस्वामी समिति, लॉ कमीशन (170वीं रिपोर्ट) और संविधान के कार्य संचालन की समीक्षा पर राष्ट्रीय आयोग ने चुनाव सुधारों पर महत्वपूर्ण सिफ़ारिशें कीं। तथापि, अनेक कारणों से, जिसमें राजनीतिक दलों के बीच इस विषय पर आम सहमति का अभाव मुख्य कारण था, इस दिशा में विशेष और ठोस निर्णय नहीं लिया जा सका।

लगभग हर मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने राजनीति के अपराधीकरण को रोकने और चुनावों में धन शक्ति के प्रभाव को कम करने के लिये अपने प्रस्ताव सरकार को भेजे हैं। पूर्व गृह सचिव और वर्तमान में जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल एन.एन. वोहरा की अध्यक्षता में नियुक्त एक समिति ने यह मत व्यक्त किया था कि कुछ स्थानों पर अपराधी गुटों को स्थानीय नेताओं का संरक्षण प्राप्त है। कुछ अपराधी गुटों के सदस्य विधानसभा और संसद में भी पहुंच जाते हैं।

अगस्त 1997 में तत्कालीन चुनाव आयुक्त जी.वी.जी. कृष्णमूर्ति ने राजनीति का अपराधीकरण रोकने के लिये कानून बनाने और प्रशासनिक उपाय करने का प्रस्ताव किया था। जुलाई 1998 में निर्वाचन आयोग ने सिफ़ारिश की थी कि जिन व्यक्तियों के ख़िलाफ़ अदालत आरोपपत्र दायर कर दे उन्हें विधानमंडल या संसद का चुनाव लड़ने के लिये अयोग्य घोषित कर दिया जाए। लेकिन अधिकांश राजनीतिक दलों का कहना था कि पुलिस राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर झूठे मुकदमे चला देती है अत: केवल अदालत द्वारा सज़ा दिए जाने पर संबंधित व्यक्ति को अयोग्य घोषित किया जाए।

पांच जुलाई, 2004 को तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एस. कृष्णमूर्ति ने सरकार को लिखा कि 14वीं लोकसभा के चुनावों के दौरान चुनाव कानून में अनेक कमियां नज़र आईं। कुछ उम्मीदवारों ने सूचना देते समय कुछ कॉलमों को खाली छोड़ दिया और कुछ ने अपनी संपत्ति कम दर्शाई। वर्तमान कानून के अनुसार इन अपराधों के लिये छह महीने की कैद और जुर्माने की सजा का प्रावधान है। आयोग ने इसे बढ़ाकर दो वर्ष और जुर्माना करने, उम्मीदवारों की जमानत राशि में वृद्धि करने, उम्मीदवार के एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर, एक्जिट पोल और ओपिनियन पोल पर प्रतिबंध लगाने, राजनीतिक पार्टियों द्वारा अपनी आय और ख़र्च का अनिवार्य रूप से हिसाब रखने और उसकी लेखा परीक्षा कराने की भी सिफ़ारिश की। अभी तक सरकार केवल एक्जिट पोल और ओपिनियन पोल पर प्रतिबंध लगाने पर सहमत हुई है।

चुनावों को पारदर्शी बनाने के लिये निर्वाचन

आयोग ने यह आदेश जारी किया है कि चुनाव लड़ने वाले हर उम्मीदवार को अपनी नामज़दगी के पर्चे के साथ शपथपत्र में अपनी पत्नी और आश्रितों की कुल चल एवं अचल संपत्ति और देनदारियों का विवरण, अपनी शिक्षा, योग्यता का विवरण और यदि कोई आपराधिक पृष्ठभूमि हो तो उसकी जानकारी और अपने ख़िलाफ़ दायर आपराधिक मामलों का विवरण देना होगा। राजनीति के अपराधीकरण का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 14वीं लोकसभा के लिये निर्वाचित 100 से अधिक संसद सदस्यों ने यह स्वीकार किया कि वे हत्या, मारपीट, धोखाधड़ी, आपराधिक षड्यंत्र, अपहरण, जालसाजी, गबन, दंगा और बलात्कारों के आरोपों का सामना कर रहे हैं।

भारत के चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी चाहते हैं कि आपराधिक रिकार्ड वाले उम्मीदवारों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाया जाए और इस संबंध में स्पष्ट कानून बनाएं। उनकी राय है कि निर्वाचन आयोग द्वारा उठाए गए कदमों से आपराधिक पृष्ठभूमि के उम्मीदवारों की चुनावों में भागीदारी कम हुई है।

सरकार ने मतदाता को पहचानपत्र देने के साथ-साथ जाली मतदान रोकने के लिये मतदाता सूचियों में मतदाता की तस्वीर लगाने की व्यवस्था की है। निर्वाचन आयोग के प्रेक्षकों की जांच के परिणामस्वरूप मतदाता सूचियों से लाखों मृतकों के नाम हटाए गए हैं और लाखों नये नाम शामिल किए गए हैं।

चुनावों में धन शक्ति की भूमिका बढ़ती जा रही है। कर्नाटक विधानसभा के चुनावों के दौरान निर्वाचन आयोग ने बड़ी मात्रा में नकद राशि, शराब और अन्य सामान पकड़ा। इसका कुल मूल्य 45 करोड़ रुपये से अधिक था। धन और शराब चुनावों में विजय दिलाने के महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो रहे हैं। अगर समय रहते इस बुराई को नहीं रोका गया तो धनपति चुनावों को अपने इशारे पर नचाने वाली कठपुतली बना देंगे। स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण चुनाव कराने में ग़रीब राज्यों में बाहुबली और अमीर राज्यों में धनपति आड़े आते हैं।

लगभग 25 वर्ष पहले जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 77 की उपधारा (1) में स्पष्टीकरण1 जोड़ा गया था। इसके अंतर्गत उम्मीदवार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जिसमें उसकी राजनीतिक पार्टी, मित्र और समर्थक शामिल हैं, ख़र्च किया गया अथवा अधिकृत किया गया धन, उम्मीदवार के चुनाव ख़र्च में शामिल नहीं किया जाएगा। इस स्पष्टीकरण के अंतर्गत किसी उम्मीदवार के चुनाव में उसकी पार्टी या समर्थकों द्वारा बेहिसाब धन ख़र्च किया जा सकता है। अनेक लोगों और उच्चतम न्यायालय ने इस स्पष्टीकरण की आलोचना की है लेकिन निहित स्वार्थ के कारण इसे हटाया नहीं गया है।

तथापि इस संदर्भ में आशा की किरण यह है कि लोकसभा ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया है कि वह राजनीति के अपराधीकरण के विरुद्ध है और राजनीति का अपराधीकरण रोकने के लिये वचनबद्ध है। अत: यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि अंतत: इस संबंध में लोकसभा कारगर कानून बनाएगी और कालांतर में आपराधिक तत्वों का निर्वाचित होना असंभव हो जाएगा। जब तक इस बारे में कानून नहीं बनाया जाता सभी राजनीतिक पार्टियों को ऐसे व्यक्तियों को टिकट देने से बचना चाहिए। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेल : pantnavin@yahoo.com)

(पृष्ठ 31 का शेष)

चुनावों में सपा को एजेंसियां समापन की ओर पहुंचा रही थीं, पर सपा को भाजपा के बराबर लोकसभा सीटें हासिल हुई।

पिछले दो लोकसभा चुनावों में जितने भी चुनावी सर्वे हुए उनमें ज्यादातर गलत साबित हुए हैं। प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया द्वारा 1998 तथा 1999 के लोकसभा चुनाव में किए गए सर्वेक्षणों की भविष्यवाणी को लेकर किए गए एक अध्ययन में इस तथ्य का खुलासा हुआ है। खासकर राज्यों के बारे में की गयी भविष्यवाणियां पूरी तरह गलत साबित हुई। इसके अनुसार चुनावी सर्वे में लगे संगठनों को चाहिए कि वे सही आंकड़े जुटाने के तरीक़े और अन्य तथ्यों पर फिर से गौर करें।

ग़लत तरीक़े अख़्तियार करने के कारण ही तमिलनाडु, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश के नतीज़ों के बारे में एजेंसियों को भारी चूक हुई। दिलचस्प बात यह भी है कि चुनाव के काफ़ी क़रीब कराए गए चुनावी सर्वेक्षण भी ग़लत साबित हुए। इससे साफ़ है कि सर्वे और नमूना जुटाने के तरीक़ों में ख़ामियां रही हैं। कर्नाटक के चुनावी नतीज़ों के बारे में तो किसी की भविष्यवाणी सही नहीं हुई और वहां की 224 सदस्योंवाली विधानसभा में कांग्रेस ने 132 सीटें पाकर सरकार बना लिया, जबकि विजयी करार दी गई भाजपा-जद (यू) को महज 53 सीटें मिलीं। डीआरएस ने तो वहां भाजपा को ही 120 सीटें दे दी थीं और कई अन्य सर्वे वहां भाजपा तथा जद (यू) की सरकार बनवा रहे थे। ज़ाहिर है कि ऐसे सर्वेक्षणों पर प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक है।

इसी कारण भारतीय प्रेस परिषद ने 18 अप्रैल, 1998 को ऐसे सर्वेक्षणों पर ही प्रतिबंध लगाने को कहा था। परिषद का तर्क़ यह था कि ऐसे सर्वेक्षणों से उन इलाकों में मतदाताओं की सोच प्रभावित हो सकती है, जहां चुनाव होने हैं। इस मामले को लेकर प्रेस परिषद में काफी बहस चल चुकी है। परिषद की राय यह भी रही है कि जब ऐसे सर्वे प्रकाशित किए जाए तो उसे प्रायोजित करनेवालों के नाम, नमूना आकार और सर्वे के तरीक़े के साथ इसमें कितनी गलती की गुंजाइश है इसका उल्लेख भी होना चाहिए। मगर यह कहां संभव है। जब तमाम एजेंसियां लोगों की राय बदलने के लिये दल विशेष के पक्ष में परिणाम निकाल कर माहौल बनाने का काम कर रही है तो उसके परिणाम उनके पक्ष में आ भी कैसे सकते हैं। ऐसी एजेंसियों की संख्या फिलहाल बढ़ती ही जा रही है। यह काम अब चुनाव के काफी पहले से होने लगा है।

वैसे सर्वे एजेंसियों से जुड़े विशेषज्ञों का मानना है कि सर्वेक्षणों का असली परिणाम मतदान के एक हफ़्ता पूर्व ही ठीक से पता चल सकता है। उसके पहले थाह पाना मुश्किल होता है कि बयार किस ओर बह रही है। हालांकि 1984 के चुनाव में इंडिया टुडे-मार्ग की ओर से किया गया एक माह पूर्व का यह सर्वेक्षण सही निकला था कि कांग्रेस सहयोगी दलों के साथ 400 सीटें जीतेंगी। वहीं दूसरी ओर आईएमआरबी की ओर से किया गया सर्वे ग़लत साबित हुआ जिसमें कांग्रेस को बहुमत भर की सीटें मिलने की बात कही गई थी। इस तरह से सर्वेक्षणों का जो हाल है उसे देखते हुए साफ़ देखा जा सकता है कि उनकी असलियत क्या है। फिर भी कोई जीते हारे पर अब सर्वे नया चुनावी हथियार बन गए हैं। ❑

(लेखक दैनिक हरिभूमि **के दिल्ली संस्करण के संपादक हैं।**
ई-मेल : arvindksingh@gmail.com)

चुनावी मशीनरी

- **भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव कौन-सा प्राधिकार संपन्न कराता है?**

भारत का निर्वाचन आयोग (ईसीआई) भारतीय संविधान की धारा 324(1) के अंतर्गत भारत के निर्वाचन आयोग को अन्य बातों के साथ-साथ भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव कराने के अधिकार दिए गए हैं। निर्वाचन आयोग को इन चुनावों के पर्यवेक्षण, निदेशन और नियंत्रण का अधिकार दिया गया है। विस्तृत प्रावधान राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति चुनाव अधिनियम, 1952 और उसके अंतर्गत बने नियमों में दिए गए हैं।

- **कौन-सा प्राधिकार संसद का चुनाव कराता है?**

भारत का निर्वाचन आयोग। संविधान की वही धारा 324 आयोग को संसद के दोनों सदनों के चुनाव के पर्यवेक्षण, निदेशन और नियंत्रण का अधिकार देती है। विस्तृत प्रावधान जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और उसके तहत बने नियमों में किए गए हैं।

- **कौन-सा प्राधिकार राज्य विधानसभाओं और विधान परिषदों का चुनाव कराता है?**

भारत का निर्वाचन आयोग की धारा 324 (1) में आयोग के राज्यों के विधानमंडलों के दोनों सदनों का चुनाव कराने, उनके पर्यवेक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधिकार भी निहित हैं। विस्तृत प्रावधान जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और उसके बने नियमों में दिए गए हैं।

- **कौन-सा प्राधिकार नगर निगमों, नगरपालिकाओं और अन्य स्थानीय निकायों का चुनाव कराता है?**

राज्यों के निर्वाचन आयोग। संविधान संशोधन (तिहत्तरवां और चौहत्तरवां) संशोधन अधिनियम, 1992 के अंतर्गत प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश के लिये गठित राज्य चुनाव आयोगों को नगर निगमों, नगरपालिकाओं, जिला परिषदों, जिला पंचायतों, पंचायत समितियों, ग्राम पंचायतों और अन्य स्थानीय निकायों का चुनाव संपन्न कराने के अधिकार दिए गए हैं। वे भारत के निर्वाचन आयोग से स्वतंत्र होते हैं।

- **निर्वाचन आयोग की वर्तमान संरचना कैसी है?**

यह तीन सदस्यीय निकाय है। वर्तमान में, भारत का निर्वाचन आयोग तीन सदस्यों वाली संस्था है। इसमें एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त होता है और दो निर्वाचन आयुक्त।

- **क्या निर्वाचन आयोग प्रारंभ से ही बहुसदस्यीय संस्था रही है?**

नहीं। यह प्रारंभ से ही बहुसदस्यीय संस्था नहीं थी। जब 1950 में पहली बार इसका गठन किया गया था, उसमें एक ही सदस्य होता था और यह व्यवस्था 15 अक्तूबर, 1989 तक एकल सदस्यीय मुख्य चुनाव आयुक्त के रूप में कायम रही। 16 अक्तूबर, 1989 से पहली जनवरी 1990 तक यह तीन सदस्यों वाला आयोग रहा, आर.वी.एस. पेरीशास्त्री, मुख्य चुनाव आयुक्त थे और एल.एस. धनोआ तथा वी. एस. सैगल निर्वाचन आयुक्त। दो जनवरी, 1990 से 30 सितंबर, 1993 तक यह पुनः एकल सदस्यीय आयोग बना दिया गया। उसके बाद एक अक्तूबर, 1993 से यह एक बार फिर तीन सदस्यीय आयोग बन गया है।

- **वेतन और भत्तों आदि के मामलों में मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की क्या स्थिति है?**

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के समकक्ष। मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों (सेवाशर्तें) नियम, 1992 के प्रावधानों के अनुसार मुख्य चुनाव आयुक्त और दो निर्वाचन आयुक्तों को वही वेतन और भत्ते प्राप्त होंगे, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को प्राप्त होते हैं।

- **मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है? क्या यह निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल से भिन्न है?**

मुख्य चुनाव आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों का कार्यकाल, उनके पदभार ग्रहण करने के दिन से 6 वर्ष का होता है। परंतु 6 वर्ष के कार्यकाल के पूर्व ही यदि मुख्य निर्वाचन आयुक्त अथवा किसी निर्वाचन आयुक्त की आयु 65 वर्ष की हो जाती है तो उसे उसी दिन अपना पद त्यागना होगा।

- **आयुक्त जब बहुसदस्यीय आयोग बन जाता है, तब निर्णय कैसे लिये जाते हैं? बहुमत से या आम सहमति से?**

मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्त (सेवा शर्तें) संशोधन अधिनियम का अनुच्छेद 10 नीचे दिया जा रहा है:

1. निर्वाचन आयोग, संभव हो तो सर्वसम्मत निर्णय से कार्य संपादन की क्रिया विधि और मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा निर्वाचन आयुक्तों के बीच कार्यों का विभाजन और नियमन कर सकता है।
2. उपधारा (1) में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर निर्वाचन आयोग के सभी कार्य, जहां तक संभव हों, सर्वसम्मति से किए जाएंगे।
3. उपधारा (2) के प्रावधानों के अधीन, यदि मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों के बीच किसी भी विषय पर मतभेद हो तो उस विषय पर बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।

- **मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति कौन करता है?**

राष्ट्रपति। भारत के संविधान की धारा 324 (2) के अंतर्गत, भारत के राष्ट्रपति को मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है।

- **चुनाव आयुक्तों (मुख्य चुनाव आयुक्त को छोड़कर) की संख्या कौन तय करता है?**

राष्ट्रपति। संविधान की धारा 324 (2) भारत के राष्ट्रपति को समय-समय पर मुख्य चुनाव आयुक्त को छोड़कर चुनाव आयुक्तों की संख्या तय करने का अधिकार प्रदान करती है।

- **किसी राज्य में चुनाव कार्यों का पर्यवेक्षण (देख-रेख) कौन करता है?**

मुख्य चुनाव अधिकारी (सीईओ)। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 20-क, सहपठित जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 20 के अनुसार राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का मुख्य चुनाव अधिकारी चुनाव आयोग के समग्र पर्यवेक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन राज्य/केंद्रशासित प्रदेश में चुनाव कार्यों के पर्यवेक्षण के लिये अधिकृत है।

- **मुख्य चुनाव अधिकारी को कौन नियुक्त करता है?**

भारत का चुनाव आयोग। भारत का चुनाव आयोग राज्य सरकार/केंद्रशासित प्रदेश प्रशासन के परामर्श से राज्य सरकार/केंद्रशासित प्रदेश के किसी अधिकारी को उस राज्य का मुख्य चुनाव अधिकारी नामांकित या मनोनीत करता है।

- **किसी जिले में चुनाव कार्य का पर्यवेक्षण (देख-रेख) कौन करता है?**

जिला चुनाव अधिकारी (डीईओ)। जन प्रतिनिधित्व कानून 1950 की धारा 13-क के अनुसार, जिला चुनाव अधिकारी मुख्य चुनाव अधिकारी के पर्यवेक्षण, निदेशक और नियंत्रण के अधीन जिले में चुनाव कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

- **जिला चुनाव अधिकारी को कौन नियुक्त करता है?**

भारत का चुनाव आयोग। भारत का चुनाव आयोग राज्य सरकार के परामर्श से राज्य सरकार के अधिकारी को जिला निर्वाचन अधिकारी के रूप में मनोनीत अथवा नामांकित करता है।

- **किसी संसदीय अथवा विधानसभा क्षेत्र में चुनाव कार्यों के लिये कौन उत्तरदायी होता है?**

निर्वाचन अधिकारी (आरओ)। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 21 के अनुसार किसी संसदीय अथवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचन अधिकारी संबंधित संसदीय अथवा विधानसभा क्षेत्र में चुनाव कराने के लिये उत्तरदायी है।

- **निर्वाचन अधिकारी की नियुक्ति कौन करता है?**

भारत का चुनाव आयोग। भारत का चुनाव आयोग संबंधित राज्य सरकार/केंद्रशासित प्रदेश के प्रशासन के परामर्श से सरकार अथवा स्थानीय प्रशासन के किसी अधिकारी को प्रत्येक संसदीय और विधानसभा क्षेत्र का निर्वाचन अधिकारी मनोनीत करता है। इसके अलावा, भारत का निर्वाचन आयोग प्रत्येक विधान सभा और संसदीय क्षेत्र के लिये एक या अधिक सहायक निर्वाचन अधिकारी को निर्वाचन अधिकारी के चुनाव संबंधी कार्यों के निष्पादन में मदद के लिये मनोनीत करता है।

- **संसदीय अथवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों की मतदाता सूचियों को तैयार करने की जिम्मेवारी किसकी है?**

चुनाव पंजीकरण अधिकारी (ईआरओ)। संसदीय/विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूचियों को तैयार कराने की जिम्मेदारी चुनाव पंजीकरण अधिकारी की होती है।

- **मतदान केंद्र पर चुनाव कौन कराता है?**

पीठासीन अधिकारी। पीठासीन अधिकारी मतदान अधिकारियों की सहायता से मतदान केंद्र पर चुनाव संपन्न कराता है।

- **चुनाव पंजीकरण अधिकारी को कौन नियुक्त करता है?**

जन प्रतिनिधित्व कानून, 1950 की धारा 13-ख के अंतर्गत भारत का चुनाव आयोग, राज्य/केंद्रशासित प्रदेश प्रशासन के परामर्श से सरकार के अथवा स्थानीय प्रशासन के अधिकारी को चुनाव पंजीकरण अधिकारी के रूप में नियुक्त करता है। इसके साथ ही, भारत का चुनाव आयोग, मतदाता सूचियों के निर्माण, पुनरीक्षण से संबंधित कार्यों में चुनाव पंजीकरण अधिकारी की सहायता के लिये एक या अधिक सहायक चुनाव पंजीकरण अधिकारी भी नियुक्त करता है।

- **पीठासीन अधिकारी और मतदान अधिकारियों को कौन नियुक्त करता है?**

जिला निर्वाचन अधिकारी (डीईओ)। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत, जिला निर्वाचन अधिकारी पीठासीन अधिकारियों और मतदान अधिकारियों की नियुक्ति करता है।

- **पर्यवेक्षकों की नियुक्ति कौन करता है?**

भारत का निर्वाचन आयोग (ईसीआई)। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 20-ख के तहत भारत का निर्वाचन आयोग सरकार के अधिकारियों को संसदीय और विधानसभा क्षेत्रों के लिये पर्यवेक्षकों (सामान्य पर्यवेक्षकों और चुनावी व्यय पर्यवेक्षकों) के तौर पर मनोनीत करता है। आयोग उन्हें जो कार्य सौंपता है वे करते हैं। पहले पर्यवेक्षकों की नियुक्ति आयोग के पूर्ण अधिकारों के तहत की जाती थी। परंतु जन प्रतिनिधित्व कानून, 1951 में 1996 में किए गए संशोधन के बाद से नियुक्तियां वैधानिक हो गई हैं। वे सीधे आयोग को रिपोर्ट करते हैं। ❑

चुनाव से संबंधित शब्दावली

आम चुनाव

संसद व राज्य विधानसभाओं के लिये हर पांच वर्ष की निर्धारित अवधि के पश्चात होने वाले चुनावों को आम चुनाव कहा जाता है।

मध्यावधि चुनाव

संसद तथा राज्य विधानसभाओं के भंग होने के फलस्वरूप निधारित अवधि से पूर्व होने वाले चुनाव को मध्यावधि चुनाव कहा जाता है।

उपचुनाव

किसी भी सदस्य की मृत्यु, त्यागपत्र अथवा किसी अन्य कारण से अयोग्य घोषित किए जाने के फलस्वरूप रिक्त होने वाली सीट को भरने के लिये कराए जाने वाले चुनाव उपचुनाव कहलाते हैं।

चुनाव क्षेत्रों का सीमांकन

संसद व राज्य विधानसभाओं के निर्वाचन क्षेत्रों का फिर से सीमांकन करना ताकि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जहां तक संभव हो हर चुनाव क्षेत्र में समान संख्या में मतदाता हों। प्राय: यह प्रक्रिया हर दस वर्ष पश्चात जनगणना के पश्चात सीमांकन आयोग द्वारा की जाती है। इस आयोग में मुख्य चुनाव आयोग, तथा सर्वोच्च अथवा उच्च न्यायालय के दो वर्तमान अथवा पूर्व न्यायाधीश होते हैं। 1976 में संविधान में एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन 2001 की जनगणना के उपरांत तक स्थगित कर दिया जाए। इसके फलस्वरूप निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में बहुत अधिक अंतर आ गया है।

झरोखा जम्मू-कश्मीर का

इस चुनाव के मायने

● बलराज पुरी

जम्मू-कश्मीर विधानसभा चुनावों में भारी मतदान ● प्रजातांत्रिक व्यवस्था की अद्भुत स्वीकृति के संकेत

जम्मू-कश्मीर में जो चुनाव इस समय हो रहे हैं वे कई पहलुओं से पहले चुनाव से भिन्न हैं। पहली बात यह है कि चुनाव से पहले बड़े-बड़े जुलूस निकले जिसमें आजादी के नारे लगाए गए। लोगों में गुस्सा बड़ा था। विशेषकर इस कारण कि जम्मू-कश्मीर राजमार्ग पर चलने वाली गाड़ियों पर जम्मू के आंदोलनकारियों ने रुकावट डालने की कोशिश की थी। इस तरह से अलगाववादी पार्टियों में नयी शक्ति आ गई। इससे पहले भारत विरोधी प्रदर्शन इस प्रकार से नहीं हुए थे। दूसरी बात, जिन दिनों चुनाव हो रहे थे वे कड़ी सर्दी के दिन थे। जब अनेक जगह बर्फ़ पड़ रही थी, कई जगह वर्षा हो रही थी।

इसके बावजूद इस बार वोट डालने का एक नया रिकार्ड कायम हुआ है जो 70 प्रतिशत तक जा पहुंचा है। चुनाव के पांचवें चरण में जरूरत कुछ गड़बड़ हुई जब चुनाव बहिष्कार के नारे देते हुए अलगाववादी पार्टियों का सुरक्षा शक्तियों के साथ टकराव हो गया जिस कारण पुलवामा में दो व्यक्ति मारे गए। इस कारण मतदान कुछ कम हुआ परंतु फिर भी यह 47 प्रतिशत तक जा पहुंचा। इस तरह पिछले सारे रिकॉर्ड टूट गए और भारत के अन्य कई राज्यों की तुलना में जम्मू-कश्मीर में अधिक मत पड़े।

जम्मू-कश्मीर समस्या के विशेषज्ञों के लिये यह बहुत हैरानी की बात है कि जब से उग्रवाद शुरू हुआ है तब से पहली बार इतनी भारी संख्या में लोगों ने वोट डाले। क्या इसका अभिप्राय यह है कि लोग अलगाववादी शक्तियों से निराश हो गए हैं और उन्होंने आजादी का नारा छोड़ दिया है?

क्या ऐसा सोचना अतिश्योक्ति होगी? जिन लोगों ने मत डाले उनसे पत्रकारों ने यही प्रश्न पूछा। देश-विदेश के लगभग 700 पत्रकार इस चुनाव को देखने के लिये आए हुए थे। उन्होंने भी मतदाताओं से यही सवाल पूछा कि क्या आपने आज़ादी का लक्ष्य छोड़ दिया है? लगभग सभी ने यह जवाब दिया वह आज़ादी भी चाहते हैं और अच्छी सरकार भी जो उनके दैनिक समस्याओं को हल कर सके। उन्हें प्रगति चाहिए, रोज़गार चाहिए और बिजली-पानी तथा मकान चाहिए। इनके लिये वे इंतजार नहीं करना चाहते।

प्रश्न यह उठता है कि आज़ादी का अभिप्राय क्या है? इस प्रश्न पर न अलगाववादी पार्टियों का एक मत है और न ही आम लोगों में इस पर अधिक चर्चा हुई है। आखिर वोट डालना और अपनी मर्ज़ी से सरकार चुनना भी आज़ादी के लक्ष्य में शामिल हैं, बेरोज़गारी, ग़रीबी भी आजादी के लक्ष्य हो सकते हैं। एक और बात जो इस चुनाव में देखी गई कि उग्रवादियों ने पहले के चुनाव की तरह लोगों को मतदान करने के लिये किसी प्रकार शक्ति का प्रयोग नहीं किया और न ही किसी ने सुरक्षा बलों पर यह आरोप लगाया है कि उसने वोट डालने के लिये मज़बूर किया। इस तरह यह निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव का एक नया नमूना दिखा। क्या यह भी आज़ादी का लक्ष्य नहीं है? कश्मीर घाटी में अधिकतर मुकाबला क्षेत्रीय पार्टियों अर्थात नेशनल कांफ्रेंस और पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी के बीच में है। दोनों ने स्पष्ट किया है कि कश्मीर समस्या के हल के लिये वोट नहीं मांगेंगे और न बाधा डालेंगे। बल्कि उसमें कुछ न कुछ मदद करेंगे। कश्मीर घाटी में कुछ सीटें कांग्रेस ले सकती है। कुछ ऐसे भी चुनाव क्षेत्र हैं जहां गुर्जर समुदाय की बहुसंख्या है। राज्य में सभी गुर्जर मुसलमान हैं। कई गुर्जर उम्मीदवारों के हक में चुनाव प्रचार करने के लिये राजस्थान और हरियाणा के हिंदू गुर्जर भी आए। श्री अमरनाथ यात्रा के बारे में जो विवाद चला था उसका चुनाव पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार जम्मू के क्षेत्र में जिन पार्टियों ने इस मुद्दे पर आंदोलन शुरू किया था वह भी इसका अधिक लाभ नहीं उठा सके। उनके उस मुद्दे पर जम्मू की पार्टियों में मतभेद नहीं था। कांग्रेस पार्टी ने भी वही मुद्दे उठाए जो भारतीय जनता पार्टी ने उठाए थे। दोनों पार्टियां एक ही प्रश्न उठा रही हैं कि जम्मू क्षेत्र से पिछले 61 वर्षों से भेदभाव होता रहा है। अमरनाथ यात्रा का आंदोलन भाजपा ने शुरू किया था। लेकिन वह चुनाव में इसका अधिक लाभ नहीं उठा सकेगी।

वास्तव में राज्य के दोनों क्षेत्र के लोगों में अलग-अलग तौर पर कुछ बातों पर सहमति है किंतु समूचे राज्य का एकमत होना कठिन लगता है। मुश्किल यह है कि जब तक दोनों क्षेत्र अलग-अलग दिशाओं में सोचते रहेंगे तब तक जम्मू-कश्मीर की समस्या का कोई स्थायी हल निकालना मुश्किल है।

इससे पूर्व 7 दिसंबर को चौथे दौर के मतदान में भी पिछले दौरों में हुए मतदानों जैसा ही उत्साह दिखा। सिर्फ़ सोपोर और बारामूला में कम मतदान, क्रमशः 14 प्रतिशत और 25 प्रतिशत हुआ।

लेकिन उरी, गुलमर्ग, गुलअरनास में मतदान क्रमशः 71 प्रतिशत, 60 प्रतिशत और 70 प्रतिशत हुआ। चौथे दौर में कुल मिलाकर 18 क्षेत्रों में 57 प्रतिशत मतदान हुआ।

सोपोर दरअसल कट्टरपंथी अलगाववादी नेता सईद अली शाह गिलानी का गृहक्षेत्र है, जहां मतदान केंद्रों पर बायकाट के लिये रैलियां निकाली गईं। फिर भी वहां 14 प्रतिशत मतदान पिछले चुनाव के 8 प्रतिशत के मुक़ाबले काफी बेहतर है।

इसके पहले तीन दौर में मतदान 60 प्रतिशत

तक हुआ, जो अब तक का रिकार्ड है। गौरतलब यह भी है कि इस बार सुरक्षा बलों के ख़िलाफ़ कोई ऐसी शिकायत नहीं आई कि वे लोगों पर मतदान के लिये दबाव डाल रहे हैं। न ही आतंकवादियों ने एकाध धमाकों या गोली चलाने की घटना के अलावा चुनाव प्रक्रिया में कोई खलल डालने की कोशिश की। हां! यह ज़रूर था कि जिन क्षेत्रों में चुनाव हो रहे थे, उनकी सीमाओं पर कर्फ्यू जैसा माहौल था, ताकि बाहर से कोई चुनाव बायकाट करने वाला जुलूस न आए और चुनाव प्रक्रिया बाधित न हो, लेकिन मतदान वाले क्षेत्रों के भीतर किसी तरह की कोई पाबंदी नहीं थी। कुछ जगहों पर प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवारों के समर्थकों के बीच छोटी-मोटी झड़पें हुईं, लेकिन वे वैसी ही थीं, जैसी देश में कहीं और होती हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि राज्य में यह सबसे अधिक खुले वातावरण में और ज़ोरदार प्रतिद्वंद्विता वाला चुनाव है। राज्य में हर क्षेत्र में मतदान प्रतिशत रिकार्ड रहा है। उम्मीदवारों की संख्या, खासकर महिला उम्मीदवारों की तादाद भी इस बार सबसे अधिक है। चुनाव प्रक्रिया के पहले 'आज़ादी' समर्थक रैलियों और भारी ठंड के बीच मतदाताओं का यह उत्साह हर किसी को चकित कर गया है।

अभी इस निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाजी होगी और ठीक भी नहीं होगा कि कश्मीर के लोगों ने 'आज़ादी' की मांग और हुर्रियत नेताओं को ख़ारिज कर दिया है। कुछ विदेशी पत्रकारों सहित मीडिया ने कई जगहों पर मतदाताओं से इस नये उत्साह का सबब जानना चाहा। लगभग हर जगह जवाब यही था कि "हमें आज़ादी के साथ सुशासन चाहिए"। कई जगहों पर अलगाववादी नेताओं के साथ 'आज़ादी' के नारे लगाने वाले लोग मतदान केंद्रों की ओर जाते देखे गए ताकि वे ऐसी सरकार और विधायक चुन सकें, जो उनकी रोज़गार, विकास यानी - रोटी, कपड़ा और मकान की दैनिक ज़रूरतों को कुछ आसान बना सके। इस मामले में कुछ राष्ट्रीय अख़बारों की वे सुर्खियां भी अति आशावादी हैं कि घाटी में बुलेट से बैलेट जीत गया। वजह यह है कि घाटी में आतंकवाद शुरू होने के बाद पिछले चुनावों में जिस पैमाने पर गोलियां चलीं, वैसा इस बार होता तो 3,000 से ज्यादा चुनावी रैलियां नहीं हो पातीं, जिनमें से आधे से अधिक कश्मीर घाटी में ही हुईं। फिर भी घाटी में मुख्यधारा की बड़ी राजनीतिक पार्टियों ने भी बार-बार यह स्पष्ट किया है कि चुनाव कश्मीर की समस्या पर कोई जनमत संग्रह नहीं है। इन पार्टियों ने यह भी स्पष्ट किया है कि वे मुख्य समस्या के समाधान के लिये बातचीत की प्रक्रिया आगे बढ़ाएंगी, इसमें अलगाववादी नेता और यहां तक कि आतंकवादियों को भी शामिल किया जाएगा। कांग्रेस ने भरोसा बहाली के उपायों की सफलता का श्रेय लेने की कोशिश की है कि केंद्र में यूपीए सरकार ने भारत-पाकिस्तान रिश्तों को सहज करने में अहम भूमिका निभाई है।

हालांकि, इन चुनावों में कश्मीर की राजनीति की एक बड़ी कमज़ोरी को उजागर कर दिया है कि कोई भी एक पार्टी या नेता कश्मीर घाटी के लोगों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकता। यानी किसी एक पार्टी को लोग कश्मीर की समस्याओं के समाधान या अच्छी सरकार देने लायक नहीं मानते। अलगाववादी पार्टियां भी इस पर एक राय नहीं हैं कि कश्मीर समस्या का अंतिम समाधान क्या है।

क्या लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई सरकार 'आज़ादी' का हिस्सा नहीं है? आखिर स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कांग्रेस ने भी यह जानते हुए राज्यों के चुनावों में हिस्सेदारी की थी कि इस निर्वाचित सरकार के अधिकार सीमित हैं और मतदान का मतलब असली लोकतंत्र नहीं है। यहां यह सवाल खड़ा होता है तो फिर हुर्रियत कांफ्रेंस की पार्टियों ने चुनाव में हिस्सा क्यों नहीं लिया?

लेकिन, लोगों ने यह स्पष्ट करने में अद्भुत एकजुटता दिखाई है। उन्होंने हुर्रियत में विरोधी गुटों के नेताओं मीरवाइज उमर फारूक और सईद अली शाह गिलानी को एक मंच पर आने को मज़बूर किया।

ऐसी ही एकजुटता जम्मू में भी देखने को मिली। अमरनाथ बोर्ड को ज़मीन बहाली के मुद्दे पर हुए आंदोलन में जम्मू की तमाम पार्टियां संघर्ष समिति के झंडे तले एकजुट हो गई थीं। सरकार ने अमरनाथ बोर्ड को हस्तांतरित की गई ज़मीन के आदेश को ख़ारिज कर दिया था। जम्मू में इस एकजुटता की यह पृष्ठभूमि पुरानी है। यह तभी से दिखता है, जब महाराजा हरिसिंह के कार्यकाल में जम्मू से सत्ता हस्तांतरित होकर कश्मीर के राजनैतिक नेताओं के हाथ में आ गई। इस चुनाव में जम्मू की सभी पार्टियों में यह भावना समान रूप से देखी गई।

यहां कांग्रेस और भाजपा, दोनों का चुनाव घोषणापत्र लगभग एक जैसा ही लगता है। दोनों पार्टियां और पैंथर पार्टी भी कश्मीर के तीन अलग-अलग क्षेत्रों में क्षेत्रीय परिषद बनाकर राजनीतिक सत्ता के समान बंटवारे की मांग कर रही हैं। मैंने इस विचार को आगे बढ़ाया था और इस पर पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला दोनों को रजामंद किया था। दोनों ने 24 जुलाई, 1953 को साझा प्रेस कांफ्रेंस में ऐलान किया था कि राज्य का संविधान जब भी बनेगा, उसमें क्षेत्रीय स्वायत्तता मुहैया कराने की बात होगी। हालांकि यह भारतीय जनता पार्टी और उसके पूर्ववर्ती संस्करण भारतीय जनसंघ के लगातार कड़े विरोध के कारण इस पर अमल नहीं हो सका। लेकिन 1975 में इंदिरा गांधी और शेख अब्दुल्ला के बीच हुए समझौते का यह अघोषित हिस्सा था, जिसके बाद शेख साहब सत्ता में लौटे थे। उसके पहले उनसे क्षेत्रीय स्वायत्तता पर प्रतिबद्धता जताने को कहा गया था। मौजूदा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी दो साल पहले जम्मू-उधमपुर रेलवे संपर्क का उद्घाटन करते हुए अपने भाषण में राज्य सरकार से उस पर अमल करने की अपील की थी।

इस तरह जम्मू-कश्मीर घाटी दोनों ही क्षेत्रों की बड़ी पार्टियों के विचारों में एक तरह का साझापन दिखता है। क्षेत्रीय विषमता को मुद्दा बनाने वाली कुछ स्थानीय पार्टियां ज़रूर हैं, जो अलग जम्मू राज्य की मांग कर रही हैं। घाटी आधारित नेशनल कांफ्रेंस और पीडीपी जैसी पार्टियों ने जम्मू क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये मुस्लिम बहुल जिलों की उप-क्षेत्रीय स्वायत्तता की भी मांग उठाई है। आज तक किसी ने यह बात नहीं की थी और नेशनल कांफ्रेंस ने भी स्पष्ट नहीं किया है कि इसके अधिकार क्या होंगे।

लोकप्रिय स्तर पर हर क्षेत्र में एक व्यापक सहमति बन रही है, जो क्षेत्रीय ध्रुवीकरण की तरफ जा सकती है। इससे राज्य की एकता को ख़तरा है, बशर्ते एक तार्किक स्वरूप में सभी क्षेत्र के लोगों की आकांक्षाओं और हितों को शामिल करने के प्रयास न शुरू किए जाएं। ❑

(लेखक इंस्टीटयूट ऑफ जम्मू-कश्मीर अफेयर के निदेशक और कश्मीर मामलों के विशेषज्ञ हैं।
ई-मेल : balraj_puri1@rediffmail.com)

करगिल में महिलाओं के लिये आशा की किरण

● ताशी मोरुण

जम्मू-कश्मीर के राजनीति से भरे गर्म और उथल-पुथल भरे माहौल से दूर राज्य के लद्दाख जिले के करगिल में एक मौन क्रांति करवट ले रही है। लद्दाख स्वायत्तशासी पर्वतीय विकास परिषद (एलएएचडीसी) द्वारा शासित करगिल में शीघ्र ही परिषद के दूसरे चुनाव होने जा रहे हैं। तनाव स्पष्ट दिख रहा है, परंतु जो सबसे महत्वपूर्ण बात दिखाई दे रही है वह 26 सीटों वाली परिषद के 237 उम्मीदवारों में इस बार एक महिला का चुनाव में खड़ा होना है।

व्यवस्था से लड़ना कोई हंसी-मजाक नहीं है और वह भी एक महिला के लिये। परंतु ज़ाहिरा बानो ने सुरूघाटी के ट्रेसपोने से चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया है। इस निर्वाचन क्षेत्र को आगा और शेख लोगों का गढ़ माना जाता है। शिया समुदाय से संबंधित ये दोनों धार्मिक कुनबे, जाहिरा के अनुसार, महिलाओं पर सामाजिक कानूनों और यक़ीन को सख्ती से लागू करते हैं। उन्हें यक़ीन है कि महिलाओं के साथ बेहतर व्यवहार होना चाहिए और वह कट्टरपंथी और दकियानूसी समाज में रहने को मज़बूर महिलाओं को उनके चंगुल से मुक्त कराने के लिये कृतसंकल्प हैं।

39 वर्षीया ज़ाहिरा कहती हैं, ''औरतों को गधों की तरह काम करने हेतु घर-गृहस्थी के झंझट में डाल दिया गया है। उनका काम सिर्फ़ बच्चे पैदा करना रह गया है। मैंने दिल्ली, मुंबई और जयपुर जैसे शहरों में देखा है, कहीं भी आप औरतों को करगिल की औरतों की तरह दमनकारी समाज में रहने को मज़बूर नहीं पाएंगे। यहां तक कि ईरान में भी वे लोग संसद में खुले तौर पर महिलाओं के अधिकारों की बातें करती हैं और उन पर किसी तरह का कोई दबाव नहीं है।"

इस घटना से समाज के विभिन्न वर्गों में असहमति के साथ-साथ विरोध की लहर भी पैदा हो गई है। यहां तक कि उसके माता-पिता ने भी चुनाव से हट जाने के लिये दबाव डाला। लेकिन वह अपने फ़ैसले पर अडिग है क्योंकि उसे पता है कि वह जिस लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ी है, वह अपने निकट परिवार के बंधनों से कहीं अधिक महान है। उसके चेहरे पर एक अजीब-सी चमक है जिससे उसकी आंतरिक शक्ति और दृढ़ता झलकती है। वह कहती हैं, ''ज्यादा से ज्यादा मेरे मां-बाप से मेरे संबंध टूट जाएंगे, तो हो जाने दो।'' उसका प्रचार करने वाली युवाओं की टीम भी लोगों की आंखों में खटक रही है। स्थानीय आबादी के विभिन्न वर्गों से उन्हें धमकियां मिलती हैं। उन्हें धमकी दी जाती है कि हट जाओ (चुनाव से) वरना नतीज़े भुगतने के लिये तैयार रहो। धीरज के साथ इन स्थितियों का सामना करना उतना ही चुनौतीभरा है जितना कि महिलाओं के अधिकारों को लेकर लड़ना।

महिलाओं की दुर्दशा से ज़ाहिरा का दिल दहल उठता है। वह बड़े कष्ट से करगिल महिलाओं की दर्दभरी दास्तां सुनाती हैं जो बहुविवाह से लेकर स्वास्थ्य की गंभीर समस्याओं से जुड़ी हुई होती हैं। इनमें से कुछ मुद्दों पर निर्भीकता से अपने विचार रखते हुए कहती हैं, ''आजकल मर्दों में दो बीवियां रखने का फ़ैशन हो गया है। इससे अक्सर औरत को उसके बच्चों के साथ अपने हाल पर छोड़ दिया जाता

है कि वह खुद अपना और बच्चों का पेट भरे और ख्याल रखें। उसे कोई मदद नहीं दी जाती।'' वह हरदास गांव की एक औरत का किस्सा सुनाती है जिसके शौहर ने उसे छोड़कर दूसरी औरत से शादी कर ली थी। वह औरत रोते हुए ज़ाहिरा के पास आई और काम दिलाने के लिये गिड़गिड़ाने लगी ताकि वह अपने बच्चों का पेट भर सके। उसके अनुसार क़रीब 30 प्रतिशत महिलाएं इन दर्दभरी स्थितियों में फंसी हुई हैं।

यहां तक कि गर्भावस्था, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल के समय भी समाज से उन्हें कोई समर्थन नहीं मिलता। अनेक महिलाओं को कटु अनुभवों और दु:स्वप्नों से गुज़रना पड़ता है। इन घटनाओं का ब्यौरा देते हुए ज़ाहिरा कहती हैं कि "बच्चे के पैदा होने के बाद मुश्किल से एक हफ़्ते के लिये उसे बिस्तर पर आराम करने को मिलता है। इस दौरान उसे सिर्फ़ चाय और ताफी (ब्रेड) पर ही गुज़ारा करना पड़ता है, जबकि लेह में महिलाओं के साथ गर्भावस्था और प्रसव के दौरान बढ़िया व्यवहार किया जाता है, उनकी अच्छी देखभाल की जाती है।"

बारू गांव से उसकी साथिन नरगिस बात को आगे बढ़ाते हुए कहती हैं कि ''हम घर के काम काज में तब तक उलझी रहती हैं जब तक प्रसव का समय नहीं आ जाता।'' नरगिस जैसी महिलाएं ज़ाहिरा के उद्देश्यों के साथ-साथ उसके करिश्मा से भी प्रभावित होकर उससे जुड़ गई हैं। ये महिलाएं उन 500-1,000 समर्पित महिलाओं के समूह का एक हिस्सा हैं जो महिलाओं के प्रति आम धारणाओं और यथार्थ को बदलना चाहती हैं।

'महिला बहुउद्देश्यीय सोसायटी' और 'महिला कल्याण समिति' नाम के दो महत्वपूर्ण संगठनों का गठन किया जा चुका है। महिलाओं को इनमें कसीदाकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। छोटा-सा यह कदम उन्हें आय का एक साधन मुहैया कराता है और साथ ही एक स्वतंत्र आर्थिक पहचान भी बनाता है। नरगिस कहती हैं, ''हमने सभी चुनावों में ईमानदारी से वोट दिया है, तो भी बाद में वे (परिषद के सदस्य-पार्षद) सरकारी योजनाओं का लाभ महिलाओं को दिलाने की हमारी मांग नहीं सुनते। इस बार हम पूरे समर्थन के साथ ज़ाहिरा के साथ हैं।"

आज वह स्थानीय लोगों, सरकारी कर्मचारियों और सेना के लोगों को कढ़े हुए कब्बा (कंबल पर डिज़ाइन) बेचकर दो से तीन हज़ार रुपये प्रतिमाह कमा लेती है। उसका कहना है कि "आधुनिक समाज में रहने के लिये आमदनी का स्तर बढ़ाना ज़रूरी है। स्कूल जाने वाले बच्चों को कॉपी, क़िताब, पेंसिल, कलम दिलाने के लिये कुछ अतिरिक्त आमदनी ज़रूरी है।" इन छोटे-छोटे मगर महत्वपूर्ण कदमों से यात्रा शुरू हो चुकी है, परंतु ज़ाहिरा के लिये तो बस आकाश ही सीमा है। उसके अनुसार, "महिलाएं योग्यताओं के मामले में पुरुषों से कम नहीं। वे ठेकेदारों के रूप में काम कर सकती हैं और कृषि, लोक निर्माण विभाग, विकास खंड, बागवानी और हस्तशिल्प जैसे सरकारी विभागों में भी काम कर सकती हैं। अपने तरक़्क़ी के रास्ते पर जाते हुए वे सरकार के अनेक मौजूदा योजनाओं का भी लाभ ले सकती हैं।"

सैनिकों जैसा जीवन जीती हुई ज़ाहिरा को एक अनपेक्षित स्रोत से बड़ा सहारा मिला है। उसके दादा श्वसुर (ससुर के पिता) उसके प्रेरणा स्रोत रहे हैं। वह कहती हैं, ''मेरे दादा श्वसुर स्वतंत्र विचारों वाले महान इंसान थे। वैचारिक स्वतंत्रता के लिये उन्हें अपने परिवार के साथ अपना गांव भी छोडना पड़ा। उनका बेटा, ज़ाहिरा के ससुर, पहले आदमी थे जिन्होंने कन्नौर में एक स्कूल खोला, जिसके लिये उन्हें गांव से खदेड़ दिया गया और वे करगिल कस्बे में आकर बस गए। अपने परिवार की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ज़ाहिरा के पति आशिक अली भी उसे पूरा समर्थन देता है। वह खुश है कि ज़ाहिरा समाज के लिये कुछ कर रही है।''

दो धार्मिक संस्थानों - आईकेएमटी और इस्लामिया स्कूल के प्रमुखों का कहना है कि ''आगे आने वाला समय महिलाओं सहित सभी को साथ लेकर चलने का है।'' परिषद के चुनावों में पहली बार खड़ी हुई महिला उम्मीदवार के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लद्दाख स्वायत्तशासी पर्वतीय विकास परिषद के अध्यक्ष, अज़गर कर्बलाई कहते हैं कि, ''यह बड़ा सकारात्मक संकेत है। हम चाहते हैं कि औरतें आगे आएं।'' आईकेएमटीके महासचिव के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान करगिल में महिला दिवस समारोह मनाना शुरू हुआ।

क्या ज़ाहिरा समुद्र में एक बूंदभर साबित होगी? या फिर एक ऐसी लहर जो पूरे करगिल में बह रही है और जिसमें महिलाओं को समान अवसरों की संभावना दिखाई देती है? यह तो समय ही बताएगा। परंतु एक चीज़ तो निश्चित है कि यह चिंगारी जो एक व्यक्ति से उठी है, उससे दूसरों के जीवन में भी रोशनी भर आई है। और अब यह रोशनी करगिल समाज के अंधेरे कोनों में भी उजाला फैला रही है। ❑

(लेखिका करगिल, लद्दाख स्थित सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

(पृष्ठ 7 का शेष)

भारत की नीति स्पष्ट है।"

इससे पूर्व विपक्ष के नेता आडवाणी ने पाकिस्तान को सख़्त संदेश देने की आह्वान करते हुए आतंकवाद के विरुद्ध विजय के लिये सरकार के प्रयासों को भाजपा और राजग के पूर्ण समर्थन का ऐलान किया। उन्होंने कहा कि "विश्व को यह समझ लेना चाहिए कि जाति, धर्म, संप्रदाय और क्षेत्रीयता जैसी बातों से परे पूरा देश, सरकार और विपक्ष एक हैं।"

अपने 40 मिनट के भाषण में उन्होंने कहा कि "आतंकवाद के विरुद्ध यह लड़ाई लड़ी जाएगी और तार्किक परिणति तक पहुंचाई भी जाएगी। राजनीतिक मतभेदों के बावजूद एक राष्ट्रीय दल होने के नाते पार्टी इस मामले में सरकार के हर कदम में उसका साथ देगी। पाकिस्तान के राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी के इस बयान कि मुंबई हमले किन्हीं बाहरी लोगों की कारगुजारी थी, को ख़ारिज करते हुए राजग के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार आडवाणी ने कहा कि आम आदमी के पास मुंबई को इस तरह बंधक बनाने की क्षमता नहीं हो सकती। ऐसा लगता है कि वे सेना के कमांडो थे।"

राज्यसभा में आतंकवाद पर चर्चा के दौरान भाजपा के अरुण शौरी ने आतंकवाद पर सरकार के नरम रवैये की कड़ी आलोचना करते हुए मांग की कि पाकिस्तान के साथ शांति प्रक्रिया तत्काल स्थगित की जाए। उन्होंने सुरक्षा तैयारियों की समीक्षा की मांग करते हुए आगाह किया कि भविष्य में भी ऐसे हमले होंगे, इसलिये हमें 'मम्मियों' के पास दौड़ने के बजाय खुद को तैयार करना होगा, कोई हमारी मदद के लिये नहीं आएगा।" ❑

न मिटने वाली स्याही

● एम. देवेंद्र

चुनाव में इस्तेमाल की जाने वाली स्याही फर्ज़ी मतदान रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह कोई सामान्य स्याही नहीं होती यह जल्दी मिटती नहीं और एक बार लगा दिए जाने पर कुछ महीने तक लगी रहती है। इसमें कई रसायन होते हैं जिसके कारण यह नहीं मिटती – यही इसकी विशेषता है।

इस प्रकार की स्याही के उत्पादन का श्रेय मैसूर पेंट्स एंड वार्निश लिमिटेड (एमपीवीएल) को जाता है जो यह स्याही भारत और अनेक अन्य देशों को उपलब्ध कराते हैं। यह स्याही स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संचालित करने के लिये ज़रूरी है।

भारत में सरकार के लिये यह एक चुनौतीपूर्ण काम है कि आम चुनाव की प्रक्रिया निष्पक्ष ढंग से पूरी कराई जाए। इसी प्रक्रिया से उपयुक्त उम्मीदवारों के चयन की प्रक्रिया मतदान के जरिये पूरी की जाती है।

संविधान के अंतर्गत यह निर्वाचन आयोग के लिये एक चुनौती है कि वह सुनिश्चित करे कि हर मतदाता सिर्फ़ एक बार वोट दे और फर्ज़ी मतदान न हो पाए। इस उद्देश्य की पूर्ति और फर्ज़ी मतदान रोकने के लिये यह उपाय किया गया है। इसे मतदान करने वाले के बाएं हाथ की तर्जनी के नाखून पर लगा दिया जाता है। यह किसी रसायन से नहीं मिटती और कुछ महीनों तक लगी रहती है।

कर्नाटक के प्रासाद नगर, मैसूर स्थित मैसूर पेंट्स एंड वार्निश लि. इस स्याही के उत्पादन और वितरण में लगे हैं। वे हर चुनाव के लिये इसका उत्पादन करते हैं। इस कंपनी को यह स्याही आपूर्ति करने का काम मिला है और यह भारत तथा विदेशों में भी आम चुनाव में काम आती है।

मैसूर के स्वर्गीय महाराज नलवाड़ी कृष्णराजे वाडेयार और प्रख्यात इंजीनियर भारत रत्न सर एम. विश्वेश्वरैया ने ऐसी कंपनी स्थापित करने का सपना देखा था और 1937 में वन संपदा के इस्तेमाल की योजना बनाई थी। मैसूर के आसपास के जंगलों में चंदन की लकड़ी पाई जाती है।

मैसूर के महाराजा ने राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास निगम (एनआरडीसी) के साथ इस उद्यम की स्थापना के लिये एक सहमतिपत्र पर हस्ताक्षर किए थे। अब यह कंपनी प्रसिद्ध हो गई है, लाभ कमा रही है और विदेशों में भी स्याही निर्यात कर रही है।

1962 में निर्वाचन आयोग ने केंद्रीय निधि मंत्रालय और एनआरडीसी के सहयोग से मैसूर पेंट्स एंड वार्निश लि. के साथ समझौता किया और उसी के अनुसार सभी चुनावों के लिये इस स्याही की आपूर्ति की जा रही है।

यह स्याही लगभग 25 देशों को निर्यात की जाती है। इनमें दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, ब्रिटेन, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, डेनमार्क, नाइजीरिया, सिंगापुर, नेपाल, तुर्की, घाना, बुरुंडी, कंबोडिया, बर्कीना फासो, मंगोलिया और आइवरी कोस्ट शामिल हैं।

इसके अलावा यह कंपनी चुनाव के लिये स्याही विदेशों में निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमा रही है। इससे दुनिया में भारत का नाम बढ़ा है और यह अपनी गुणवत्ता के लिये प्रसिद्ध है। ❑

(**लेखक बंगलुरू स्थित *योजना* (कन्नड) के वरिष्ठ संपादक हैं**)

मतदाताओं के लिये अनिवार्य पहचानपत्र

निर्वाचन आयोग ने सन् 2000 में निर्णय लिया कि सभी मतदाताओं के लिये चुनाव के समय फोटो पहचानपत्र या कोई अन्य प्रमाण प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा ताकि केवल सही मतदाता मतदान का प्रयोग कर सकें। इसके पश्चात होने वाले सभी चुनावों में आयोग ने इस निर्णय का पालन किया।

यदि कोई चुनाव अधिकारी मतों की गणना नहीं करा पाता अथवा चुनाव के नतीज़े को सुनिश्चित नहीं कर पाता तो उसे उस मामले की सूचना चुनाव आयोग को देनी पड़ती है। इस रिपोर्ट की प्राप्ति के बाद चुनाव आयोग या तो चुनाव के लिये नयी तिथि निर्धारित कर सकता है या किसी विशेष चुनाव क्षेत्र में पुन: चुनाव करवा सकता है।

2 मई, 2002 के सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के उपरांत कि प्रत्येक चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी के लिये यह अपनी संपत्ति, शिक्षा तथा पूर्व अपराधी जीवन के बारे में जानकारी देना अनिवार्य होना चाहिए। 28 जून, 2002 को चुनाव आयोग ने अनुच्छेद 324 के अंतर्गत एक आदेश जारी किया। 8 जुलाई, 2002 को 21 राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने निर्वाचन आयोग के इस आदेश को अस्वीकार कर दिया तथा सरकार को इस संबंध में जल्द से जल्द एक विस्तृत विधेयक पास करने के लिये कहा ताकि निर्वाचन आयोग के इस आदेश की विसंगति को दूर किया जा सके।

अगस्त 2002 में सरकार ने अनुच्देद 123 के अंतर्गत जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश जारी किया परंतु राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने इस अध्यादेश को इस आधार पर लौटा दिया कि इसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफ़ारिशें को सम्मिलित नहीं किया गया। परंतु बाद में जब संघीय मंत्रिमंडल ने इस अध्यादेश को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुझाए गए परिवर्तनों के बिना राष्ट्रपति को लौटा दिया तो राष्ट्रपति ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। बाद में इसी अध्यादेश को एक विधेयक का रूप प्रदान कर दिया गया। इस कानून को सर्वोच्च न्यायालय की एक पीठ ने इस आधार पर चुनौती दी कि संसद को राज्य अथवा उसके किसी उपकरण को न्यायालय के आदेशों की अवहेलना करने का अधिकार नहीं है। ❑

चुनावी हंसी-मजाक

● के.के. खुल्लर

एक बार एक उम्मीदवार से उसके प्रतिपक्षी ने पूछा कि वह अपने वोटरों को यह बता कर क्यों गुमराह करता है कि वह एम.एससी. है जबकि वह सिर्फ मैट्रिकुलेट है। उम्मीदवार ने जवाब दिया – सर, एम.एससी. का मतलब है मैट्रिकुलेट विद साइंस। ऐसे सवालों का ग़लत जवाब देना भी उस बेतुके भाषण जैसा विनाशक होगा जिसकी वजह से मतदान में खड़े लोगों का भविष्य चौपट हो सकता है। लेकिन समझदारी वाला समयानुकूल जवाब पासा पलट सकता है।

चुनाव और हंसी-मजाक का चोली-दामन का साथ होता है। अगर चुनाव लोकतंत्र का सत है तो हंसी-मजाक उसकी खुशबू है। किसी बेतुके भाषण से जहां उम्मीदवार का भविष्य चौपट हो सकता है वहीं विद्वतापूर्ण वक्तव्य मतदाताओं की राय बदल सकता है। भाषण के दौरान चुटकुलों का इस्तेमाल एक बहुत बड़ी कला है जिसका इस्तेमाल अधिकांश राजनेता बड़ी कुशलतापूर्वक करते हैं। आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे प्रखर वक्ता अपने भाषणों में इसका इस्तेमाल करते रहे। पीलू मोदी अपनी वाक्पटुता के बल पर श्रोताओं को बांधे रखते थे। आज भी नवजोत सिंह सिद्धू जैसे वक्ता हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा और चुटीली शैली से अमृतसर में एक बड़े नेता को हराने में कामयाबी पाई। एक चुनावी सभा में उन्होंने अपने श्रोताओं को यह कहकर अभिभूत कर दिया था कि "पेड़ की फुनगी पर बैठने के कारण कोई कौआ हंस नहीं हो जाता। पानी भले ही कौआ और हंस दोनों एक ही तालाब का पीते हों, लेकिन कौआ गंद खाता है और हंस चुनता है सिर्फ़ मोती।"

कहा जाता है कि चुनाव की शुरुआत प्राचीन काल में यूनान के नगर एथेंस से हुई और बाद में इसे रोम वालों ने अपना लिया। वहीं से ग्रीक भाषा में 'सेफोलॉजी' शब्द का प्रादुर्भाव हुआ जिसका अर्थ है – चुनाव और चुनावी प्रवृत्तियों का अध्ययन। शुरुआत हुई विभिन्न रंग के पत्थरों के इस्तेमाल से जो मतदान विकल्पों के संकेतक होते थे। ग्रीक भाषा में 'सेफोस' का मतलब है – पत्थर के टुकड़े। लेकिन लोकतंत्र भारत में एथेंस से भी पहले आया। भारत के प्राचीन 'मल्ल' एवं 'लिच्छवी' गणराज्यों में निर्वाचित सभाएं एवं समितियां होती थीं और स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त थे जबकि यूनान के लोकतंत्र में स्त्रियों और दासों को मताधिकार नहीं मिला था। एक वैदिक ऋचा में अनिर्वाचित शासक को लुटेरा कहा गया है। वे ऐसे दिन थे जब भारत इतिहास का गुलाम नहीं, निर्माता था। प्राचीन काल में आदि शंकराचार्य और मंडल मिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ से भी इस विषय पर प्रकाश पड़ता है, हालांकि वह न तो कोई राजनीतिक घटना थी और न ही आधुनिक चुनाव की कोई सापेक्ष बात। उज्जयिनी पहुंच कर उन्होंने किसी से मंडन मिश्र के घर का पता पूछा तो उसने कहा कि सीधे जाएं। एक अहाता आएगा जहां तोता-मैना के पिंजरे टंगे होंगे और वे आपस में हंसी-मजाक के माहौल में वेदमंत्रों का पाठ कर रहे होंगे – मंडन मिश्र का मकान वही होगा। प्राचीन काल के चोल, चेर और पांड्य राज्यों में भी गुप्त मतदान की परंपरा थी।

प्राचीन भारत के गणराज्यों में चुनाव शिक्षाप्रद और सबके लिये खुले होते थे। जाति, वर्ण और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता था। सभा और समितियों में खुली बहस होती थी और सबको जानकारी का अधिकार था। मतदाताओं को बताया जाता था कि नागरिकों की हैसियत में हम सब संप्रभु हैं और सभी प्रजा हैं। संप्रभु के रूप में वे कानूनों का पालन करते हैं। प्राचीन भारत से यही महान परंपरा हमें विरासत में मिली है और इसी सिद्धांत के आधार पर भारत का संविधान हमें कर्तव्यों की याद दिलाता है। पहले भी लोगों के लिये आचार संहिता थी और वे जिम्मेदार नागरिकों की हैसियत से मतदान करके दूसरों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करते थे। इतिहास में बूथ कब्ज़ा करने, फर्जी मतदान या अपहरण आदि के उदाहरण नहीं मिलते। यह स्थिति 19वीं सदी में बदल गई। हम चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों में पाते हैं कि एक उम्मीदवार अपने वाहन चालक को रिश्वत देकर विपक्ष के मतदाताओं को टेम्स नदी में डुबो देने को कहता है ताकि वे ईस्टनविल चुनाव में वोट न डाल पाएं।

भारत में इस प्रकार की घटनाएं दुर्लभ नहीं हैं। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और यहां सबसे ज्यादा मतदाता हैं। भारत में जब पहली बार मतदान हुआ तो उस समय साक्षरता दर मात्र 17 प्रतिशत थी। जब उम्मीदवार वोट मांगने झुग्गी-झोपड़ी बस्ती पहुंचा तो लोगों ने उसे बताया कि उन्होंने अपना वोट कल ही डाल दिया है। जबकि मतदान उसके अगले दिन था। यह कहने पर कि मतदान का निर्धारित दिन तो अगला दिन है तो आपने वोट कैसे

डाला, उसका जवाब था – दूसरा उम्मीदवार अनेक तोहफ़े लेकर आया और वोट ले गया। साक्षरता दर 2001 में 65 प्रतिशत थी और 2010 तक इसके 75 प्रतिशत हो जाने की संभावना है। स्थिति बहुत बदल गई है, अब लोग अपने वोट की क़ीमत जानते हैं। उन्हें पता है कि मतदान परिवर्तन का साधन है और इससे सामाजिक परिवर्तन संभव है। हाल के चुनाव में जब एक उम्मीदवार एक से बढ़कर एक वादे करता जा रहा था कि यदि आप मुझे वोट देंगे तो मैं आर्थिक सुधार लाऊंगा, शिक्षा में सुधार लाऊंगा, चुनाव में सुधार लाऊंगा...। तभी एक श्रोता उठा और बोला – सर... बस कीजिए! आपको अपने आपको ही सुधारने की ज़रूरत है। ऐसे ही प्रसंग में भारत में अमरीका के राजदूत रह चुके 'जॉन गॉलब्रेथ ने भारत को महान वर्किंग एनार्की (कार्यशील अराजकता) कहा था। लेकिन आज हालत एकदम बदल चुकी है।

कई वर्ष पहले पूर्वी पंजाब में एक निर्दलीय उम्मीदवार का चुनाव चिह्न गधा था। उन दिनों बहुत से मतदाता निरक्षर होते थे अत: चुनाव चिह्न बहुत महत्वपूर्ण होते थे। वह उम्मीदवार गधे पर बैठ कर मुल्ला नसीरुद्दीन हुजा की ओर बढ़ा। अपने चुनावी भाषण में उम्मीदवार ने याद दिलाया कि नज़ारथ से जीसस एक गधे पर सवार होकर यरूशलम पहुंचे थे। श्रोताओं में से कोई बोला – अगर जीसस का गधा मक्का पहुंच जाए तो भी वह गधा ही रहेगा। एक उम्मीदवार ने पूछा – अगर तोता पहुंच जाए तो? (उसका चुनाव चिह्न तोता था।) उसे भी जवाब मिला – 'आप तोते को लाख पढ़ाइए, वो रहेगा तोता ही।' संयोग देखिए कि गधा और तोता चुनाव चिह्न वाले उम्मीदवार जीत गए लेकिन शानदार हाथी निशान वाले महाशय हार गए और उनकी जमानत जब्त हो गई।

चुनाव में नारों का भी बहुत महत्व होता है। दिन में जहां नारे लिखने वालों की चांदी होती है वहीं रात में नारे मिटाने वाले कमाई करते हैं। शहर के कोने-कोने में नेतागिरी और भाषणबाजी में माहिरों की आवाज़ गूंजती है। भाषणबाजों और छुटभैये नेताओं की मांग बढ़ जाती है। मार्क एंथनी और कौटिल्य भले ही अलग देशों के हों मगर दोनों ही राजनीतिक उक्तियों के लिये मशहूर हैं। जब साइमन कमीशन लाहौर आए तो काले झंडों से उनका स्वागत किया गया। लाहौर रेलवे स्टोशन के बाहर जब शेरे पंजाब लाला लाजपत राय को लाठी की मार झेलनी पड़ी, तब ये नारे लिखे गए :

साइमन, साइमन गो बैक।
विद व्हिस्की-सोडा एंड यूनियन जैक।

यह और बात है कि साइमन शराब नहीं पीते थे। लेकिन यह नारा बहुत सटीक रहा। हाल में नगर निगम के चुनाव में रिश्वतखोरी मुख्य मुद्दा थी। नारा था :

रिश्वत लेकर फंस गया था
रिश्वत देकर छूट गया।

एक अन्य चुनाव में मशहूर शायर फैज़ अहमद फैज के इस शेर को हथियार बनाया गया :

इस तरह हाथ लगे मेरे मताए रिश्वत
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए।

पाकिस्तान में सैनिक शासन के दौरान भी जब भी चुनाव हुए नारों की धूम मची :

पाकिस्तान विच मौजां ही मौजां
जिधर भी देखो, फौजां ही फौजां।

चुनाव प्रचार हमारे आर्थिक-सामाजिक जीवन के प्रमुख भाग रहे हैं। प्रचारक वोट बैंक की राजनीति के चलते मतदाताओं का समर्थन पाने के लिये अलग-अलग समय, स्थान पर अलग-अलग बातें कहते हैं। इस सिलसिले में 1971 का आम चुनाव बहुत उल्लेखनीय है। उन दिनों सत्ताधारी पार्टी ने मतदाताओं से नया जनादेश मांगा था। हर जगह दीवारों पर पोस्टर चिपके और नारे लिखे थे और उम्मीदवार घर-घर जाकर वोटों की अलख जगा रहे थे। नये चुटकुले गढ़े जा रहे थे और मसखरों की बहुत मांग थी। एक उम्मीदवार ने अपने विरोधी को कहा कि "वह मैट्रिकुलेट होने के बावजूद अपने आप को एम.एससी. पास क्यों प्रचारित कर रहा है?" उसने विनम्रतापूर्वक जवाब दिया – "सर, एम.एससी. का मतलब है मैट्रिक विद साइंस।" लेकिन जब दक्षिण दिल्ली से उम्मीदवार प्रो. बलराज मधोक ने अपने विपक्षी शशिभूषण को नॉन मैट्रिकुलेट कहा तो शशिभूषण का जवाब था – "जब मधोक साहब डीएवी कॉलेज लाहौर में इतिहास की क़िताबों का रट्टा लगा रहे थे तो मैं उसी कॉलेज की गेट पर अपनी क़िताबें फेंक कर देशभक्ति के आह्वान पर लाहौर किले की जेल में देशसेवा का पाठ पढ़ रहा था।"

आजकल के चुनावों में एक अन्य महत्वपूर्ण विषय होता है – महिला सशक्तीकरण। चुनाव के दिनों में इसका शोर ज्यादा होता है। जब एक उम्मीदवार ने महिलाओं का कोटा बढ़ाए जाने की वक़ालत करते हुए कहा कि "महिलाओं का प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए।" अपने भाषण के दौरान उसने कहा कि "मैं अपने विपक्षी को याद दिलाना चाहता हूं कि स्त्री और पुरुषों के बीचं बहुत अंतर है" तो दर्शकों में से आवाज़ आई कि "यह अंतर जिंदाबाद।"

वर्तमान रेलमंत्री लालू प्रसाद यादव अपनी वाक्पटुता के लिये लोकप्रिय हैं। वह अक्सर ऐसी टिप्पणियां कर बैठते हैं जो कुछ बुद्धिजीवियों के गले नहीं उतरतीं। एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है :

जब तक समोसे में आलू रहेगा
तब तक बिहार में लालू रहेगा।

रेलमंत्री अपने चुटकुलों पर खुद नहीं हंसते, चुटकुलों को दुबारा नहीं सुनाते और न ही उसके बारे में कोई टीका-टिप्पणी करते हैं। चुनाव सभाओं में लालू प्रसाद यादव की वाक्पटुता देखने लायक होती है। एक राजनेता तक की उनकी जीवन यात्रा उनकी व्यक्तिगत वाक्-विदग्धता की जीती-जागती मिसाल है। कहा जा सकता है कि अगर वह नेता न होते तो निश्चय ही अच्छे व्यंग्यकार होते। लोकोक्तियों के मामले में वह लिंकन की याद दिलाते हैं जो चुनाव सभाओं में कहते थे – "अगर आप हमें वोट देंगे तो मैं आपका आभारी होऊंगा, लेकिन अगर नहीं देंगे तो भी आभारी होऊंगा।"

चुनावी इतिहास में एक अन्य उल्लेखनीय नाम है, डॉ. राम मनोहर लोहिया। उनका व्यंग्य बेजोड़ होता था। यह कहते हुए कि धरती का बड़ा भाग नेताओं के स्मारकों ने घेरा हुआ है, उन्होंने कहा था – "यही हाल रहा तो एक दिन पूरी दिल्ली कब्रिस्तान बन जाएगी।" एक बार यह पूछे जाने पर कि आप कितने वोटों से संसदीय चुनाव जीते हैं, उनका उत्तर था – "संसद सदस्यों की कुल संख्या से ज्यादा।" एक बार भारतीय राजनीति के जयचंद की संज्ञा दिए जाने पर उनका कहना था – "उनकी कोई बेटी नहीं है जिसका दिल्ली के पृथ्वीराज अपहरण करें। लेकिन एक मां है जो हम, आप तथा उसके लिये प्यारी और सम्मानीय हैं। वह है भारत माता।" ❑

(लेखक इतिहास के जानकार हैं)

समाज सेवा और कारोबार का नया संगम

बिहार की संस्था *निदान* को मिला इस साल सामाजिक उद्यमिता के लिये खेमका फाउंडेशन का सम्मान

● अभिषेक श्रीवास्तव

दिसंबर की एक सुबह दिल्ली के इंडिया हैबिटाट सेंटर की लॉन में गुनगुनी धूप तले प्रेमा गोपालन लघुवित्त का एक ऐसा मंत्र देती हैं जिससे आज सामाजिक सेवा क्षेत्र के इस मूल मंत्र की परतें हम आसानी से खोल सकते हैं, "माइक्रो फाइनेंस कोई चैरिटी नहीं है।" वास्तव में, इसी बात की गहरी समझ ने उन्हें न सिर्फ़ सामाजिक कार्यकर्ता, बल्कि एक उद्यमी के रूप में भी पहचान दिलाई है। 'स्वयं शिक्षण प्रयोग' नामक मुंबई स्थित संस्था की संस्थापक प्रेमा यूएनडीपी और श्वाबे की संयुक्त भागीदारी वाले खेमका फाउंडेशन के सामाजिक उद्यमिता पुरस्कार 2008 के तीन अंतिम दावेदारों में एक हैं। नवंबर 2008 में दिए गए इस पुरस्कार में विजेता न बन पाने का उन्हें मलाल नहीं है बल्कि दिल में भरोसा है कि भ्रष्ट राजनीति और आतंक के इस दौर में लघुवित्त के माध्यम से करोड़ों लोगों को ग़रीबी के गर्त से निकाला जा सकता है। इस काम में औज़ार बना है उनका सखी शिक्षण केंद्र (एसएसके), जो समूचे मराठवाड़ा में फैला हुआ है।

इस साल यह पुरस्कार जीतने वाले शख्स हैं पटना के अरविंद सिंह, जो 'निदान' नामक संस्था चलाते हैं। उनका काम भी लघुवित्त और ग़रीबों को दिए जाने वाले लघुऋण के इर्द-गिर्द केंद्रित है। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज से स्नातक और बाद में दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पढ़ाई करने वाले अरविंद की ज़िंदगी को एक तमिल महिला विजी श्रीनिवासन ने नया मोड़ दिया, जो पटना में 'अदिति' नामक संस्था चलाती थीं। आज वह तक़रीबन समूचे बिहार में असंगठित क्षेत्र के लोगों को बीमा, लघुवित्त, लघु ऋण और पेंशन समेत रेमिटेंस सुविधाएं मुहैया करा रहे हैं। उन्होंने अपने काम को संगठित रूप देने के लिये 1996 में एक कचरा प्रबंधन कंपनी बनाई थी, जिसकी आय आज प्रतिमाह 10 लाख रुपये है। इसमें समुदाय के 400 लोग कार्यरत हैं। श्री अरविंद बताते हैं, "बिहार में एक फ़र्क तो पड़ा है कि ऋण देने वाली एजेंसियां अब हमारे काम को गंभीरता से ले रही हैं।" उन्होंने ऋण और बीमा सेवाओं के लिये आईसीआईसीआई, एसबीआई और एचडीएफसी, बिड़ला सनलाइफ, एलआईसी और आईसीआईसीआई लोम्बार्ड के साथ गठजोड़ किया हुआ है।

इन दोनों से बिल्कुल अलग हैं बृज कोठारी, जिन्हें सामाजिक बदलाव का अपना औज़ार आज से बारह साल पहले दोस्तों के साथ एक स्पेनिश फ़िल्म देखते हुए मिला। उन्हें लगा कि यदि स्पेनिश फ़िल्मों में सबटाइटिल भी स्पेनिश हो, तो समझने में कोई दिक्क़त न आए। यहीं से साक्षरता की एक नयी सूझ उनमें आई कि हिंदी वीडियो में सबटाइटल भी हिंदी में दिए जाएं। बृज, खेमका पुरस्कारों के लिये चुने गए तीन उद्यमियों में से एक थे। उनकी दो संस्थाएं - प्लैनेटरीड और बुकबॉक्स इस काम को अंजाम दे रही हैं जिसमें आईआईएम अहमदाबाद का अहम योगदान है। इन संस्थानों ने आईआईएम में ही जन्म लिया।

उनके उद्यम की उपयोगिता को उनके शब्दों में ही समझा जा सकता है, "आईआईएम में चल रही हमारी एसएलएस परियोजना और प्लैनेटरीड का सालाना बजट एक करोड़ रुपये है। इतने में हम पढ़ने में कमज़ोर 20 करोड़ लोगों को हफ़्ते में आधा घंटा पढ़ने का मौका दे पाते हैं। यानी एक व्यक्ति के लिये पढ़ाई का सालाना ख़र्च 5 पैसे आता है। सरकार ऐसे ही किसी कार्यक्रम के लिये 150 रुपये सालाना एक आदमी पर ख़र्च करती है। यानी एमएलएस पर ख़र्च किए गए हर करोड़ रुपये पर सामाजिक रिटर्न 3,000 करोड़ रुपये बैठता है।" आज बुकबॉक्स का स्टार टीवी, टाइम्स ग्रुप और हंगामा मोबाइल के साथ करार है। अब तक निदान और बुकबॉक्स को कोई निजी निवेश हासिल नहीं हुआ है, हालांकि उन्हें जल्द ही इसकी उम्मीद है। इस बारे में प्रेमा कहती हैं, "निजी निवेश से हम बचते हैं क्योंकि इससे कंपनी का नियंत्रण समुदाय के हाथों से निकल जाता है।"

बृज याद करते हैं, "मेरे जीवन का सबसे बहुमूल्य क्षण वह था जब मैंने गांव की एक लड़की को हाथ में सबटाइटिल लेकर गाना गाते हुए देखा। तब मुझे लगा कि हम सही रास्ते पर जा रहे हैं।" आज ऐसी करोड़ों लड़कियों को शिक्षा, आजीविका और जीवन प्रदान करने में निदान और एसएसके जैसी संस्थाएं लगी हुई हैं जिन्हें देर से ही सही, कॉरपोरेट जगत मान्यता दे रहा है। ❑

(साभार : इकनॉमिक टाइम्स)

अविरत बुनाई

एक औपचारिक प्रणाली के उत्कट लालसा में बदलने की कहानी

यह एक असाधारण कहानी है, इसलिये नहीं कि षण्णमुगम ने एक छोटी-सी तकनीकी समस्या हल कर बुनकरों के लिये कम लागत पर बेहतर नतीज़ा देने वाला समाधान खोज निकाला था। इसलिये भी नहीं कि एक युवा श्रमिक को इंजीनियरिंग के डिप्लोमा और फिर बाद में, डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश मिला, क्योंकि उसकी प्रतिभा से गेटकीपर प्रभावित हुए थे। यह असाधारण इसलिये है कि एक प्रयोगशाला सहायक को एक छोटे बच्चे की आंखों में जिज्ञासा और खोज की ललक दिखाई दी थी। प्रधानाचार्य ने तब, साधारण अंकों से हाईस्कूल पास षण्णमुगम की प्रतिभा को परखा। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्होंने बिना किसी फीस अथवा चंदा लिये डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया, और वह भी सीधे दूसरे वर्ष में। राष्ट्रीय नवप्रवर्तन फाउंडेशन (एनआईएफ) ने 2007 में उसे पुरस्कृत किया। उसके लिये इतना ही काफी नहीं था, उसने इंजीनियरिंग के डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश की मांग करते हुए तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को पत्र लिखा और कुछ सप्ताह के भीतर ही मुख्यमंत्री कार्यालय ने उसे न केवल सर्वोत्तम टेक्सटाइल इंजीनियरिंग कॉलेजों में से एक में बिना किसी फीस के प्रवेश देने की सूचना दी, बल्कि उसे छात्रवृत्ति दिए जाने की भी जानकारी दी। हमारी शिक्षा प्रणाली में ऐसे कितने उदाहरण हैं, जब किसी व्यक्ति की प्रतिभा को अधिकारियों ने अपवाद के रूप में स्वीकार किया हो, और वह भी एक ऐसे श्रमिक की, जिसके पास किसी की सिफ़ारिश न हो (सिवाय एक प्रयोगशाला सहायक की) और न ही कोई संपर्क या जुगाड़!

नवोन्मेषी प्रतिभा के पालन-पोषण की आवश्यकता को स्वीकार करने के लिये हम उस प्रयोगशाला सहायक और प्रधानाचार्य को सलाम करते हैं। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को भी हमारा सलाम!

बुनकर (जुलाहा) परिवार का 28 वर्षीय षण्णमुगम तमिलनाडु के सलेम जिले के गांव चिनप्पमपट्टी का रहने वाला है। इस गांव के क़रीब दो सौ परिवार बुनाई और कपास, बाजरा और ज्वार आदि की खेती से आजीविका चलाते हैं। षण्णमुगम की एक बड़ी बहन है, जिसकी शादी हो चुकी है। उसका एक छोटा भाई है जिसने टेक्सटाइल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा किया है और अब टेक्सटाइल मार्केटिंग के क्षेत्र में कार्यरत है। बचपन से ही उसे खेलने की अपेक्षा पुस्तकें पढ़ने में बड़ी रुचि थी और अपना अधिकांश खाली समय वह गांव के पुस्तकालय में ही व्यतीत करता था।

उसके पिता के पास साड़ी बनाने के लिये केवल एक ही हथकरघा था। अपने पिता के कामकाज में हाथ बंटाते समय वह इसी उधेड़बुन में रहता कि करघे को कैसे सुधारा जाए। परंतु वह ज्यादा कुछ नहीं कर सका। हायर सेकेंडरी परीक्षा पास करने के बाद उसे अपने चाचा के साथ दैनिक वेतन के आधार पर एक सहायक (प्रशिक्षु) के तौर पर काम पर लगा दिया गया। उसके चाचा के पास पंद्रह पावरलूम थे और यहीं पर उसने अपने प्रयोगों का सफ़र शुरू किया। उसने अपने चाचा को बताए बगैर उनके पावरलूम पर प्रयोग करना शुरू कर दिया। हालांकि उसे अनेक नाकामियां मिलीं, परंतु इस बात का उसने ज़रूर ख्याल रखा कि उसके प्रयोगों के कारण उत्पादकता के साथ कोई समझौता नहीं हो। जो भी समस्याएं (करघे में) सामने आईं, चाहे वे उसके प्रयोगों के कारण हों या अन्य कारणों से, वह उनकी सुधार करने में सफल रहा।

एक समस्या जो उसके सामने आई, वह थी 'पर्न' में धागा भरकर शटल में लगाने के लिये एक अतिरिक्त व्यक्ति की ज़रूरत। एक तकुए में आगे-पीछे आने-जाने के लिये अथवा बाने में डालने के लिये क़रीब 1,000 मीटर लंबा धागा होता है। उसने न केवल यह समस्या हल की, बल्कि अपनी इसी प्रतिभा के बल पर डिप्लोमा कॉलेज में दाखिला लिया और बाद में उसे डिग्री कॉलेज में भी प्रवेश मिला।

उत्पत्ति

चार वर्ष पूर्व, एसएसएम इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी ने सामुदायिक पॉलीटेक्निक योजना के तहत स्थानीय समाचारपत्र में धागा रंगाई में प्रशिक्षण कार्यक्रम के बारे में एक विज्ञापन दिया। चूंकि षण्णमुगम कपड़ा उद्योग में हुई प्रगति के बारे में सीखने को इच्छुक था, उसने 6 माह के इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिये आवेदन कर दिया। कोई फीस नहीं देनी थी और भोजन तथा यात्रा का व्यय संस्था को ही वहन करना था। प्रशिक्षणार्थियों को छात्रावास में रहना था।

प्रशिक्षण के दौरान, एक दिन वह भोजनावकाश के बाद बुनाई प्रयोगशाला में गया और प्रयोगशाला सहायक वी. चंद्रशेखरन के साथ बातचीत करने लगा। बातचीत के दौरान षण्णमुगम ने पावरलूमों में बाने (वेफ्ट) में निरंतर चलती रहे, ऐसी धागा डालने वाली प्रणाली में सुधार करने के अपने विचार के बारे में बताया। चंद्रशेखरन उसके नवोन्मेषी मस्तिष्क से बहुत प्रभावित हुआ और उसी दिन उसे प्रधानाचार्य के पास ले गए। षण्णमुगम ने अपने विचार प्रधानाचार्य और बुनाई विभाग के प्रमुख को बताए। शुरू में

तो उन लोगों को संशय बना रहा और उसके विचारों को स्वीकार नहीं किया गया। परंतु किसी तरह उसने प्रधानाचार्य को दो दिनों के अंदर अपने विचार से प्रभावित करने के लिये समय देने को राजी कर लिया। अनुमति मिलने और प्रयोगशाला सुविधाएं मिलने के बाद वह प्रशिक्षण प्रयोगशाला में रखे एक पुराने पावरलूम पर सुधार के प्रयास में लग गया। उसने डेढ़ दिन के अंदर ही सफलतापूर्वक अपनी तकनीक साबित करके दिखा दी। साधारण पावरलूम में बाने के धागे को बार-बार बदलना पड़ता है, लेकिन एक ही पर्न में बाने के दो शंकुओं को साथ रखकर, 1,000 मीटर लंबा कपड़ा पर्न (बाबिन) में धागा दोबारा भरे बिना बुना जा सकता है।

सफलता

उसके नवोन्मेषी विचार को स्वीकार और सराहना करते हुए प्रधानाचार्य ने उसे वस्त्रोद्योग प्रौद्योगिकी के डिप्लोमा पाठ्यक्रम में सीधे दूसरे वर्ष में प्रवेश की पेशकश की। हालांकि हायर सेकेंडरी में उसके अंक बहुत अच्छे नहीं थे, तो भी कॉलेज ने प्रबंधन कोटे से उसे नि:शुल्क सीट दे दी गई। उसे शैक्षिक परियोजना कार्य के तौर पर अपना नवोन्मेषी कार्य जारी रखने की अनुमति भी मिल गई। इस तरह की अनुमति आमतौर पर केवल अंतिम वर्ष के छात्रों को ही दी जाती है।

षण्णमुगम ने डिप्लोमा परीक्षा 2007 में प्रथम श्रेणी के साथ उत्तीर्ण की। जून 2007 में उसने सीधे दूसरे वर्ष में प्रवेश लेते हुए इंजीनियरिंग में डिग्री की पढ़ाई शुरू की। दूसरे वर्ष में सीधे प्रवेश की सुविधा सभी डिप्लोमा छात्रों को दी जाती है। उसके नवप्रवर्तन को कॉलेज के प्रधानाचार्य ने मदुरई स्थित 'सेवा' के 'हनी-बी नेटवर्क' के वरिष्ठ सहयोगी श्री पी. विवेकनंदन के जरिये राष्ट्रीय नवप्रवर्तन फाउंडेशन को भेज दिया। तदनुसार, इसे फाउंडेशन के चौथे द्विवार्षिक स्पर्धा में 'छात्रवर्ग' के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। षण्णमुगम को राष्ट्रीय स्तर के द्वितीय पुरस्कार के लिये चुना गया। उसे छात्र वर्ग की सीमित स्पर्धा से ऊपर उठकर सामान्य वर्ग में यह पुरस्कार प्राप्त हुआ। फाउंडेशन के 2007 में हुए राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह में पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने उसे यह पुरस्कार प्रदान किया।

बाद में मीडिया ने षण्णमुगम का साक्षात्कार लिया और स्थानीय समाचारपत्रों और टीवी चैनलों ने उसका सम्मान भी किया। कुछ दिनों के बाद ही षण्णमुगम ने बी.टेक कार्यक्रम में नि:शुल्क सीट के जरिये प्रवेश के लिये निवेदन करते हुए मुख्यमंत्री को पत्र लिखा। उसे तमिलनाडु के मुख्यमंत्री के व्यक्तिगत सचिव की ओर से न केवल प्रशस्तिपत्र मिला, बल्कि तमिलनाडु सरकार की ओर से उसकी आगे की पढ़ाई का ख़र्च उठाने का प्रस्ताव भी मिला। मुख्य सचिव द्वारा निदेशक, तकनीकी शिक्षा को लिखे गए पत्र में न केवल एनआईएफ पुरस्कार का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था, बल्कि राज्य के सर्वोत्तम निजी कॉलेजों में से एक पीएसजी कॉलेज ऑफ टेक्सटाइल टेक्नोलॉजी, कोयम्बटूर में प्रवेश देने की सिफ़ारिश भी की गई थी। इसके लिये उसे बिना ब्याज के 45,000 रुपये का ऋण भी प्रदान किया, जिसे उसे काम मिलने के बाद चुकाना था। सरकार ने उसके डिग्री पाठ्यक्रम के पूर्ण होने के पहले ही उसे तमिलनाडु हथकरघा बुनकर सहकारी समिति (कोऑपटेक्स) में शोध एवं विकास (आरएंडडी) इंजीनियर के रूप में काम की पेशकश की।

षण्णमुगम ने अनुसंधान में रुचि रखने वाले छात्रों को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा दी जाने वाली राष्ट्रीय फेलोशिप - किशोर वैज्ञानिक प्रोत्साहन योजना (केवीपीवाई)। 2008 के लिये भी आवेदन किया और उसके लिये चुन लिया गया। उसके जीवन ने अब सकारात्मक मोड़ ले लिया है।

नवप्रवर्तन

षण्णमुगम की तकनीक के फलस्वरूप, सभी शटल करघों को इस तरह से संशोधित किया जा सकता है कि बिना बार-बार पर्न को बदले बाने को निरंतर अंदर ताने में डाला जा सकता है। बार-बार शटल को बदले बगैर दो शंकुओं (कोन) के माध्यम से डॉबी (करघे के ऊपर लटकते धागे का स्रोत) से धागा एक ही पर्न में डाला जा सकता है। इस तरह से बाना (वेफ्ट) 1,000 मीटर तक लगातार काम कर सकता है। पहले, पर्न को हर पांच मिनट पर भरना पड़ता था।

करघे के किनारों पर बाने के दो शंकु लगे रहते हैं और उनको विशेष रूप से इस प्रकार रखा जाता है कि उनमें धागे का तनाव नियंत्रित करने की क्षमता बनी रहे और इलेक्ट्रॉनिक बाना गति को रोक सके। पर्न के धागे का प्रयोग केवल शंकुओं से लिये गए बानों को बांधने के लिये किया जाता है। इस तरह से पर्न में धागा भरने का ख़र्च कम हो जाता है। इस विधि में बुनाई बाने के दो धागों से होती है, इसलिये कपड़ा घना बुना जाता है। केवल शंकुओं को ही बदलना पड़ता है। रैपियर करघों के विपरीत षण्णमुगम की तकनीक में एक हज़ार मीटर की लंबाई तक पर्न को बार-बार बदलना नहीं पड़ता है। पचास प्रतिशत ताने के धागों को एक ही बार में उठाया जाता है और शेष 50 प्रतिशत को पहली छंटाई के लिये नीचे रखा जाता है। अगली छंटाई के लिये प्रणाली को उलट दिया जाता है। हील्ड फ्रेमों को डॉबी से इस प्रकार जोड़ा जाता है कि हील्ड्स के बीच कोई टकराव नहीं हो। डॉबी प्रणाली का जब ज़रूरी हो, बाने का रंग चुनने के लिये प्रयोग किया जा सकता है। शटल में एक अतिरिक्त छिद्र किया जाता है ताकि पर्न के धागों को उचित खिंचाव मिल सके। इससे पर्न शंकुओं से जुड़ जाता है।

बार-बार पर्न बदलने की आवश्यकता समाप्त हो जाने के कारण बुनाई में लगने वाले समय और जनशक्ति (श्रमिकों) में काफी कमी आ गई है। नया करघा कम ख़र्चीला भी है और रखरखाव में सावधानी भी कम मांगता है। शंकुओं के दोनों ओर अलग-अलग रंग के धागे रखने से कपड़े का आधा हिस्सा एक रंग से और शेष आधा हिस्सा दूसरे रंग से बुना जा सकता है। फीडिंग छोर पर विभिन्न रंगों के अधिक शंकु लगाकर (डॉबी द्वारा बाने के रंगों का चयन) धारीदार अथवा चौखाने (चेक) नमूनों की बुनाई बिना ड्रॉप बॉक्स व्यवस्था के भी की जा सकती है। चौड़े करघों के लिये यह विधि बहुत उपयुक्त है। लघु इकाइयां बिना किसी अतिरिक्त व्यय के अपना उत्पादन बढ़ा सकती हैं। साधारण पावरलूम पर इस विधि के प्रयोग से सूती, रेयॉन, पॉलिएस्टर और रेशमी कपड़े बुने जा सकते हैं।

बाने की बार-बार भराई में लगने वाले समय बचने से उत्पादकता में 15-20 प्रतिशत का सुधार हुआ है। बाने की धागा भराई के लिये रुकने की संख्या में आई कमी के कारण इस नवप्रवर्तन से उत्पादित कपड़े की गुणवत्ता बहुत अच्छी होती है। बुनकर पृष्ठभूमि के कारण षण्णमुगम और भी कम लागत वाली प्रौद्योगिकियों का विकास करना चाहता है ताकि पारंपरिक बुनकर समुदाय अपनी जीवनशैली को ऊंचा उठा सकें। ऐसा प्रतीत होता है, कम से कम इस बार, सरकार ने प्रतिभा को पहचानने में और उसके कैरियर के विकास में कोई ग़लती नहीं की है। आशा है कि वह रचनात्मक और

नवोन्मेषी क्रियाकलाप जारी रखेगा।

अपनी और समाज की समस्याओं को हल करने वाले व्यक्तियों के सफ़ल प्रयासों की इस और इस जैसी अनेक कहानियों को राष्ट्रीय नवप्रवर्तन फाउंडेशन (एमआईएफ) ने अपने भागीदारों के सहयोग से दस्तावेज़ का रूप दे रखा है। एनआईएफ इस तरह के प्रेरक प्रौद्योगिकीय प्रयासों को मान्यता प्रदान करता है और गैरसहायता प्राप्त नवप्रवर्तनों को संभावित उत्पाद विकास, पेटेंट प्रबंधन और व्यापार विकास समर्थन प्रदान करता है। समाज के सबसे निचले स्तर से उभरकर सामने आने वाले पारंपरिक तकनीकी ज्ञान को फाउंडेशन से बड़ा समर्थन प्राप्त हुआ है। अपनी छठी द्विवार्षिक राष्ट्रीय स्पर्धा के लिये एनआईएफ नवोन्मेषी छात्रों, कारीगरों, मछुआरों, महिलाओं, इलाज करने वालों (हीलर्स), जड़ी-बूटी के जानकारों और अन्य ज़मीनी लोगों से प्रविष्टियां आमंत्रित करता है। एनआईएफ को डाक द्वारा पो.बा. नं. 15051, अंबावाड़ी, अहमदाबाद 380015 के पते पर अथवा ई-मेल से campaign@nifindia.org पर संपर्क किया जा सकता है। पुरस्कृत नवप्रवर्तनों के उदाहरणों के बारे में www.nifindia से जानकारी मिल सकती है।

जो लोग टिकाऊ और कम ख़र्चीली प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में भारत को विश्व नेता के रूप में स्थान दिलाने के इस मैदानी नवोन्मेषी आंदोलन से जुड़ना चाहते हैं वे भी एनआईएफ से संपर्क कर अपना दृष्टिकोण और विज़न स्पष्ट कर सकते हैं। ❑

अर्थव्यवस्था और उद्योग जगत को राहत पैकेज़

वित्तमंत्री के रूप में अपना पसंदीदा मंत्रालय संभाल रहे प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने मंदी में जकड़ती देश की अर्थव्यवस्था और उद्योग जगत के लिये राहत पैकेज़ की घोषणा की। चौतरफा रियायतों और राहत पैकेज़ के तहत सरकार का इरादा मांग में तेज़ी लाकर सुस्त पड़ते उद्योगों को वापस सामान्य बनाने का है। पैकेज़ में कई मोर्चों पर कर कटौती के साथ-साथ निर्यात, आवास, कपड़ा और ढांचागत क्षेत्रों के लिये अतिरिक्त बजट एवं सहायता भी दी गई है। इसका ऐलान करते हुए एक बयान में कहा गया "सरकार वैश्विक वित्तीय संकट के भारतीय अर्थव्यवस्था पर असर को लेकर चिंतित है। इस समस्या से निपटने के लिये अनेक कदम उठाए जा रहे हैं। साथ ही, विकास दर की तेज़ी को भी बनाए रखने के लिये आवश्यकतानुसार अतिरिक्त उपाय किए जाएंगे।" इस पैकेज़ के एक दिन पहले ही भारतीय रिज़र्व बैंक ने भी कई मौद्रिक पहलों की घोषणा की थी।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने अमरीका एवं यूरोप में जारी मंदी की मार झेल रहे निर्यातकों को कुछ राहत देते हुए उनके बकाया बिलों की ब्याज दर में छूट की अवधि 90 दिन से बढ़ाकर 180 दिन कर दी है। निर्यातकों की बैंकों की प्रधान उधारी दर (पीएलआर) से 2.5 प्रतिशत कम ब्याज दर पर कर्ज़ उपलब्ध हैं। मौजूदा समय में निर्यातकों को उक्त सुविधा कर्ज़ के विलंबित (ओवरड्यू) होने की अवधि के बाद 90 दिनों के लिये उपलब्ध है। रिज़र्व बैंक के इस निर्णय के साथ अब निर्यातक कम ब्याज दर पर कर्ज़ की सुविधा 180 दिनों के लिये उठा सकते हैं। उल्लेखनीय है कि कालीन, चाय तथा हस्तशिल्प क्षेत्रों की हालत पहले ही ख़राब हो चुकी है। मौजूदा वित्तवर्ष के अक्तूबर में कुल निर्यात 12.1 फीसदी घटकर 12.8 अरब अमरीकी डॉलर हो गया, जो इससे पूर्व वर्ष के इसी माह में 14.58 अरब डॉलर था।

पैकेज़ में सेनवैट (एड वैलोरम या मूल्य अनुसार कर) में समान रूप से चार प्रतिशत की कटौती की गई है ताकि अतिरिक्त परिव्यय को बढ़ावा दिया जा सके। इससे हर तरह की वस्तुओं और सेवाओं के सस्ता होने का रास्ता खुल जाएगा। बयान में कहा गया कि योजना परिव्यय के जरिये प्रतिचक्रीय प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये सरकार ने चालू वर्ष में 20,000 करोड़ रुपये के अतिरिक्त योजना परिव्यय की अनुमति मांगने का निर्णय लिया है। इसमें कहा गया है कि मार्च में समाप्त होने जा रहे चार महीनों में कुल परिव्यय 3,00,000 करोड़ रुपये होने का अनुमान है।

निर्यात क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान देते हुए सरकार ने मार्च 2009 तक दो प्रतिशत का ब्याज अनुदान (ब्याज पर सरकारी सहायता) देने का फ़ैसला किया है। यह सहायता कपड़ा, चर्म, समुद्री उत्पाद और एसएमई जैसे श्रम आधारित क्षेत्रों को शिपमेंट से पहले और बाद के निर्यात ऋण के लिये होगी। रियायत ब्याज के न्यूनतम दर पर निर्भर करेगी। इसके अलावा टर्मिनल उत्पाद शुल्क (सीएसटी) के पूर्ण रिफंड के लिये 1,100 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि प्रदान की जाएगी तथा निर्यात सहायता योजनाओं के लिये और 350 करोड़ रुपये देने के साथ ईसीजीसी (एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉरपोरेशन) के लिये 350 करोड़ रुपये की बैकअप गारंटी दी जाएगी ताकि दिक्कतों वाले बाज़ार एवं उत्पादों के निर्यात के लिये गारंटी प्रदान की जा सके।

ढांचागत विकास की अहमियत समझते हुए सरकार ने इंडियन इंफ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस कंपनी लिमिटेड (आईआईएफसीएल) को मार्च 2009 तक कर मुक्त बांड के जरिये 10,000 करोड़ रुपये जुटाने की अनुमति देते हुए कहा कि भविष्य में इसे और संसाधन जुटाने की अनुमति दी जाएगी। विशेष तौर पर यह राहत राजमार्ग क्षेत्र में 1,00,000 करोड़ रुपये की सार्वजनिक निजी साझेदारी (पीपीपी) कार्यक्रम को सहायता प्रदान करेगी।

आवासीय उद्योग क्षेत्र में उछाल के लिये सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक जल्द ही दो श्रेणियों (पांच लाख तक के ऋण और पांच से 30 लाख तक) के आवास ऋण लेने वालों के लिये एक पैकेज़ की घोषणा करेंगे।

पैकेज़ में मंदी की मार से तार-तार हो रहे कपड़ा क्षेत्र के लिये अतिरिक्त 1,400 करोड़ रुपये की राशि की व्यवस्था की गई है।

बयान में कहा गया कि सरकारी विभागों को अनुमोदित बजट के भीतर वाहनों को बदलने की अनुमति दी जाएगी ताकि घटती बिक्री से परेशान ऑटो क्षेत्र की मांग में भी तेज़ी आ सके।

पैकेज़ के तहत सरकार ने लौह अयस्क पर निर्यात शुल्क को घटा दिया है। सरकार ने चूर्ण पर निर्यात शुल्क शून्य प्रतिशत तथा लंप्स पर पांच प्रतिशत कर दिया है। इस्पात उद्योग मांग में कमी के कारण फिलहाल काफी दबाव में है। फिलहाल लौह अयस्क फाइनेंस पर आठ प्रतिशत मूल्यानुसार निर्यात शुल्क लगता है जबकि लंप्स पर यह कर 15 प्रतिशत है। ❑

आर्थिक मंदी की चपेट में दुनिया

● रहीस सिंह

पिछले दिनों जब सबप्राइम संकट ने अमरीकी अर्थव्यवस्था को झटका दिया था तब अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक विशारदों ने डी-कपलिंग (विच्छेदीकरण) की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए कहा था कि अमरीकी अर्थव्यवस्था के मंदी में चले जाने के बाद उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएं (विशेषकर भारत और चीन की) विश्व अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने का कार्य करेगी। यह घोषणा अमरीकी विद्वान लेस्टर सी. थूरो के उस सिद्धांत से मिलती जुलती है जो उन्होंने अपनी पुस्तक *दि फ्यूचर ऑफ कैपिटलिज्म* में पहले ही प्रस्तुत कर दी थी। थूरो ने लिखा है कि 'अमरीका के प्रभाव में संचालित एकध्रुवीय व्यवस्था के दिन लद चुके हैं और एक बहुध्रुवीय संसार उभर कर विश्व रंगमंच पर आ चुका है।' यानी दुनिया अब समतल नहीं रह गई इसलिये अब अमरीकी अर्थव्यवस्था की सेहत का किसी भी प्रकार का प्रभाव अन्य अर्थव्यवस्थाओं पर नहीं पड़ना है। लेकिन वर्तमान संकट थॉमस फ्रीडमैन के 'वर्ल्ड इज फ्लैट' (दुनिया समतल है) के सिद्धांत को मान्यता देती दिखाई देता है। अर्थात क्या अभी वह स्थिति कायम है जहां अमरीका को नजला होने से पूरी दुनिया छींकने लगती है?

पिछले तेरह महीने से अमरीका के वित्तीय बाज़ार ने कुछ इस तरह से करवटें बदलनी शुरू की कि पूरी दुनिया के वित्तीय बाज़ारों को झटके आने लगे। पिछले कुछ ही दिनों में दुनिया के सबसे बड़े इंश्योरर को धराशायी होते देखा गया, उसकी नीतियां उलटते हुए भी देखी गईं जिनमें पूरी दुनिया को बांधने की रणनीति पिछले एक दशक से अपनाई जा रही है। ध्वंस की प्रभावी दस्तक दो बड़े निवेश बैंकों, जिनकी संपत्ति 1.5 अरब डॉलर थी और दो बड़ी मॉर्गेज कंपनियों, जिनकी संपत्ति 1.8 अरब डॉलर थी, से हुई। इसके बाद ही वॉल स्ट्रीट और डाउ जोंस लगभग तीन साल के निम्न स्तर पर पहुंच गया। दरअसल, यह तेरह महीने पहले शुरू हुए संकट का वाद्दयरूप है जिसने अब तबाही मचाना शुरू कर दी है। दुनिया के सबसे बड़े वित्तीय ठिकाने वॉल स्ट्रीट की पांच सबसे बड़ी कंपनियों में से तीन अपनी साख खो चुकी हैं। अर्ध सार्वजनिक मार्गेज कंपनियां फेनी और फ्रेडी मैक का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया, लीमैन ब्रदर्स दिवालिया हो गई, मेरिल लिंच ने खुद को काफी सस्ते दामों में बैंक ऑफ अमरीका को बेच दिया और अमरीकन इंटरनेशनल ग्रुप (एआईजी) को संकट से उबारने के लिये अमरीकी करदाताओं के पैसे से बने केंद्रीय बैंक द्वारा 85 अरब डॉलर देकर एक महंगा सौदा किया गया। *न्यूयार्क टाइम्स* की ख़बरों में कहा गया है कि म्युचुअल फंड निवेशक सालभर से अमरीकी और वैश्विक फंड से पैसे निकाल रहे थे लेकिन अब इसकी रफ़्तार बढ़ गई है, जिससे यह वित्तीय संकट सामने आया है। इसके बाद इस संकट की धमक यूरोप और एशिया की ओर पड़ी जो इसे बर्दाश्त करने में असफल रहे। 17 अक्तूबर को ब्रिटेन की सबसे बड़ी 'मॉर्गेज लेण्डर' कंपनी एचबीओएस के शेयर नीचे गिरने के बाद उसने अपने आपको लॉयड्स टीएसबी के हवाले 12 लाख पाउंड (22 लाख डॉलर) लेकर कर दिया। रूस ने अपने तीन बड़े बैंकों को 1.12 अरब रूबल प्रदान कर उन्हें संकट से उबारने का प्रयास किया। इसके बाद जापान, जर्मनी, स्पेन और ब्रिटेन का आउटपुट संकुचित होना शुरू हुआ है।

अमरीकी अर्थव्यवस्था का यह हश्र कैसे हुआ

क्या अमरीकी अर्थशास्त्रीय बुद्धि इससे पूरी तरह से अनजान थी, जैसा कि पाल क्रुगमैन ने स्वीकार किया है? इसमें दोष किसका है सरकारी नीतियों का या फिर वित्तीय कंपनियों की कुटिल चालों का? क्या 1930 का इतिहास दोहराया जाएगा या फिर अर्थव्यवस्था के घुमड़ते बादल जल्द ही छट जाएंगे? ऐसे बहुत से सवाल हैं जिनका तत्काल हल ढूंढना अनिवार्य है। अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मत है कि पिछले डेढ़ साल से चला आ रहा अमरीकी सबप्राइम संकट ही विकराल रूप धारण कर सबसे बड़े वित्तीय संकट में तब्दील हो गया है।

पिछले दिनों *वॉल स्ट्रीट पत्रिका* ने एक दावा किया था कि वास्तविक बीमारी पहचान ली गई है, अब जल्द ही इसका इलाज संभव होगा। हो सकता है कि अख़बार का दावा सही हो लेकिन बात सिर्फ़ बीमारी पहचानने तक की ही नहीं है क्योंकि बीमारी तो छुपी है ही नहीं, ज़रूरत बेहतर इलाज़ की है जो मुनाफ़े की मानसिकता में धंसी है। इसी मानसिकता ने अमरीका के 400 अरब डॉलर के कर्ज़ डूब गए जिससे सबप्राइम संकट पैदा हुआ। अब वास्तव में अमरीकी वित्तीय बाज़ार में विश्वास का संकट है क्योंकि अभी तक निवेशकों को यह विश्वास हासिल नहीं हो सका है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था के दिन बहुरने वाले हैं। इसका कारण यह है कि वित्त के सिकुड़ने की प्रक्रिया थमती नज़र नहीं आ रही है। गौर से देखा जाए तो आज वित्त उद्योग दो घातक बलों द्वारा

संचालित हो रहा है। एक है अतिरिक्त वित्त, जो इस उद्योग के खड़े रहने के लिये अनिवार्य है और दूसरा है वह क्षेत्र जहां से यह अधिकाधिक लाभ अर्जित कर सके। अतिरिक्त वित्त की उत्कट इच्छा क्रेडिट बूम को प्रोत्साहन देती है। क्रेडिट बूम तरलता की वृद्धि करता है जिससे स्फीति बढ़ती है। यह स्फीति वित्तीय क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव डालती है अर्थात वित्त को सिकोड़ देती है। अमरीकी कार्पोरेट सेक्टर ने पिछले दो से ढाई दशकों में खूब लाभ कमाया। उदाहरण के तौर पर यह 1980 के आरंभ में कुल कार्पोरेट अनुलाभों का केवल 10 प्रतिशत होता था जो पिछले वर्ष बढ़कर 40 प्रतिशत पहुंच गया। लाभ के इस मुकाम पर पहुंचने के बाद इस क्षेत्र में वित्त निर्माण की क्षमता जाती रही जिससे निवेशक अपना फंड वापस खींचने लगे। यानी विशुद्ध मुनाफे की प्रवृत्ति ने पहले इस क्षेत्र को अतिरेक वित्त मुहैया कराया लेकिन संभावनाओं को धूमिल होते (या वित्त को सिकुड़ते हुए) देखकर वही निवेशक अन्यत्र लाभ मिलने की उम्मीद से अपना धन ले उड़े, जिससे वित्त का संकट पैदा हो गया।

न्यूयॉर्क टाइम्स और *वॉल स्ट्रीट* जर्नल ने आइसलैंड में ऐसी बैंकिंग व्यवस्था की जानकारी दी जो अंततः अपने आपको ही ले डूबी। इन पत्रों के मुताबिक सन् 2002 के आसपास आइसलैंड ने अपने बैंकों की सरकारी मिल्कियत को समाप्त करना शुरू किया था। कमोबेश देश की पूरी बैंकिंग व्यवस्था तीन बैंकों के इर्द-गिर्द घूमती थी। फलतः इन तीनों ने जो कमाई शुरू की कि पांच वर्षों के अंदर ही इनकी संपत्ति बढ़कर दो गुनी हो गई। आइसलैंड के बैंकों ने अमरीका के सबप्राइम मॉर्गेज में पैसा नहीं लगाया लेकिन बचत खातों में 5.45 प्रतिशत पूंजी लगा दी और कर्ज़ देकर पूरे यूरोप को आकर्षित किया। थामस फ्रीडमैन कहते हैं कि "समतल दुनिया वहीं भागती है जहां से बेहतर रिटर्न मिल सकते हैं।" ब्रिटेन से ही 1.8 अरब डॉलर की जमांए प्राप्त हो गईं। दुर्भाग्य से जब वैश्विक ऋण बाज़ार पर संकट आया तब आइसलैंड के बैंकों के पास देनदारी पूरी करने के लिये पैसा नहीं बचा। जब जमाकर्ता अपना पैसा निकालना चाहे तो बैंक के पास पूंजी नहीं थी। तीनों बैंक दिवालिया हो चुके थे।

तब असली कारण कहां निहित माना जाए? सीधे शब्दों में कहें तो वित्तीय कंपनियों और निवेशकों की अधिकाधिक रिटर्न पाने या लाभ कमाने की इच्छा में। यानी अमरीकी जनता का यह आरोप पूरी तरह से सही है कि मुनाफाखोरों और सट्टेबाजों की खोटी नियति ने अमरीकी वित्तीय संस्थाओं को यहां पर ला खड़ा किया। सरकार की नीतियां इसमें कहां तक दोषी हैं ? भारत के एक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं स्तंभ लेखक का कहना है कि "यह संकट सरकारी नीतियों का परिणाम है।" उनका कहना है कि "आज दुनिया के अधिकांश देशों के नेता और सरकारें समावेशी वित्त को लागू करना चाहते हैं। इसका असल कारण चाहे उनकी उदारवादी नीति हो या फिर वोट की इच्छा।" समावेशी वित्त एक ऐसी व्यवस्था है जिसके तहत सभी को ऋण की सुविधा दी जाती है लेकिन इससे जुड़ने वाला वास्तविक वर्ग वह है जिसे निन्जो (नो इनकम, नो जॉब) के नाम से जाना जाता है। सही अर्थों में अमरीका के मौजूदा आर्थिक संकट की शुरुआत हाउसिंग क्षेत्र से उठने वाले बुलबुले फटने का परिणाम है। क्योंकि इसके तहत जिस 'लो इनकम ग्रुप' (न्यून/न्यूनतम आयु समूह) के लोगों को कर्ज़ दिया गया था वह अंततः डिल्फाटर हो गए। उनके डिफाल्टर होने के कारण मार्गेज ऋण देने वाली संस्थाओं का भी दिवाला निकल गया।

पिछले कुछ वर्षों में सबसे बड़ी वॉल स्ट्रीट फर्में, दो सरकारी प्रकार की कंपनियों 'फेनी मे' और 'फ्रेडी मैक' की तुलना में बौनी हो गई थीं। मॉर्गेज और अन्य परिसंपत्तियों को मिलाकर इन दोनों की कुल संपत्ति (ग्रास वर्थ) पांच अरब डॉलर के करीब पहुंच गई थी, जो भारत के जीडीपी का पांच गुना है। इन दोनों कंपनियों के अंश धारक (शेयर होल्डर) थे फिर भी उनके पास सरकारी गारंटी थी जिसके चलते उन्हें अपने प्रतिद्वंद्वियों के मुक़ाबले कम दरों पर उधार मिल जाता था। इस सब्सिडी को यह कहकर उचित करार दिया गया कि सरकार सभी के लिये होम लोन की क़ीमत घटाने का प्रयास कर रही है। इन दोनों स्संथाओं ने पूरी बैंकिंग व्यवस्था द्वारा निर्मित किए गए मॉर्गेज को ख़रीद लिया। इससे बैंकों का ख़तरा कम हो गया जिससे उन्होंने होम लोन को खुले दिल से बांटना शुरू कर दिया। फेनी मे और फ्रेडी मैक इतनी मदमस्त रहीं कि उन्होंने तमाम विशेषज्ञों की उन चेतावनियों को दरकिनार कर दिया जो आने वाले संकट की सूचना दे रही थीं। लेकिन सरकार उत्साहित होकर इन कंपनियों के लिये सुविधाएं बढ़ाती जा रही थी। उसने सभी प्रथम मॉर्गेज पर और द्वितीय मॉर्गेज के पहले एक लाख डॉलर पर टैक्स रहित ब्याज की व्यवस्था कर दी। इसने अमरीकयों को किराए के घर लेने के बजाय अपना घर ख़रीदने के लिये उत्साहित किया। यही नहीं घर बेचने से हुए लाभ के पहले पांच लाख डॉलर पर 'कैपिटल गेन टैक्स' को समाप्त कर दिया गया। खास बात यह रही कि जब इस प्रकार के वित्त निर्मित करने या उसे प्रत्याभूत करने की बारी आई तो इन फर्मों ने मॉर्गेज को रखने की बजाय वॉल स्ट्रीट फर्मों को बेच दिया। प्रतिभूतिकरण जैसे-जैसे तेज़ी से बढ़ा, ग़रीबों को ज्यादा से ज्यादा 'सबप्राइम ऋण' देने के लिये बैंकों ने अपने उधार देने की शर्तों को आसान बना दिया। यहां तक कि ऋण देने से पहले उनकी उधार चुकाने की क्षमता को भी नहीं देखा गया। कई बैंकों ने तो कम अवधि के लिये कम ब्याज दरों पर 'टीजर लोन' की सुविधा भी शुरू कर दी। बाद में जब इनकी दरें बढ़ी तो लोग ठगा हुआ महसूस करने लगे।

सवाल यह उठता है कि आखिर वित्तीय संस्थाओं ने ऐसा क्यों किया? इसलिये कि सरकार का दबाव था या इसलिये कि उन्हें यह मालूम था कि लाभ पर उनका हक़ होगा और ख़तरा उन निवेशकों की तरफ स्थानांतरित हो जाएगा, जिन्होंने ऋण और 'मॉर्गेज बैक्ड सिक्यूरिटीज' को ख़रीदा था। यहां पर दूसरे विकल्प की संभावना अधिक लगती है। हां, इसके साथ यह माना जा सकता है कि राजनीति नेतृत्व इससे वाकिफ अवश्य था। क्योंकि वह स्वयं इनसे धन प्राप्त करने वाला (रेसिपियंट) रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि आम निवेशक की मौत का सामान वित्तीय कंपनियों ने ही किया था लेकिन उस ढांपने का कार्य राजनीति/सरकारी नीतियों ने किया।

सुधार के प्रयास, लेकिन ख़तरे का भविष्य?

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के प्रमुख डामिनिक स्ट्रॉस कान ने कहा कि वैश्विक वित्तीय संकट से निपटने के लिये कोष ने आपात सहायता प्रक्रिया को फिर से सक्रिय कर दिया है। आईएमएफ प्रमुख का कहना था कि उन्होंने यह कदम उस समस्या को देखते हुए उठाया है, जो कुछ उभतरे हुए देशों में पैदा हो सकती है। उनका मानना है कि 1930 के बाद का यह

सबसे बड़ा वित्तीय संकट है जो वैश्विक मंदी का रुख कर रहा है।

आईएमएफ के मुताबिक विश्व अर्थव्यवस्था विलक्षण वित्तीय झटके (एक्स्ट्राआर्डिनरी फाइनेंसियल शॉक) और ऊर्जा व वस्तुओं (कमोडिटी) की ऊंची क़ीमतों से प्रभावित है। बहुत-सी एडवांस अर्थव्यवस्थाएं या तो मंदी के दौर से गुज़र रही हैं या फिर उसके बहुत क़रीब हैं। वर्ल्ड इकोनॉमिक आउट लुक 2008 में उसने जिन तथ्यों का खुलासा किया है उससे यह स्पष्ट होता है कि संकट अभी जारी रहेगा। आईएमएफ के अनुसार, वार्षिक आधार पर वैश्विक आर्थिक संवृद्धि जो 2007 में 5.0 प्रतिशत है , वह 2008 और 2009 में क्रमश: 3.9 व 3.0 प्रतिशत ही रह जाएगी, और 3 प्रतिशत की वृद्धि दर उसके मुताबिक वैश्विक मंदी(सुस्ती) को प्रतिध्वनित करती है। आईएमएफ का मानना है कि उभरती अर्थव्यवस्थाएं भी इस संकट से बच नहीं पाएंगी। (देखें तालिका-1)।

तालिका-1
वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक

देश	वर्ष-दर-वर्ष स्थिति		
		अनुमान	
	2007	2008	2009
वर्ल्ड आउटपुट	5.0	3.9	3.0
विकसित (एडवांस) अर्थव्यवस्थाएं	2.6	1.5	0.5
संयुक्त राज्य अमरीका	2.0	1.6	0.1
यूरो क्षेत्र	2.6	1.3	0.2
जर्मनी	2.5	1.8	-
फ्रांस	2.2	0.8	0.2
इटली	1.5	-0.1	-0.2
स्पेन	3.7	1.4	-0.2
यूनाइटेड किंगडम	3.0	1.0	-0.1
कनाडा	2.7	0.7	1.2
जापान	2.1	0.7	0.5
उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाएं	8.0	6.9	6.1
विकासशील एशिया	10.0	8.4	7.7
चीन	11.9	9.7	9.3
भारत	9.3	7.9	6.9
पश्चिमी गोलार्द्ध	5.6	4.6	3.2
ब्राज़ील	5.4	5.2	3.5
मैक्सिको	3.2	2.1	1.8

स्रोत : वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक 2008 (आईएमएफ)

क्या पूंजीवाद फेल हो रहा है?

वित्तीय संकट के बढ़ते प्रभाव ने सबसे अधिक उन देशों की अर्थव्यवस्थाओं और उनके इंजन कहलाने वाले वित्तीय संस्थानों की हालत पतली की है जिन्होंने सोवियत साम्यवाद (साम्यवादी/समाजवादी अर्थव्यवस्था) के ध्वंस को एक इतिहास के अंत के रूप में प्रचार को प्रायोजित किया था और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को पूरी दुनिया के समक्ष विकल्पहीन नियति बनाकर पेश किया था। आखिर ये इंजन गरम होकर अपनी सांसे क्यों फुलाने लगे? यहां तक कि कुछ सांसे रुक जाने का ख़तरा भी पैदा हो गया। इस स्थिति से उबारने के लिये आखिर पूंजीवादी दुनिया ने आम आदमी के करों से निर्मित सरकारी ख़जाने से धन देना क्यों आरंभ किया? राजकीय पूंजी प्रदान करना या इन वित्तीय संस्थाओं में राज्य द्वारा अंशधारण करना समाजवाद का तो लक्षण है ही, क्या इसे पूंजीवाद की असफलता और समाजवादी की प्रासंगिकता के रूप में देखा जा सकता है?

अमरीका ने 7.00 अरब डॉलर के बेलआउट पैकेज़ के साथ-साथ तमाम अन्य छोटे पैकेज़ देकर इन वित्तीय संस्थानों में सांसें भरने की कोशिश की? इससे पहले ही अमरीका फेनी मे और फ्रेडी मैक को 200 अरब डॉलर की सहायता, अमरीकन इंटरनेशनल ग्रुप (एआईजी) को 85 करोड़ अनुशासनात्मक शर्तों पर कर्ज़ दिया। यूरोपियन सेंट्रल बैंक ने यूरो जोन के वित्तीय संस्थाओं हवा भरने के लिये 4.00 अरब यूरो (5.30 अरब डॉलर) की पैकेज़ की घोषणा की। उल्लेखनीय है कि यहां 703 बैंकों ने फंड के लिये सेंट्रल बैंक से अनुरोध किया था ताकि ऋण देने के लिये उनके पास रिज़र्व का निर्माण हो सके। डच सरकार ने आइएनजी में 13.4 अरब डॉलर की पूंजी डाली। सरकार आईएनजी में हिस्सेदारी लेगी। जर्मनी सरकार ने 500 अरब डॉलर के रेसक्यू प्लान के लिये मैनेजरों के वेतन पर लिमिट लगाने की शर्त रखी। स्विटजरलैंड ने अपने प्रमुख बैंकों को बचाने के लिये 60 करोड़ डॉलर राहत पैकेज़ की घोषणा की। सिंगापुर सरकार अपनी 1.02 अरब डॉलर की बैंक जमाओं की दो साल की गारंटी लेने की घोषणा कर चुका है।

अमरीका की स्थिति तो यह है कि बुश प्रशासन ने वैश्विक कर्ज़ संकट में नरमी लाने के लिये बैंकों में अरबों डॉलर डालने की योजना शुरू की लेकिन ऐसा लगता है तंगहाल शेयर बाज़ार को बहुत कम राहत मिली है। सिटी ग्रुप, जेपी मॉर्गन चेज और गोल्डमैन साक्स समेत नौ बड़े बैंकों ने नयी पूंजी के बदले में सरकार को हिस्सेदारी देगी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सरकार 1930 के बाद पहली बार बैंकों को आंशिक तौर राष्ट्रीयकरण कर रही है। अमरीकी सरकार के प्रयासों को देखकर किसी के भी मन में यह शंका पैदा हो सकती है कि आखिर पूंजीवाद के अगुआ देश राष्ट्रीयकरण की यह प्रक्रिया क्यों अपना रहे हैं? मुक्त बाज़ार और उन्मुक्त पूंजीवाद के ये पैरोकार, राज्यनियंत्रित पूंजी या राष्ट्रीयकरण का नाम सुनते ही बिदकते थे, लेकिन आज उसी राष्ट्रीयकरण को ऑक्सीजन के रूप में स्वीकार कर रहे है, क्यों? वह अमरीका जो दुनियाभर की अर्थव्यवस्थाओं को अंधाधुंध निजीकरण, उदारीकरण और सरकारी कंपनियों के विनिवेशीकरण की सलाह देता रहा, लेकिन अब जब अपने ऊपर वित्तीय विपदा की घड़ी आई तो वह अपना ही गढ़ा हुआ मंत्र क्यों भूल गया ? राष्ट्रपति बुश ने बड़ी चालाकी से इस कदम को एक व्यवहार्य एवं अल्पकालिक कदम कहकर अपने दंभ को शांत करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि अमरीकी सरकार के हस्तक्षेप का उद्देश्य मुक्त बाज़ार का अधिग्रहण करना नहीं बल्कि इसे बचाए रखना है। यह तर्क देना बुश प्रशासन की मज़बूरी है अन्यथा पूरी दुनिया का पूंजीवादी प्रतिष्ठानों पर से विश्वास उठने लगेगा। अगर ऐसा हुआ तो उनकी पूंजीवादी पैरोकारी और वर्चस्व दोनों ही ख़तरे में पड़ जाएंगे।

आर्थिक संकट और भारत

अमरीकी मंदी की मार से भारतीय अर्थव्यवस्था को महफूज बताने की कोशिश, में हमारे वित्तमंत्री पी. चिदंबरम ने कहा था कि हम पूरी तरह से सुरक्षित हैं। सबप्राइम से हमारे बैंकों का कोई रिश्ता नहीं है। हमारे वित्तीय तंत्र को अमरीकी वित्तीय संकट की आंच छू भी नहीं सकती। लेकिन दो सप्ताह में 1,45,000

करोड़ क्यों झोंक दिए गए। रिज़र्व बैंक ने अपने 73 साल के इतिहास में पहली बार सीआरआर में एक कटौती के प्रभावी होने से पहले ही दूसरी कटौती कर दी। केंद्रीय बैंक ने 2.5 प्रतिशत की सीआरआर में कटौती करने के बाद एकाएक रेपो में भी एक प्रतिशत की कटौती कर दी। उल्लेखनीय है कि रेपो वह दर है जिसमें रिज़र्व बैंक वाणिज्यक बैंकों को छोटी अवधि के लिये कर्ज़ देता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय बाज़ार का रुपया आखिर चला कहां गया? सितंबर माह की शुरुआत तक तो रिज़र्व बैंक बाज़ार से रुपया सोखने के लिये सीआरआर और रेपो दरों में बढ़ोतरी पर बढ़ोतरी किए जा रही थी। आखिर माह में ही रुपये की पाइपलाइन खाली कैसे हो गई या बाज़ार में तरलता का संकट क्यों आया? संभवत: बाज़ार में पैसे की कमी पहले से थी। मुद्रास्फीति के भय कारण रिज़र्व बैंक पिछले दो वर्षों से बाज़ार से तरलता खींचने की कवायदें जारी रखे था। तरलता बढ़ाने का केवल एक ही विकल्प खुला था, वह था रिज़र्व बैंक द्वारा डॉलर खरीदकर रुपये छोड़ने का (जिसके मकसद था डॉलर के मुक़ाबले रुपये की क़ीमत नियंत्रित रहे ताकि निर्यातकों को भारी नुकसान से बचाया जा सके)। लेकिन बाद में बांडों के जरिये यह तरलता भी सोख ली जाती थी। इसी कवायद के चलते मई में विदेशी मुद्रा भंडार 316 अरब डॉलर के रिकार्ड स्तर पर पहुंचा था। अब जब विदेशी संस्थागत निवेश की वापसी होने लगी और कर्ज़ की मांग बढ़ी, इस बीच बैंकों का ऋण जमा अनुपात 236 प्रतिशत की आश्चर्यजनक ऊंचाईं पर पहुंच गया। चूंकि शेयर बाज़ार गिर रहा था, विदेश से पैसा आने की सूरत नहीं थी, नतीजतन रिज़र्व बैंक ने 12 सितंबर के बीच बैंकों का ऋण जमा अनुपात 236 प्रतिशत की आश्चर्यजनक ऊचाईं पर पहुंच गया। इस दौरान शेयर बाज़ार गिर रहा था, विदेश से पैसा आने की सूरत नहीं थी, इसलिये उद्योग व निवेशकों ने बैंकों की शरण ली। नतीजतन रिज़र्व बैंक ने 12 सितंबर के बीच बैंकों का ऋण जमा अनुपात 236 प्रतिशत की आश्चर्यजनक ऊचाईं पर पहुंच गया। इस दौरान शेयर बाज़ार गिर रहा था, विदेश से पैसा आने की सूरत नहीं थी, इसलिये उद्योग व निवेशकों ने बैंकों की शरण ली। नतीजतन उद्यमी बैंकों की ओर कर्ज़ लेने को उन्मुख हुए और बैंकों के कर्ज़ व जमा का तालमेल बिगड़ गया। इसके बाद आया संकट का विस्फोटक बिंदु अर्थात बाज़ार टूटा तो म्यूचुअल फंड्स के पैर उखड़ने लगे। खासतौर पर तरल (लिक्विड) फंड्स के, जो मुद्रा बाज़ार से जुड़े छोटी अवधि के उपकरणों मसलन कामर्शियल पेपर आदि में पैसा लगाते हैं। बाज़ार में पैसे की तंगी देखकर निवेशकों ने इनसे अपना पैसा निकालना शुरू कर दिया, जबकि इनके पास पैसा आने का कोई रास्ता नहीं था। तरलता के संकट को देखकर बैंक एक दूसरे को कर्ज़ देने में हिचकने लगे जिससे संकट गहरा गया।

क्या भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार द्वारा किए जा रहे सुधार पर्याप्त हैं?

विश्व बैंक के ताज़ा अध्ययन में कहा गया है कि 2009-10 में दक्षिण एशिया में विकास दर में काफी गिरावट देखने को मिलेगी। खासकर पाकिस्तान और भारत पर इसका गहरा असर पड़ेगा क्योंकि ये दोनो देश पूंजी प्रवाह के जरिये दुनिया से जुड़े हुए हैं। अध्ययन मुताबिक पिछले पांच साल में विश्व स्तर पर तेल, धातु और खाद्य आदि आवश्यक वस्तुओं के दामों में काफी वृद्धि हुई जिसके चलते बजटीय घाटा बढ़ने के साथ-साथ व्यापार संतुलन बिगड़ गया। इससे विकास को नुकसान पहुंचा और महंगाई दो अंकों में पहुंच गई। विश्व बैंक का कहना है कि इन चुनौतियों से बुनियादी तौर पर मज़बूत अर्थव्यवस्था के जरिये ही निपटा जा सकता है। इसमें विदेशी ऋण प्रबंधन, उच्च जमा दर, मज़बूत वित्तीय क्षेत्र और अतिसक्रिय मौद्रिक नीति प्रबंधन शामिल हैं। अध्ययन में रिज़र्व बैंक के प्रयासों का उल्लेख किया गया है जिसके तहत वित्तीय क्षेत्र की तरलता को और विदेशी ऋण की सीमा को बढ़ाया गया। लेकिन उसकी नज़र में अभी भी वित्तीय संकट मौजूद है जिससे पूंजी प्रवाह के कम होने की आशंका बनी हुई है। सबसे ज्यादा ख़तरा विकास दर और नकद भुगतान के मोर्चे पर है।

इसमें शक नहीं है कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट आई है। यह कम से कम उस दौर और अधिक ख़तरनाक है जब मुद्रास्फीति बढ़ी हुई हो, वित्तीय घाटा ज्यादा हो। इसका तात्कालिक हल तो यही है कि तरलता का और बढ़ाया जाए यानी नकद आरक्षित अनुपात (सीआरआर) और रेपो दर में और कटौती की जाए (सीआरआर में कम से कम 2

(शेषांश पृष्ठ 77 पर)

विशेष

इस गहराते संकट से लोगों के रोज़गार छिनने की संभावनाएं बढ़ रही हैं। आईटी, इंजीनियरिंग, रिटेल, रीयल स्टेट और बैंकिंग में लाखों बड़े-छोटे रोज़गार के अवसर निर्मित हुए थे अब ये सभी क्षेत्र मंदी की मार झोल रहे है। आउटसोर्सिंग के क्षेत्र में नये आदेश न मिलने से बीपीओ पर ख़तरा मंडरा रहा है। आईटी में नयी भर्तियां रुकने लगी हैं और बैंक रिटेल बाज़ार से बच रहे हैं। रीयल एस्टेट की संवृद्धि गिर रही है जिसे भावी योजनाएं स्थगित करनी शुरू कर दी गई हैं।

- टाटा की छटनी ने देश की सबसे बड़ी वाहन निर्माता कंपनी टाटा मोटर्स ने भी अपने तीन सौ अस्थाई कर्मियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया। टाटा मोटर्स की ब्रिटेन स्थिति कंपनी जगुआर-लैंड रोवर ने भी कुछ दिनों पहले 200 कर्मचारियों को निकालने का एलान किया है।
- याहू और गूगल भी अपने कर्मचारियों की छंटनी का मन बना चुका है।
- वेबसाइट इबे ने अपने 1600 कर्मचारियों की छुट्टी कर दी है। गूगल ने अपने अनुबंध पर रखे गए कर्मचारियों की संख्या में धीरे-धीरे कटौती करनी आरंभ कर दी है।
- गहराते आर्थिक संकट के बीच ब्रिटेन के न्यायिक मंत्रालय ने करीब दस हज़ार नौकरियां समाप्त करने का निर्णय किया है। वहीं दुनिया की प्रमुख कोला कंपनी पेप्सिको भी 3,300 कर्मचारियों को बेरोज़गार करने जा रही है।
- भारत की विमान कंपनियां जेट और किंगफिशर कर्मचारियों की छटनी शुरू होने से विमान कंपनियां पहले ही कांप रही है। सरकारी विमान कंपनी एयर इंडिया ने भी 4,750 करोड़ के पैकेज़ की सरकार से मांग कर दी है। जेट विमान कंपनी की 1,100 लोगों को निकालने की संभावना है जबकि किंगफिशर पहले ही 300 लोगों को निकाल चुकी है।

विश्वव्यापी आर्थिक संकट में

भारतीय बैंकों की विश्वसनीयता

● ओ.पी. शर्मा

विश्वव्यापी आर्थिक संकट के दौर में एक से बढ़कर एक मज़बूत अर्थव्यवस्थाएं धराशायी हो गईं। ऐसे आर्थिक माहौल में भारत की अर्थव्यवस्था संभली हुई है। इस कारण आज दुनिया के देशों की निगाहें भारत की अर्थव्यवस्था पर टिकी हुई हैं। हाल ही में 15 नवंबर, 2008 को आर्थिक संकट पर वाशिंगटन में संपन्न हुई जी-20 देशों की बैठक में भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने विकासशील देशों की अगुवाई की। वैश्विक आर्थिक संकट से भारत के बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं होने के पीछे रहस्य है। गौरतलब है वैश्विक आर्थिक संकट का बड़ा कारण विकसित देशों की बैंकिंग और वित्तीय संस्थानों का दिवालिया हो जाना है। इस संदर्भ में भारत की अर्थव्यवस्था में सूक्ष्मता से झांकें तो यह बात स्पष्ट रूप से नज़र आती है कि भारत ने बैंकिंग व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखने के लिये सदैव ठोस कदम उठाए हैं। बैंकों की सुदृढ़ता की पुष्टि मौजूदा आर्थिक संकट में भारतीय बैंकों के सुरक्षित रहने से होती है। आर्थिक संकट में भारत की अर्थव्यवस्था के संभले रहने के पीछे देशवासियों का बड़ा योगदान है। भारत में लोगों की उपभोग और बचत प्रवृत्ति विकसित देशों की तुलना में अलग है। भारत में लोग विकसित देशों के विपरीत उपभोग के साथ बचत को महत्व देते हैं। अमरीका में बैंकों के दिवालिया होने से हालांकि अर्थव्यवस्था चौपट हो गई, किंतु वहां के लोगों को बैंकों में कम पैसे जमा होने के कारण अधिक झटका नहीं लगा। वहां की भांति अगर भारत में कोई बैंक दिवालिया हो जाए तो असंख्य लोग जीवनभर की गाढ़ी कमाई खो बैठें। भारत में बैंकों में आम लोगों की भारी जमाओं को देखते हुए केंद्र सरकार पर बैंकों को सुरक्षित बनाए रखने का बहुत बड़ा दायित्व है। भारत सरकार इस दायित्व को निभाने में हमेशा खरी उतरी है। यहां की सरकार ने बरसों पहले बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उनकी दिशा को आम लोगों के विकास के साथ जोड़ा था। आज भारत के बैंक कुल पूंजी, कुल एनपीए (नॉन परफॉर्मिंग एसेट्स), नकद जमा अनुपात (सीएआर), शुद्ध लाभ, परिसंपत्तियों पर रिटर्न, शेयर मूल्य आदि की दृष्टि से संतोषजनक स्थिति में हैं। हालांकि हाल ही के महीनों में आर्थिक संकट के कारण बैंकों की एनपीए और सीएआर दर बढ़ी है। ऐसोचैम ने सार्वजनिक क्षेत्र के 15 और निजी क्षेत्र के बैंकों के विश्लेषण के आधार पर तैयार रिपोर्ट में कहा कि जुलाई-सितंबर 2008 में इन बैंकों का एनपीए पिछले वर्ष की इसी समयावधि की तुलना में 24.36 प्रतिशत बढ़ा। इस दौरान बैंकों की सीएआर दर भी 2 प्रतिशत गिरी। इस बीच प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने पिछले दिनों (अक्तूबर 2008) संसद में आश्वासन दिया कि "हमारे बैंक, सार्वजनिक और निजी, दोनों वित्तीय तौर पर मज़बूत हैं। उनमें पर्याप्त पूंजी है। बैंक के नाकाम होने का कोई भय नहीं होना चाहिए। मैं हमारे बैंकों में जमा कराने वालों को आश्वस्त करना चाहता हूं कि उनकी जमा राशि पूरी तरह से सुरक्षित है।"

भारत में नब्बे के दशक से प्रारंभ हुए आर्थिक उदारीकरण में बैंकिंग क्षेत्र में खुलेपन की नीति को ज्यादा नहीं बढ़ाया गया। इसी कारण वैश्विक आर्थिक संकट की मार से भारत की अर्थव्यवस्था बची हुई है। आज भी भारतीय बैंकिंग व्यवस्था ज्यादातर सार्वजनिक क्षेत्र में है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में विनिवेश के जरिये केंद्र सरकार की हिस्सेदारी थोड़ी-बहुत अवश्य कम की गई है। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था की मज़बूती के पीछे एम. नरसिंहम की दूरदृष्टि का भी बड़ा हाथ है। उनकी सोच 'वित्त सही स्तर पर सही ढंग से संचालित हो' पर केंद्रित थी। भारत के रिज़र्व बैंक ने इस नीति पर चलते हुए 2008-09 में अर्थव्यवस्था में महंगाई और आर्थिक मंदी के बड़े झटकों में सीआरआर में नीतिगत परिवर्तन से तरलता के स्तर को अनुकूल बनाकर अर्थव्यवस्था को संकट में गहराने से बचाया।

सतर्क दृष्टि

भारत आर्थिक उदारीकरण के पथ पर बढ़ते समय सदैव सतर्क रहा है। इस बात की पुष्टि आज तक भी (दिसंबर 2008 तक) रुपये को पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय घोषित नहीं करने से होती है। स्पष्ट है भारत ने 1997 के 'एशियाई आर्थिक संकट' से बड़ी सीख ली है। इससे भारत को मौजूदा वैश्विक आर्थिक संकट से निपटने में कठिनाई नहीं आ रही है। भारत में

वैश्विक आर्थिक संकट का असर शेयर बाज़ार पर दिखा है। इसके लिये विदेशी निवेश विशेषकर एफआईआई जिम्मेदार है। सेबी ने शेयर बाज़ार पर नियंत्रण के लिये समय-समय पर पहल की है। पार्टिसिपेटरी नोट्स (पी-नोट्स) को शेयर बाज़ार पर नियंत्रण के लिये हथियार के रूप में प्रयुक्त किया है। शेयर बाज़ार के संबंध में योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलुवालिया ने कहा कि "भारतीय अर्थव्यवस्था खुली है। जब विश्व बाज़ार चढ़ता है तो उसका लाभ हमें भी मिलता है और जब गिरता है तो भी उसका असर पड़ता है। जहां तक इन जहरीले कागज़ों यानी शेयरों की बात है तो अर्थव्यवस्था में उनका हिस्सा न के बराबर है। भारत से विदेशी पूंजी वापस जा रही है। इससे 'फोरेक्स' पर असर पड़ेगा लेकिन हम उसे संभाल लेंगे। आर्थिक मंदी के कारण कच्चे तेल की क़ीमतें घटने के कारण फायदा भी हो रहा है।"

सर्वविदित है भारत में शेयर बाज़ारों को 2007-08 में ऐतिहासिक ऊंचाइयों पर ले जाने में विदेशी संस्थागत निवेशकों का बड़ा हाथ था। आज (सितंबर-अक्तूबर 2008) यह औंधे मुंह गिरा तो इसके पीछे भी उन्हीं का हाथ है। वर्ष 1997 के एशियाई आर्थिक संकट का एक बड़ा कारण संबंधित देशों से विदेशी निवेश की वापसी था। भारतीय शेयर बाज़ार से सितंबर 2008 तक एफआईआई ने 8.8 करोड़ डॉलर राशि निकाली थी। स्टॉक बाज़ार नियामक सेबी द्वारा किए गए एक आंतरिक विश्लेषण के अनुसार केवल एक सितंबर, 2008 से 23 अक्तूबर, 2008 के बीच 45 दिनों में विदेशी संस्थागत निवेशकों ने 18,800 करोड़ रुपये की शुद्ध बिकवाली की। शेयर बाज़ार से एफआईआई द्वारा धन निकासी के कारण सेंसेक्स जनवरी 2008 के स्तर से सितंबर 2008 में आधा रह गया है। यह तो अच्छा ही रहा कि भारत की अर्थव्यवस्था में एफडीआई प्रवाह अधिक नहीं है। भारत के पास कुल वैश्विक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) का मात्र 0.8 प्रतिशत ही है। इसके अलावा भारत में अल्पकालिक विदेशी निवेश ज्यादा नहीं है अन्यथा यही आर्थिक संकट अधिक ख़तरनाक सिद्ध होता।

आर्थिक संकट की घड़ी में भारत को परिसंपत्तियों की गिरती क़ीमतों पर नज़र रखनी चाहिए। परिसंपत्तियों की क़ीमतें ही उत्पादन और मांग बढ़ने की वजह होती हैं। रिज़र्व बैंक के तरकस में मौद्रिक उपायों के रूप में कई तीर हैं जिन्हें चलाकर वित्तीय संस्थाओं पर लगाम कसकर परिसंपत्तियों की क़ीमतें अनुकूलतम स्तर पर रखी जा सकती हैं। वर्तमान में अर्थव्यवस्था में मौद्रिक तरलता घट गई है। इसका असर आर्थिक विकास और शेयर बाज़ार पर पड़ा है। हालांकि भारत के रिज़र्व बैंक ने अर्थव्यवस्था को मौद्रिक तरलता संकट से बचाने के लिये बड़े कदम उठाए हैं।

रिज़र्व बैंक का हस्तक्षेप

उल्लेखनीय है कि भारत की अर्थव्यवस्था को अप्रैल-दिसंबर 2008-09 में दो बड़े आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। इस वर्ष की पहली दो तिमाही में महंगाई उफान पर थी तथा तीसरी तिमाही में विश्वव्यापी आर्थिक संकट अर्थव्यवस्था को घेरता दिखा। भारत के रिज़र्व बैंक ने महंगाई और विश्वव्यापी आर्थिक संकट दोनों पर काबू पाने के लिये मौद्रिक नीति को प्रमुख हथियार के रूप में काम में लिया है। रिज़र्व बैंक के पास मौद्रिक नीति में बैंक दर, सीआरआर, रेपो दर, रिवर्स रेपो दर, सांविधिक तरलता अनुपात (एसएलआर) आदि हथियार हैं जिनके माध्यम से अर्थव्यवस्था में मौद्रिक तरलता प्रभावित होती है। रिज़र्व बैंक ने महंगाई के उफान की स्थिति में सीआरआर को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था से भारी मौद्रिक तरलता को सोखा। इसके बाद जब अक्तूबर-नवंबर 2008 में मंदी ने अर्थव्यवस्था को घेरा तो रिज़र्व बैंक ने सीआरआर को घटाकर अर्थव्यवस्था में मौद्रिक तरलता को बढ़ाया।

भारत के रिज़र्व बैंक ने 29 अप्रैल, 2008 को मौद्रिक और ऋण नीति 2008-09 घोषित की। इसमें नकद आरक्षित अनुपात (सीआरआर) को 25 बेसिस अंक बढ़ाकर 8.25 प्रतिशत किया गया। इससे अर्थव्यवस्था में नौ हज़ार करोड़ रुपये संकुचित हुए। रिज़र्व बैंक ने सीआरआर में वृद्धि का कदम बढ़ती महंगाई को ध्यान में रखकर उठाया। महंगाई की दर 27 अक्तूबर, 2007 को केवल 2.97 प्रतिशत थी। इसके बाद महंगाई में उफान आता रहा। मौद्रिक नीति में रेपो दर, रिवर्स रेपो दर तथा बैंक दर में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। मौद्रिक नीति की घोषणा के समय 29 अप्रैल, 2008 का रेपो दर 7.5 प्रतिशत, रिवर्स रेपो दर 6 प्रतिशत, बैंक दर 6 प्रतिशत, सांविधिक तरलता अनुपात (एसएलआर) 25 प्रतिशत अपरिवर्तित रखे गए। मौद्रिक नीति में उठाए गए इन कदमों से महंगाई काबू में नहीं आई, यह 23 अगस्त, 2008 को 12.34 प्रतिशत के आंकड़े को छू गई तो रिज़र्व बैंक ने 29 जुलाई, 2008 को नयी मौद्रिक नीति 2008-09 की तिमाही समीक्षा में सीआरआर को बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया। यह वृद्धि 30 अगस्त 2008 से लागू हुई। नयी मौद्रिक नीति की पहली तिमाही समीक्षा में अन्य बड़ा कदम रेपो दर में 50 बेसिस अंक वृद्धि कर इसे 9 प्रतिशत करना था। इस प्रकार सीआरआर और रेपो दर दोनों 9 प्रतिशत पर पिछले सात वर्षों में सबसे अधिक थी। इन कदमों से बाज़ार से लगभग बीस हज़ार करोड़ रुपये सोख लिये जाने का अनुमान था।

रिज़र्व बैंक द्वारा सीआरआर और रेपो दर में वृद्धि से बढ़ती महंगाई को थामने में मदद मिली। हालांकि बाद के महीनों में मंदी और खनिज तेल की क़ीमतों के गिरने से भी महंगाई कम हुई। परंतु अर्थव्यवस्था में विश्वव्यापी मंदी जनित संकट नज़र आने लगा तो रिज़र्व बैंक ने एक बार फिर मौद्रिक नीति को आर्थिक संकट से निपटने के लिये प्रमुख हथियार के रूप में लिया। रिज़र्व बैंक ने सीआरआर में 6 अक्तूबर, 2008 को आधा प्रतिशत, 10 अक्तूबर, 2008 को एक प्रतिशत, 15 अक्तूबर, 2008 को एक प्रतिशत की बड़ी कटौती की। इसी प्रकार रेपो दर को 20 अक्तूबर, 2008 को एक प्रतिशत घटाकर 8 प्रतिशत किया गया। इन सबके बावजूद जब विश्वव्यापी मंदी का असर घटता नहीं दिखा तब रिज़र्व बैंक ने एक नवंबर, 2008 को फिर बड़े मौद्रिक उपायों का सहारा लिया। इस बार रिज़र्व बैंक ने सीआरआर में एक प्रतिशत, रेपो दर में आधा प्रतिशत, सांविधिक तरलता अनुपात (एसएलआर) में एक प्रतिशत की कटौती की। इस प्रकार एक नवंबर, 2008 को कटौती के बाद सीआरआर 5.5 प्रतिशत, रेपो दर 7.5 प्रतिशत तथा एसएलआर 24 प्रतिशत रह गया। वैश्विक आर्थिक मंदी के प्रभाव से देश की अर्थव्यवस्था को बचाने के लिये भारतीय रिज़र्व बैंक ने 6 दिसंबर, 2008 को फिर बड़े मौद्रिक उपायों की घोषणा की जिसके अंतर्गत रेपो दर एक प्रतिशत घटाकर 6.5 प्रतिशत की गई। रिवर्स रेपो दर एक प्रतिशत घटाकर 5 प्रतिशत की गई। सीआरआर अपरिवर्तित 5.5 प्रतिशत तथा एसएलआर अपरिवर्तित 24 प्रतिशत रखा गया है। रिज़र्व बैंक द्वारा उठाए गए इन मौद्रिक

कदमों से भारत की अर्थव्यवस्था को वैश्विक मंदी से निपटने में मदद मिलने की आशा है। रेपो दर घटाने के बाद सार्वजनिक और निजी बैंक भी ब्याज दर कम करेंगे। ऋणों के सस्ता होने से अर्थव्यवस्था में धन प्रवाह बढ़ेगा जो मंदी की घड़ी में अर्थव्यवस्था को संभाल लेगा।

रिज़र्व बैंक ने हाल ही में सीआरआर में चार बार कमी करके अर्थव्यवस्था में एक लाख चालीस हज़ार करोड़ रुपये की तरलता बढ़ाई। इससे अर्थव्यवस्था को तरलता संकट से निपटने में मदद तो मिली, किंतु कुछ सप्ताहों (सितंबर-अक्तूबर 2008) में महंगाई के घटने की जो प्रवृत्ति बनी थी वह 25 अक्तूबर, 2008 को महंगाई के फिर से बढ़कर 10.72 प्रतिशत हो जाने से खत्म हो गई। महंगाई पिछले सप्ताह 18 अक्तूबर, 2008 को 10.68 प्रतिशत थी। हालांकि महंगाई अब वैश्विक मंदी के ज्यादा गहराने और अन्य उपायों से एक नवंबर, 2008 को 9 प्रतिशत से नीचे तक गिर गई है।

मौद्रिक तरलता के मामले में रिज़र्व बैंक को सावधानी बरतनी होगी। यहां यह याद रखना ज़रूरी है कि सितंबर 2008 से पूर्व महंगाई सिरदर्द थी। आर्थिक विश्लेषकों के अनुसार 2009-10 में बढ़ती महंगाई विश्व के लिये चुनौती होगी। भारत को मौजूदा आर्थिक संकट से निपटने के साथ महंगाई पर भी बराबर नज़र रखनी होगी।

व्यावसायिक बैंकों के सामाजिक उत्तरदायित्व

भारत में बैंकों पर सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने का बड़ा बोझ है। अधिकांश बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में हैं, इस नाते उनका दायित्व और भी बढ़ जाता है। गौरतलब है कि भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गांवों में रहता है और जीवन बसर करने के लिये पूरी तरह खेत-खलिहानों पर निर्भर है। कृषि का बहुत अधिक महत्व होने के कारण इसे अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्ता के कारण ही केंद्र सरकार ने योजनाबद्ध विकास के प्रारंभ से ही कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकताओं में ऊपर रखा। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि और ग्रामीण विकास मद पर सार्वजनिक व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि की गई। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद ग्रामीणों की माली हालत को सुधारने का गुरुतर दायित्व सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को भी सौंपा गया। इस दायित्व को निभाने में बैंकों को सफलता भी मिली। भारत के आम किसानों को सेठ-साहूकारों के चंगुल से छुड़ाने में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज किसानों में बैंकों से कर्ज़ लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

कृषि क्षेत्र को समर्थन

इधर आर्थिक उदारीकरण के बाद विकास के मामले में कृषि जन्य क्षेत्रों जैसे उद्योग, सेवा क्षेत्र की तुलना में बहुत पिछड़ गई। आर्थिक उदारीकरण के दौर में कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक और निजी निवेश कम हुआ है। कृषि के पिछड़ने से किसानों की माली हालत भी दैनंदिन कमज़ोर होती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान एक बार फिर कर्ज़ के जाल में फंस गया। इस बार अंतर केवल इतना है पहले यह सेठ-साहूकारों का ऋणी था अब वह बैंकों का ऋणी है। अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका के कमज़ोर पड़ने से किसानों की आर्थिक हालत और दयनीय हुई। उनकी माली हालत को भांपकर केंद्र सरकार ने छोटे किसानों की ऋण माफी का ऐतिहासिक फ़ैसला किया। इस निर्णय से एकबारगी तो बैंकों की रीढ़ टूटती नज़र आने लगी, किंतु केंद्र सरकार ने बैंकों के लिये अलग से वित्तीय प्रावधान कर उन्हें संबल प्रदान किया।

इसके बावजूद कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक बैंकों के सामने अनेक समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। तत्कालीन वित्तमंत्री पी. चिदंबरम ने इस बात को स्वीकार किया है कि देश की 41 प्रतिशत आबादी के पास आज कोई बैंक खाता नहीं है और 81 प्रतिशत खाताधारकों को बैंकों तक पहुंचने के लिये दो किलोमीटर का रास्ता तय करना पड़ता है। देश में केवल 7 प्रतिशत गांवों में ही बैंकिंग सुविधाएं मुहैया हैं। देश में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आज भी 10 से 15 प्रतिशत लोगों को ही बैंकों से कर्ज़ मिल पाता है जिसकी वजह से उन्हें मज़बूरन सूदखोरों की शरण में जाना पड़ता है जहां उन्हें 35 से 40 प्रतिशत की महंगी दर पर कर्ज़ मिलता है और वे कर्ज़ के जाल में फंस जाते हैं। नेशनल सैंपल सर्वे के आंकड़े दर्शाते हैं कि वर्ष 2003 में राष्ट्रीय स्तर पर 48.6 प्रतिशत किसान कर्ज़दार थे। पंजाब में 65.4 प्रतिशत तथा हरियाणा में 53 प्रतिशत किसान कर्ज़दार पाए गए। आंध्र प्रदेश में 82 प्रतिशत खेतिहर परिवार कर्ज़दार थे। देश में कृषि जोत का घटता आकार चिंताप्रद हो गया है। वर्ष 1971 में औसत जोत का क्षेत्रफल 2.3 हेक्टेयर था जो 2001-02 में घटकर 1.3 प्रतिशत तथा वर्तमान में लगभग एक हेक्टेयर रह गया है। छोटी जोत में मुनाफ़ा कमाना कठिन होता है। इस कारण गांवों में पढ़े-लिखे युवाओं में खेती अनाकर्षक होती जा रही है। वे शहरों की ओर पलायन को आतुर हैं।

आर्थिक संकट के समय बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। नवंबर 2008 में रिज़र्व बैंक द्वारा मौद्रिक उपायों की घोषणा के बाद बैंकों ने ब्याज दरों में कमी की है। सबसे बड़े स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने 6 नवंबर, 2008 को पीएलआर में 75 बेसिस पॉइंट्स और जमा दरों में 50 बेसिस पॉइंट्स कमी की घोषणा की। घटी पीएलआर 10 नवंबर, 2008 तथा घटी जमा ब्याज दरें 1 दिसंबर, 2008 से लागू होंगी। अब स्टेट बैंक की पीएलआर 13.75 प्रतिशत से घटकर 13 प्रतिशत होगी। स्टेट बैंक की भांति अन्य सार्वजनिक बैंकों यथा - यूबीआई, पीएनबी, बीओबी आदि तथा निजी बैंक आईसीआईसीआई बैंक, आईडीबीआई बैंक ने भी ब्याज दरों में कमी की। ब्याज दरों के घटने से मौद्रिक तरलता संकट को कम करने में मदद मिलेगी। पीएलआर के कम होने से उद्योग जगत को घटी दरों पर ऋण मुहैया होगा जिससे औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिलेगी। ढांचागत क्षेत्र के प्रमुख उद्योगों की वृद्धिदर सितंबर 2008 में 5.1 प्रतिशत रह गई थी।

विश्व स्तर पर किए जा रहे समन्वित प्रयासों से अंततः आर्थिक संकट थमेगा ही, इतना ज़रूर है संकट के बड़ा होने के कारण इसके समाप्त होने में वक्त लगेगा। भारत आर्थिक संकट से ज्यादा प्रभावित नहीं है। जिन क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखने को मिला है वहां इसके गहराने से पहले ही भारतीय रिज़र्व बैंक, सेबी, योजना आयोग, वित्त मंत्रालय और अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह सचेत हैं और ये सभी आर्थिक संकट रूपी वार को रोकने के लिये ढाल की तरह नीति बनाकर भूमिका निभा रहे हैं। आशा है इन कदमों से आर्थिक संकट के बादल छंट जाएंगे, किंतु भारत के बैंकिंग तंत्र में नकली नोट, नकली चेक और डिमांड ड्राफ्ट के जरिये बैंकों से रुपये की हेराफेरी, बैंकों में धोखाधड़ी आदि घटनाएं कम चिंतनीय नहीं हैं। आम लोगों की बैंकों में विश्वसनीयता बढ़ाने के लिये इस तरह की घटनाओं को रोका जाना आवश्यक है। ❑

(लेखक आर्थिक प्रशासन तथा वित्तीय प्रबंध विभाग में व्याख्याता हैं।

ई.मेल : opsomdeep@yahoo.com)

पंचायत अध्यक्षों-प्रतिनिधियों का सम्मेलन

पिछले दिनों नई दिल्ली में इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ के तत्वाधान में देशभर के पंचायत प्रतिनिधियों का एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में नरेगा के विभिन्न पहलुओं पर गहन विचार-विमर्श के उपरांत पारित संकल्प का संपादित अंश यहां प्रस्तुत है। नरेगा ग़रीबी उन्मूलन के लिये चल रहे लोकतांत्रिक प्रयोगों में सबसे बड़ा प्रयोग है। एक अन्य बड़ा प्रयोग पंचायतीराज के माध्यम से लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण है। वास्तव में यदि नरेगा का कार्यान्वयन लोकतांत्रिक तथा विकेंद्रीकृत तरीक़े से किया जाए तो ये दोनों एक-दूसरे को ज्यादा सुदृढ़ तथा प्रभावी बनाएंगे। इस अधिनियम के अंतर्गत यह स्पष्ट है कि पंचायतें ही इसकी मुख्य कार्यान्वयन निकाय होंगी। पंचायतों और ग्राम सभाओं को इससे संबंधित बहुत से अधिकार भी मिले हैं, परंतु केंद्र और राज्य सरकारों ने पंचायतों को राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना को श्रेष्ठ तरीक़े से कार्यान्वित करने में सक्षम बनाने की ओर कोई ठोस कदम नहीं उठाए हैं।

नरेगा की सफलता के अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं और इसका श्रेय पंचायतों को जाता है, परंतु क्या इन सबसे स्थानीय स्वशासन संस्थाएं वास्तव में सशक्त हुई हैं? कई जगहों पर कार्यान्वयन की प्रक्रिया में पंचायतों को हाशिये पर ढकेल दिया गया है। उनका नरेगा की पूरी प्रक्रिया के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं होता है। तथापि, जब विफलताओं को गिनने की बारी आती है, तो सारा दोष पंचायतों पर आ जाता है।

एकत्रित पंचायत अध्यक्ष तथा निर्वाचित सदस्यों ने यह स्वीकार किया कि पंचायतें कोई आदर्श का केंद्र नहीं हैं। इनमें भ्रष्टाचार भी व्याप्त होते हैं। निश्चित रूप से, इस समस्या का कुछ श्रेय समस्त राज्यों तथा पूरे देश में चल रहे लोकाचार को भी जाता है। परंतु इस समस्या का निराकरण पंचायतों को ज्यादा अधिकार तथा जिम्मेदारियां सौंप कर ही हो सकता है। संकल्प में कहा गया है कि पंचायतकर्मी ग़रीबी उन्मूलन तथा विकास की प्रक्रिया में नरेगा की भूमिका के महत्व को समझते हैं और इस दिशा में ऐतिहासिक भूमिका अदा करने के लिये प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने घोषणा की :

- राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम को पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से लागू करने की ज़रूरत है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य के अधिकार को जीविका के अधिकार के रूप में मान्यता देनी होगी तथा इसका परिचालन पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से करना होगा।
- राज्यों को यह सुनिश्चित करना होगा कि नरेगा का कोष राज्य द्वारा किसी और उद्देश्य के लिये इस्तेमाल न किया जाए।
- नरेगा के अंतर्गत कार्यों के कार्यान्वयन की योजना पंचायतों द्वारा हो तथा ग्राम सभा से अनुमोदित पंचायत स्तरीय विकास योजना के अनुसार हो।
- नरेगा का कोष पंचायत के बैंक खातों (जीरो-बैलेंस खाता) में स्थानांतरित होना चाहिए।
- यद्यपि, अधिनियम के अनुसार नरेगा कोष के 50 प्रतिशत का उपयोग ग्राम पंचायतों के माध्यम से होता है, किंतु यह भी निर्धारित किया जाना चाहिए कि शेष कोष का इस्तेमाल जिला स्तरीय परिप्रेक्ष्य योजना के अनुसार मध्यवर्ती तथा जिला पंचायतों के समन्वयन से हो।
- नरेगा जिला स्तरीय परिप्रेक्ष्य योजना जिला नियोजन समिति द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए।
- पंचायतों को यह निर्देश दिया जाना चाहिए कि नरेगा के तहत स्त्री तथा पुरुषों के बीच 'समान काम के लिये समान वेतन' सिद्धांत का पालन हो।
- मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों के मद्देनज़र न्यूनतम मज़दूरी में वृद्धि होनी चाहिए।
- न्यूनतम मज़दूरी एक ही राज्य में अलग-अलग जगहों पर भिन्न-भिन्न होती है। जिला नियोजन समिति द्वारा पंचायतों की सलाह से मज़दूरी प्रस्तावित की जानी चाहिए।
- पंचायतों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि नरेगा के अंतर्गत जारी जॉब कार्ड का स्तर मतदाता पहचानपत्र अथवा पासपोर्ट के समतुल्य हो।
- नरेगा के हर आयाम के वार्षिक निरीक्षण के लिये हर राज्य द्वारा अलग से एक नरेगा आयुक्त नियुक्त किया जाना चाहिए। उसे जिला पंचायत अध्यक्ष तथा जिला पंचायत के नेतृत्व में कार्य करना होगा। उसे जिला स्तरीय रिपोर्ट जिला पंचायत के समक्ष तथा राज्यस्तरीय रिपोर्ट राज्य विधायिका के समक्ष रखना होगा।
- जिस तरह नरेगा के अनुपालन के आधार पर जिलों का श्रेणीक्रम है, उसी प्रकार जिला तथा ग्राम पंचायतों का भी श्रेणी क्रम होना चाहिए।
- नरेगा के विभिन्न आयामों पर पंचायत अध्यक्षों तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए; यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इसके लिये बजट का कुछ प्रतिशत इस्तेमाल हो।
- पंचायतें ग्राम सभाओं की नियमित तथा प्रभावी बैठकें सुनिश्चित करेंगी जिससे भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया जा सके। यह प्रक्रिया ऐसे आरोपों को समाप्त करेगी जो देश में नरेगा तथा पंचायतों की छवि को धूमिल करते हैं।
- बढ़ी हुई जिम्मेदारियों के मद्देनज़र पंचायत अध्यक्षों तथा पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों को उचित मानदेय मिलना चाहिए।

नरेगा के कार्यान्वयन को देखते हुए स्वीकार किया गया कि नरेगा ग्रामीण जनसंख्या के विकास तथा वृद्धि का एक महत्वपूर्ण औज़ार है। भारत के विभिन्न राज्यों से आए पंचायत अध्यक्ष तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने नरेगा तथा पंचायतों पर आयोजित इस राष्ट्रीय सम्मेलन में संकल्प लेते हुए कहा कि सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये साफ़, प्रभावी तथा जन-अभिमुख नरेगा के लिये कार्य करेंगे। ❑

एक अंतरिक्ष यान की अनंत यात्रा

● शैलेंद्र मोहन कुमार

इकतीस वर्ष पहले अमरीका ने वॉयजर 1 नामक अंतरिक्ष यान छोड़ा था। केप केनाभेराल से छोड़े गए एक टन के इस अंतरिक्ष यान का लक्ष्य था सौरमंडल के दो बड़े ग्रहों बृहस्पति और शनि की टोह लेना। अपने उद्देश्य में सफल होने के लिये वॉयजर को पांच वर्षों तक अंतरिक्ष की शून्यता (खाली स्थान) में सुरक्षित रहना आवश्यक था, जहां इसे हर पल ब्रह्मांड किरणों, धधकते सूर्य, टकराती चट्टानों, असंख्य ग्रहिकाओं से उत्पन्न भयंकर रेतीली तूफानों और बृहस्पति के शक्तिशाली विकिरण का सामना करना था।

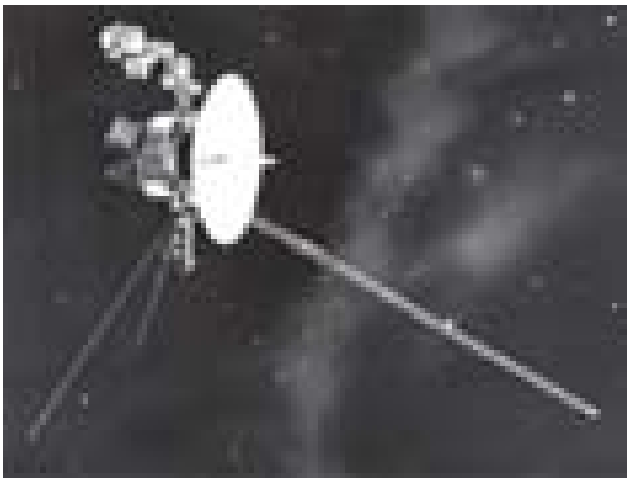

वॉयजर ने इन सभी चुनौतियों को झेलते हुए पृथ्वी पर बृहस्पति के उपग्रह आत्रो पर सतत धधकते ज्वालामुखी पर्वतों की जानकारियां और उनके छायाचित्र प्रेषित किए। साथ ही इसमें बृहस्पति के दूसरे प्रमुख उपग्रह यूरोपा के झिलमिलाते, नीले बर्फ़ की सतह के बारे में भी हमें प्रामाणिक जानकारी दी जिसके नीचे संभवत: एक तरल महासागर है। इसने पहली बार शनि ग्रह के असंख्य वलयों अथवा अंगूठियों के साथ-साथ नारंगी रंग के उसके उपग्रह टाइटन के अंधकारमय रहस्यों से भी पर्दा उठाया जिसके धुंधले अविष्टन के बारे में कहा जाता है कि यह प्रारंभिक अवस्था में पृथ्वी के वायुमंडल जैसा ही है।

अपने लक्ष्य को पूरा कर लेने के बाद वॉयजर 1 को शांत हो जाना चाहिए था। लेकिन यह आज भी सक्रिय है। सुदूर अंतरिक्ष में 14 अरब मील दूर से प्रेषित इसके संकेत अभी भी मिल रहे हैं। यह कितनी दूर चला गया है इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि प्रकाश की गति से आने वाले इसके संकेतों को पृथ्वी तक पहुंचने में 14 घंटे लग जाते हैं। इस समय वॉयजर 1 जहां से गुजर रहा है, वहां से सूर्य मृग नक्षत्र में एक टिमटिमाते तारे जैसा दिखाई देता है और सौरमंडल का कोई भी ग्रह वहां से नहीं दिखता।

वॉयजर 1 सौरमंडल के अंतिम छोर को पार कर ब्रह्मांड में आगे बढ़ता जा रहा है। सब कुछ ठीक रहा तो 2015 के आस-पास यह सदा के लिये तारों की दुनिया में विचरण करने चला जाएगा।

अंतरिक्ष यात्रियों कार्ल सेगान और फ्रेंक ड्रेक के आग्रह पर अमरीकी अंतरिक्ष संगठन नासा ने सोने की पट्टी पर एक ध्वनि लेख इस यान में रख दिया था। इसमें अनेक चित्र, पृथ्वी की प्राकृतिक ध्वनियां और दुनिया के हर कोने से एकत्र किए गए संगीत की बानगी समाहित की गई थी। इस फोनोग्राफ का उद्देश्य था मानव संस्कृति की कुछ प्रमुख चीज़ों को चिरकाल तक सुरक्षित रखना ताकि यदि वॉयजर 1 अंतरिक्ष यान का सामना भविष्य में कभी किसी अति बुद्धिमान जीवन से हो जाए, तो इसे देखते ही वह समझ जाए कि यह क्या है। वॉयजर 1 में रखे गए अभिलेख में जो सूचनाएं दर्ज हैं, उनके कम से कम 100 करोड़ वर्ष तक सुरक्षित रहने की संभावना है। यह एक बहुत लंबा काल है। आपको याद दिला दें कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति लगभग सौ करोड़ वर्ष पहले आरंभ हुई थी। वॉयजर 1 अंतरिक्ष यान 38 हज़ार मील प्रति घंटे की गति से अज्ञात ब्रह्मांड में उड़ता चला जा रहा है। सौरमंडल से निकलने के बाद किसी तारे के निकट पहुंचने में इसे 40 हज़ार वर्ष लग जाएंगे। इसके समकालीन वॉयजर 2 अंतरिक्ष यान, जिसे यूरेनस और नेपच्यून ग्रहों की टोह लेने के लिये छोड़ा गया था, अब सौरमंडल से निकलकर अन्य दिशा से सिरियस नामक चमकते तारे की ओर बढ़ रहा है। इसे वहां पहुंचने में 3 लाख 58 हज़ार वर्ष लगेंगे।

तारों की दुनिया में दोनों वॉयजर अंतरिक्ष यानों का एक अरब वर्षों का भविष्य संभवत: हमें अपनी हीनता का बोध कराए। इतिहास के जिस काल खंड में हम रह रहे हैं वह भी हमें नगण्य लगे। तथापि इन दोनों अंतरिक्ष यानों का अस्तित्व और स्वर्ण पत्रों पर उनमें विद्यमान पृथ्वी के कुछ चुने हुए चिह्न मनुष्य का जीवन दर्शाते हैं। यही वह शक्ति है जो उसे अंतरिक्ष और समय की सीमाओं से ऊपर ले जाती है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

ख़बरों में

● **छह राज्यों में विधानसभा चुनाव संपन्न**

पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस भाजपा पर भारी पड़ी है। कांग्रेस ने जहां दिल्ली में लगातार तीसरी बार जीत हासिल करते हुए हैट्रिक बनाई और मिज़ोरम में दो तिहाई बहुमत हासिल कर धमाकेदार वापसी की, वहीं राजस्थान में भी पांच साल बाद फिर से सत्ता हासिल कर ली। भाजपा पार्टी मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ में अपने को बचाए रखने में ही कामयाब हो पाई है। खास बात यह है कि इन दोनों राज्यों में इसके वोटों का प्रतिशत गिरा है और पिछली बार के मुक़ाबले मध्य प्रदेश में सीटें भी कम हुईं हैं। हालांकि छत्तीसगढ़ में भाजपा को पिछली बार भी 50 सीटें मिली थीं और इस बार भी 50 सीटें हासिल कर पार्टी ने फिर से सरकार बनाने के लिये बहुमत हासिल कर लिया है।

● **पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह का निधन**

पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह का गत माह निधन हो गया। वे लंबे समय से रक्त कैंसर से जूझ रहे थे। उन्होंने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू कर सोशल इंजीनियरिंग के जरिये देश का राजनीतिक परिदृश्य बदल दिया।

राजा मांडा के नाम से जाने जाने वाले वी.पी. सिंह 77 वर्ष के थे और पिछले सत्रह सालों से रक्त कैंसर से जूझ रहे थे। उनके गुर्दे ख़राब हो चुके थे और वे अर्से से डायलिसिस पर चल रहे थे।

विश्वनाथ प्रताप सिंह को भारतीय राजनीति में उनकी उल्लेखनीय भूमिका के लिये याद किया जाएगा। उसूलों और सिद्धांतों के लिये वह सत्ता से टकराने में भी कभी नहीं हिचके। उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने के लिये जनमोर्चा का गठन किया। भ्रष्टाचार को चुनावी मुद्दा बनाते हुए उन्होंने भाजपा व वामपंथियों के सहयोग से गैरकांग्रेसी सरकार बनाई।

वी.पी. सिंह ने देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के दौर में राजनीति में प्रवेश किया। केंद्रीय राजनीति में आने से पहले वे उत्तर प्रदेश की राजनीति से जुड़े थे।

केंद्र की राजनीति में भी वे हमेशा सुर्खियों में रहे। इलाहाबाद और पुणे विश्वविद्यालय से पढ़ाई करने वाले वी.पी. सिंह 1969 में पहली बार उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिये निर्वाचित हुए। 1971 में वे पहली बार संसद पहुंचे और श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार में वाणिज्य मंत्री बने। वे दलितों के मसीहा के रूप में चर्चित रहे। बीमारी के कारण उन्हें पांच साल तक सार्वजनिक जीवन से दूर रहना पड़ा। लेकिन वापस लौटने के बाद वे फिर उतने ही जोशोखरोश से दलितों व वंचितों के हक़ की लड़ाई लड़ते रहे। सुलझे हुए नेता होने के साथ ही वह एक कलाकार और कला पारखी भी थे। कविता और चित्रकारी उनकी प्रिय विधाएं थीं।

● **मैरी कॉम विश्व चैंपियन**

भारत की एमसी मैरी कॉम ने पांचवीं एआईबीए विश्व मुक्केबाजी चैंपियनशिप में लगातार चौथी बार ख़िताब जीता। मैरीकाम ने 46 किग्रा वर्ग में रोमानिया की स्टेलुटा हुटा को आसानी से 7-1 से हरा दिया। भारत की एन. उषा ने 57 किग्रा वर्ग में रजत पदक जीता। उन्हें फाइनल में चीन की किन चिया ने मात दी। छोटो लाउरा को 50 किग्रा और एल. सरिता देवी को 52 किग्रा वर्ग के क्वार्टर फाइनल में पराजय मिली।

एमसी मैरी कॉम ने कहा कि मात्र चार महीने के अभ्यास की वजह से इस बार उन्हें विश्व चैंपियनशिप ख़िताब जीतने की उम्मीद नहीं थी। मैरी कॉम लगातार चौथी बार विश्व खिताब जीतकर सबसे सफल महिला मुक्केबाज बन गई हैं। मैरी कॉम ने कहा - "मैं अपनी इस सफलता के लिये भगवान तथा अपने पति की शुक्रगुजार हूं। अपने जुड़वां बच्चों के जन्म के बाद मैं दो वर्षों से मुक्केबाजी रिंग से दूर थी और सिर्फ़ चार महीने पहले ही अभ्यास शुरू कर पाई थी। इस वजह से मुझे इस बार पदक की उम्मीद नहीं थी।"

25 वर्षीय मणिपुरी खिलाड़ी ने इस जीत को अपने बच्चों को समर्पित किया। मैरी कॉम ने कहा - "उन्हें घर पर छोड़कर आना बेहद मुश्किलभरा कार्य है। वे अभी बोल तो नहीं पाते हैं, लेकिन मैं जानती हूं कि वे सोचते होंगे कि मम्मी कहां जा रही है।"

उपलब्धियां गवाह है प्रदर्शन की

- 2003 में एशियन महिला चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।
- 2001 में एआईबीए विश्व महिला बॉक्सिंग चैंपियनशिप में रजत पदक।
- तुर्की में 2002 में दूसरे एआईबीए विश्व महिला वरिष्ठ बॉक्सिंग चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।
- वर्ष 2003 में अर्जुन अवॉर्ड जीतने वाली पहली महिला खिलाड़ी।
- नार्वे के टांसवर्ग में महिला विश्व बॉक्सिंग टूर्नामेंट में स्वर्ण पदक।
- ताईवान में 2004 में एशियन महिला बॉक्सिंग चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।
- 2005 में एआईबीए महिला विश्व चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।
- 2006 में एआईबीए विश्व चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।
- 2008 में चीन में विश्व चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक।

● **इंदिरा गोस्वामी को हॉलैंड का प्रतिष्ठित पुरस्कार**

इंदिरा गोस्वामी को भारतीय संस्कृति और इसके विकास के लिये काम करने को लेकर हॉलैंड के प्रतिष्ठित 'प्रिंसिपल प्रिंस क्लाज' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। ज्ञानपीठ पुरस्कार (2000) की विजेता इंदिरा गोस्वामी पहली भारतीय हैं जिन्हें एक लाख यूरो (क़रीब 64 लाख रुपये) का यह पुरस्कार मिला है। इंदिरा असम के कामरूप जिले के अपने पैतृक गांव में एक अस्पताल बनवाना चाहती हैं।

उन्होंने कहा कि यह एक बड़ा सम्मान है। इस पुरस्कार राशि के साथ अंततः मेरा सपना पूरा हो जाएगा। उन्होंने पुरस्कार राशि को मिर्जा के अमरंगा गांव के एक अस्पताल को दान में देने का फ़ैसला किया है। इंदिरा ने कहा कि अस्पताल नेमकेयर समूह के कल्याण परियोजना के तहत काम करेगा। मेरे पिता की इच्छा थी कि अमरंगा में एक अच्छा अस्पताल हो लेकिन पैसे की कमी के कारण यह सपना ही रह गया था। ❑

रूस और फ्रांस से यूरेनियम समझौता

परमाणु संयंत्र से ईंधन की किल्लत दूर होगी

एनएसजी से बंदिशें हटने के बाद भारत को इसका तात्कालिक लाभ मिलने लगा है। परमाणु बिजलीघरों को चलाने वाले यूरेनियम ईंधन की कमी अब जल्द ही दूर होगी। इसके लिये भारत ने रूस और फ्रांस से यूरेनियम के आयात का समझौता कर लिया है।

1,000 मेगावॉट बिजली और होगी पैदा

भारत में यूरेनियम का जरूरी भंडार नहीं है और मौजूदा परमाणु बिजलीघरों की ज़रूरत के अनुरूप यूरेनियम उत्पादन नहीं हो रहा है इसलिये पिछले कुछ सालों से ये परमाणुघर क्षमता से आधी बिजली पैदा कर रहे थे। लेकिन अब इन बिजलीघरों को यूरेनियम की आपूर्ति जल्द ही शुरू होगी, जिससे 1,000 मेगावॉट अतिरिक्त बिजली पैदा की जा सकेगी।

रूस से 2,000 टन यूरेनियम

विश्वस्त सूत्रों ने बताया कि भारत ने रूस से 2,000 टन यूरेनियम आयात का पांच साल का समझौता किया है, जबकि फ्रांस की अरेवा कंपनी 300 टन यूरेनियम का निर्यात करेगी। रूस के राष्ट्रपति दिमित्री मेदवेदेव के भारत दौरे के बाद रूस से 70 करोड़ डॉलर (32,000 करोड़ रुपये) के यूरेनियम आयात का समझौता हुआ है।

तारापुर संयंत्र को भी फायदा

यह यूरेनियम न केवल भारत द्वारा बनाए गए परमाणु बिजलीघरों को भेजा जाएगा, बल्कि 60 के दशक में अमरीका द्वारा बनाए गए तारापुर परमाणु बिजली घर के भी काम आएगा। कुडनकुलम में रूस द्वारा बनाए जा रहे दो परमाणु रिएक्टरों के लिये यूरेनियम की सप्लाई का समझौता अलग से हो चुका है। रूस के साथ कुडनकुलम में 1,000 मेगावॉट के दो और रिएक्टर लगाने पर सहमति हो चुकी है और चार अन्य के लिये बातचीत शुरू कर दी गई है। फ्रांस की अरेवा कंपनी से भी परमाणु रिएक्टर लगाने पर बातचीत प्रगति पर है। रूस से यह समझौता तीन तरह के यूरेनियम ईंधन के लिये किया गया है। इसमें तारापुर के लिये संवर्धित यूरेनियम की आपूर्ति भी शामिल है। अमरीका ने दो दशक पहले ही तारापुर के लिये यूरेनियम की आपूर्ति रोक दी थी।

कज़ाकिस्तान से भी करार

रूस और फ्रांस के बाद मध्य एशियाई देश कज़ाकिस्तान भी भारत के लिये यूरेनियम आयात का एक बड़ा स्रोत बनेगा। कज़ाकिस्तान के राष्ट्रपति नुरसुल्तान नजरबायेव जब इसी महीने गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारत आएंगे, तब कजाकिस्तान के साथ भी यूरेनियम आयात का समझौता किया जाएगा। भारत कज़ाकिस्तान में यूरेनियम ईंधन के खनन और उत्पादन का भी एक समझौता करने पर बातचीत कर रहा है। भारत में भी यूरेनियम के नये स्रोत मिले हैं लेकिन यूरेनियम खनन के ख़िलाफ़ भारत में चलने वाले घरेलू आंदोलनों के मद्देनज़र इनका दोहन नहीं हो पा रहा है। मेघालय, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में यूरेनियम के नये खदान मिले हैं और इन राज्यों में खनन का काम शुरू करने की कोशिश की जा रही है।

नये प्लांटों की योजना पर ध्यान

भारत में फिलहाल 17 परमाणु बिजलीघर चल रहे हैं जिनकी उत्पादन क्षमता 4,120 मेगावाट है। भविष्य में नये परमाणु बिजलीघरों के निर्माण की योजनाओं को देखते हुए भारत को यूरेनियम ईंधन का आयात सुनिश्चित करना होगा। एनएसजी ने पिछले अक्तूबर में ही भारत पर से सभी प्रकार के परमाणु साजो-सामान और ईंधन के निर्यात की बंदिशें हटाईं थीं। इसके बाद अमरीका सहित कई देशों ने भारत में परमाणु रिएक्टर लगाने की पेशकश की है। ❑

कुंवर नारायण को ज्ञानपीठ पुरस्कार

वर्ष 2005 का ज्ञानपीठ पुरस्कार हिंदी के प्रसिद्ध कवि कुंवर नारायण को दिया जाएगा। ज्ञानपीठ चयन समिति ने गत माह हुई बैठक में वर्ष 2005 और 2006 के ज्ञानपीठ पुरस्कारों की घोषणा की। 2006 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिये कोंकणी के वरिष्ठ लेखक रवींद्र केलकर और संस्कृत के विद्वान सत्यव्रत शास्त्री को संयुक्त रूप से चुना गया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के एक बयान के मुताबिक यह निर्णय उड़िया साहित्यकार सीताकांत महापात्र की अध्यक्षता में हुई ज्ञानपीठ चयन समिति की बैठक में लिया गया। बैठक में प्रो. मैंनेजर पांडेय, के. सच्चिदानंदन, दिनेश मिश्र, प्रो. गोपीचंद नारंग, विभूति नारायण राय, केशुभाई देसाई और रवींद्र कालिया उपस्थित थे।

हिंदी कविता के शलाका पुरुष कुंवर नारायण का जन्म 1927 में उत्तर प्रदेश में हुआ। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एमए किया। लखनऊ आने से पहले उन्होंने अपना शुरुआती समय अयोध्या और फैजाबाद में बिताया। लखनऊ में तक़रीबन पांच दशक रहने के बाद अब वे दिल्ली में रहते हैं। कविता आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर कुंवर नारायण अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' (1959) के प्रमुख कवियों में रहे हैं।

कुंवर नारायण ने लेखन की शुरुआत 1950 में काव्य लेखन से की। साथ ही वह चिंतनपरक लेख, साहित्य समीक्षा, कहानियां, सिनेमा और अन्य कलाओं पर भी लेखन करते रहे हैं। कुंवर नारायण का पहला काव्य संग्रह *चक्रव्यूह* 1956 में प्रकाशित हुआ। उनकी दूसरी कृतियों में *परिवेश: हम तुम, अपने सामने, कोई दूसरा नहीं* और *इन दिनों* (काव्य संग्रह), *आत्मजयी* (प्रबंध काव्य), *आकारों के आसपास* (कहानी संग्रह), *आज और आज से पहले* (समीक्षा) और *मेरे साक्षात्कार* शामिल हैं। उनकी कई कविताएं और कहानियां भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

कुंवर नारायण ने अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के प्रिज़्म के मार्फ़त वर्तमान को देखा-परखा है। उन्हें साहित्य अकादेमी के अलावा व्यास सम्मान, शलाका सम्मान, हिंदी संस्थान का विशेष सम्मान, प्रेमचंद पुरस्कार, राष्ट्रीय कबीर सम्मान सहित कई पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। उन्होंने कई देशों की यात्राएं की है और वहां काव्य-पाठ करने के साथ ही साहित्य गोष्ठियों और अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में शिरकत की है। ❑

सामाजिक-सांस्कृतिक जागृति के अग्रदूत

● प्रतिभा

मनुष्य की असीम क्षमताओं में भारतीय मनीषा का अगाध विश्वास अनादि काल से चला आ रहा है। उसकी दृष्टि में 'देवत्व' और कुछ नहीं, बल्कि मानवीय विशिष्टताओं का अति विशेषीकरण ही है। समय-समय पर भारतीय धरा ने कुछ ऐसे मनुष्यों को जन्म दिया है, जिनके अतिमानवी क्रियाकिलापों ने उन्हें 'देवता' की कोटि में ला खड़ा किया है। इन्हीं में अन्यतम हैं- स्वामी विवेकानंद मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति और राजनय के उत्थान के लिये जितने काम किए, उनको किसी सीमा में बांध कर प्रस्तुत कर पाना अत्यंत कठिन है।

विवेकानंद ने विभिन्न सामाजिक विषयों पर मात्र सैद्धांतिक मत ही व्यक्त नहीं किया, अपितु उसे व्यवहार का जामा पहनाने के लिये सदैव उद्यत भी रहे। उदाहरण के तौर पर भारतीय स्त्री की तत्कालीन दशा से स्वामी जी असंतुष्ट नज़र आते थे। वे कहते थे- "भारत की उन्नति हेतु स्त्रियों की उन्नति आवश्यक है।" कोई भी पक्षी मात्र एक पंख की सहायता से उड़ नहीं सकता। स्त्रियों की दशा में सुधार उनमें शिक्षा के बिना संभव नहीं है और यह शिक्षा कैसी हो, इस पर उनका का मत था कि "स्त्रियों को पुराण, शिल्प आदि की शिक्षा वर्तमान विज्ञान की सहायता से दी जानी चाहिए। यह कहना कि स्त्री प्रकृति से ही दुर्बल है, ठीक नहीं है, क्योंकि वैदिक युग में और उपनिषद युग में अपाला, गार्गी, घोघा जैसी अनेक स्त्रियां ब्रह्मविद्या में श्रेष्ठ स्तर पर पहुंची।" मनु का यह वाक्य ही उनका आदर्श-वाक्य हुआ करता था:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया।।

चूंकि विवेकानंद आत्मा की एकता में विश्वास करते थे, अत: स्त्री-पुरुष का महत्व उनकी दृष्टि में अलग-अलग न होकर एक जैसा ही था।

तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित लगभग सभी सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का आह्वान विवेकानंद ने किया। बाल विवाह के वे घोर विरोधी थे। उनके अनुसार किसी भी बालिका पर 12 या 13 वर्ष की आयु में मातृत्व का भार डालना धर्म का घोर विरोध है। मात्र धर्म ही नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह ग़लत है। वे कहते थे कि बाल विवाह के फलस्वरूप अल्पायु में गर्भ धारण करने से स्त्रियां अल्पायु होती हैं और दुर्बल माता-पिता से उत्पन्न संतानें भी दुर्बल होकर देश के अविकास का कारण बनती हैं। विधवाओं की संख्या में वृद्धि भी बाल विवाह का ही परिणाम है।

तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्पृश्यता और छुआछूत के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठाई। अपने खेतड़ी प्रवास में उन्होंने कहा था, "भारत के लोग अब हिंदू नहीं हैं, वेदांती भी नहीं हैं। वे हैं छूतमार्गी। रसोईघर उनका मंदिर और हांडी उनका देवता है।" स्वामी जी के लिये यह कथन नितांत स्वाभाविक था क्योंकि वे वेदांत और अद्वैतवाद के अनुगामी थे और उनके कथन मात्र कथन ही नहीं थे अपितु उनके कार्यों में वे परिलक्षित भी होते थे। आबू में एक मुस्लिम वकील के घर ठहरने पर लोगों द्वारा ध्यान दिलाए जाने पर उन्होंने कहा था- "आप कहते क्या हैं? मैं एक सन्यासी हूं- आप लोगों द्वारा बनाए गए विधि-निषेधों से परे ... इससे भगवान अप्रसन्न नहीं होगा, क्योंकि यह भगवान द्वारा अनुमोदित है।"

12 जनवरी, स्वामी विवेकानंद के जन्म दिवस पर विशेष

भारतीय वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा उनको स्वीकार थी, किंतु यह जन्म पर नहीं बल्कि कर्म पर आधारित हो, जैसाकि प्राचीन भारत में स्वीकृत था, जब लोग अपना वर्ण परिवर्तन कर सकते थे। उनके अनुसार ब्राह्मणत्व आदि गुण विशेष हैं, जो किसी भी व्यक्ति में आ सकते हैं। एक ही व्यक्ति जब मुद्रा के लिये अपनी सेवा को बेचता है तो शूद्र है, अपने लाभ के लिये व्यापार करता है तो वैश्य है, दूसरों की रक्षा करता है तो क्षत्रिय है और अपनी ज्ञान-पिपासा दिखाता है तो ब्राह्मण है। सर्वधर्म का पालन करते रहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य हो, किंतु इन वर्णों में समानता लाने का प्रयास भी होना चाहिए।

विवेकानंद रोगियों और निर्धनों की सेवा के लिये सदा तत्पर थे, क्योंकि उनकी सम्मति में वे ही ईश्वर का वास्तविक रूप हैं। मिशन के माध्यम से अनेक बार प्लेग, अकाल पीड़ितों के प्रति आर्तनाद करते हुए उन्होंने उनकी सेवा की। अकाल के समय एक बार उत्तर भारत के प्रकांड पंडित उनसे वेदांत चर्चा हेतु पहुंचे तो उन्होंने कहा- "सर्वत्र जो हाहाकार फैला हुआ है, उसके निवारण के लिये एक मुट्ठी अन्न का प्रयास कीजिए, तब मेरे पास वेदांत चर्चा हेतु आइए ... जब तक मेरे देश का एक कुत्ता भी भूख से पीड़ित है, तब तक उसकी सेवा ही मेरा धर्म है, बाकी सब अधर्म या मिथ्या धर्म है।"

सांस्कृतिक क्षेत्र में संभवत: स्वामी जी का अप्रतिम योगदान था- प्रत्येक वस्तु और कर्म को धर्म और आध्यात्मिकता से जोड़ना। उनका यह 'धर्म' मात्र दर्श या आचार से ही अनुप्राणित नहीं था, वरन यह धर्म मनुष्य मात्र के कल्याण का धर्म था-

नहि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं।
तात गच्छति वाला धर्म था।

यद्यपि वे अवतारवाद को मानते थे तथापि धर्म ग्रंथों की अपेक्षा धर्म के मूल तत्वों को अधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार एक संयासी का धर्म होता है- *आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च।* अर्थात अपनी मुक्ति और जन कल्याण साथ-साथ हो। यहां तक कि जन कल्याण हेतु

आत्ममुक्ति की उपेक्षा भी की जा सकती है।

जननी भारत भूमि तो उन्हें संसार की समस्त भूमियों में सर्वप्रिय थी, जिसके लिये उनका हृदय सुदूर देश में भी रोता था। इंग्लैंड से भारत प्रस्थान करने से पूर्व एक अंग्रेज़ ने जब यह पूछा कि इतने वर्ष ऐश्वर्यशाली देशों में रहने पर मातृभूमि कैसी लगेगी तो उन्होंने कहा– ''पहले मैं भारत से केवल प्रेम करता था, पर अब भारत की धूल-कण भी मेरे लिये पावन है, पवित्र है।'' वे कहते थे– ''यदि कोई ऐसा देश है जहां आध्यात्मिकता तथा अंतर्दृष्टि का सर्वाधिक विकास हुआ है, तो वह भारत है।''

निस्संदेह इस भारत मां को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा देख उन्हें घोर निराशा होती थी, जिसकी मुक्ति हेतु वे युवा-शक्ति का आह्वान करते थे और उन्हें वज्र के समान दृढ़ चरित्र होने के लिये प्रेरित करते थे। उन्होंने कहा– "युवकों की अस्थियों से ही वह वज्र तैयार होगा, जो भारतीयों की दासता की बेड़ियों को चूर कर डालेगा। क्या आप मुझे कुछ योग्य लड़के दे सकेंगे? तब तो मैं पृथ्वी को अच्छी तरह से हिलाकर जा सकूंगा।"

स्वामी जी का नारा– 'उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति तक रुको मत' भारतीय युवाओं का मंत्र-वाक्य ही बन गया। भारत की एकता को दृढ़ करने के लिये उन्होंने समस्त देश की यात्रा की और विभिन्न संस्थाएं स्थापित की।

देश के लिये पूरी तरह से समर्पित स्वामी विवेकानंद दूसरे देशों से भी सीखने के लिये सदैव तत्पर रहते थे, परंतु यह सीखना अंधानुकरण न हो, इसका ध्यान वे अवश्य रखते थे, वे कहते थे– "पहले अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, फिर सभी राष्ट्रों से शिक्षा ग्रहण करके, जो कुछ भी तुम्हारे काम का है ले लो परंतु तुम उनसे जो कुछ भी सीखो, उन सबको तुम्हें अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अधीन रखना होगा।"

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेकानंद जी की महानतम देन, जिसने भारत को ही नहीं विश्व को भी उद्वेलित कर दिया, वह थी– शिकागो महाधर्मसभा में दी गई उनकी अतुलनीय व्याख्यानमाला।

इस व्याख्यानमाला के बाद दैनिक *हेराल्ड* ने लिखा – "विवेकानंद निश्चय ही धर्ममहासभा के महानतम व्यक्ति हैं।" इस पूरे सम्मेलन में दिए गए अनेक विविध व्याख्यानों का सार था कि सभी धर्म समान हैं और दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सहयोग ज़रूरी है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अन्य धर्मों के सार-भाग को आत्मसात् करें और अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखकर अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित हो। ❑

(लेखिका दयानंद कॉलेज, अजमेर में इतिहास की प्राध्यापक हैं।
ई-मेल : pratibhapandey@yahoo.com)

(पृष्ठ 68 का शेष)

प्रतिशत की कमी करनी चाहिए और रेपो में आधे प्रतिशत)। इससे बाज़ार में पैसा उपलब्ध हो जाएगा। इसके साथ ही सार्वजनिक ख़र्च को बढ़ाया यानी अधूरी पड़ी योजनाओं को और अधिक धन आवंटित कर उन्हें गतिशील बनाया। इससे निवेश और उपभोग स्तर में वृद्धि हो सकती है जो मंदी के इस दौर में नौकरियों को बचाने का कार्य करेगी। लेकिन इसके साथ-साथ सरकार को मुद्रा स्फीति पर तेज़ नज़र रखनी होगी।

क्या भारत और चीन दुनिया की अर्थव्यवस्था को आगे ले जाने में सक्षम हैं?

पिछले दिनों फ्रांस के राष्ट्रपति सरकोजी ने अपनी एक गंभीर टिप्पणी में कहा कि "अर्थव्यवस्था की समृद्धि का असली वास्ता लोगों की दीगर ज़िंदगी से होता है। इसलिये यदि अर्थव्यवस्था लगातार शीर्ष की ओर बढ़ रही है तो लोगों की ज़िंदगी भी खुशहाल होनी चाहिए, लेकिन असल में ऐसा नहीं है।" इसका मतलब यह हुआ कि अर्थव्यवस्था की बढ़ती रफ़्तार ही उसका असली चेहरा नहीं है। चीन के नेशनल ब्यूरों ऑफ स्टैटिस्टिक्स के निदेशक जी फुजान भी यही मानते हैं कि आर्थिक संवृद्धि (इकोनॉमिक ग्रोथ) अर्थव्यवस्था की साउंडनेश को जज करने का एकमात्र फैक्टर नहीं है। उसे देखने के लिये कम्प्रहेंसिव मेथड अपनाना चाहिए ताकि रोज़गार, आर्थिक गुणवत्ता, आर्थिक संरचना और लोगों के रहन-सहन के स्तर में आए सुधारों को देखा जा सके।

यह सच है कि चीन की अर्थव्यवस्था पिछले पांच वर्षों से तेज़ी से वृद्धि कर रही है और उसका आकार 21 ट्रिलियन यूआन से अधिक पहुंच चुका है साथ ही पीपीपी (पर्चेजिंग पॉवर पैरिटी) फार्मूले से वह पूरी दुनिया में चौथे नंबर पर पहुंच गई है। लेकिन आज उपभोक्ता मूल्यों में वृद्धि चीन के लिये सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। चीन का उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) 2007 में 5.5 प्रतिशत से ऊपर तक पहुंच गया जो केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित पूरे वर्ष के लक्ष्य से 3.5 प्रतिशत अधिक है। चीन का शीर्ष नेतृत्व सभी स्तर के अधिकारियों पर दबाव बना रहा है कि वे केंद्र की नीतियों को लागू करें ताकि अर्थव्यवस्था ओवरहीट होने से बची रहे। अपर्याप्त सुधारों के कारण चीन में आर्थिक असंतुलन की स्थिति है(चाइनाज इकोनॉमिक आब्जर्वेशन की 10 वीं रिपोर्ट)। उल्लेखनीय है कि चीन में 2006 में शहरी और ग्रामीण क्षेत्र की आय में 3.3 : 1 का अनुपात था जबकि जबकि विश्व स्तर पर यह अनुपात केवल 1.8 : 1 का है, जिसके अगले 10 वर्षों में 4.1 : 1 हो जाने की संभावना है। इसके अतिरिक्त, ओवरहीटेड निवेश और सापेक्षतया अपर्याप्त उपभोग अधिकाधिक उत्पादन क्षमता को कम करने में मुश्किलें पैदा करेगा क्योंकि अंतिम उपभोग व्यय आनुपातिक तौर पर काफी नीचे आ गया। कमोबेश कुछ ऐसी ही स्थिति भारत की है जहां औद्योगिक उपक्रमों के असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के राष्ट्रीय आयोग की ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक देश की 55 प्रतिशत आबादी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 12 से 20 रुपये की आय पर ही जीवनयापन करती है। यदि पचास और साठ के दशकों के बाद की मुद्रा स्फीति को जोड़ा जाए तो आज भी आधी आबादी की प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति की आय पचास के दशक के देश के ग़रीबों की रोज़ाना की आमदनी के छह आने बनाम सवा रुपये की बहस (डा. राम मनोहर लोहिया और जवाहर लाल नेहरू के बीच) के मध्य बैठती है। लघु उद्योगों की छह लाख इकाइयां बंद हो गई हैं। ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया (2006) की रिपोर्ट के मुताबिक पिछले 10 वर्षों से भारत में ग़रीबी तेज़ रफ़्तार पकड़ रही है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की आय में प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत की दर से गिर रही है। कृषि और किसानों की स्थिति से भारतवासी परिचित ही हैं। अब तक जिसकी दुहाई दी जा रही थी वह वित्तीय क्षेत्र भी लगातार झटके खा रहा है। तक ऐसा कौन-सा फार्मूला है जो इन्हें दुनिया की अर्थव्यवस्था का नेता बना देगा। हां यदि आज का युवा गले में टाई बांधन की जगह सिर पर पगड़ी बांधने का और सेल फोन की जगह हल की मूठ को थामने का साहस कर ले तथा सरकार इस मोर्चे पर आगे आ जाए तो यह संभव हो सकता है। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।
ई-मेल : raheessingh@gmail.com;
rahees_66@yahoomail.com)

प्राणायाम : रोगोपचार की सामर्थ्यदायी प्रक्रिया

● महेश कुमार मुछाल

वर्तमान समय में विकास की गति में अत्यधिक वृद्धि हुई है। जो विकास पिछले सौ वर्षों में होता था, वह अब दशक में होने लगा। दशक में होने वाला विकास और परिवर्तन अब वर्षों में होने लगा। जिसकी कल्पना नहीं की थी वह साकार होने लगी। भौतिक सुख-सुविधाओं की भरमार है। जीवनशैली, खान-पान, पारिवारिक, सामाजिक मान्यताओं में तेज़ी से बदलाव आ रहा है। आज की दौड़-धूप वाली ज़िंदगी के कारण व्यक्ति मनोरोग से ग्रस्त है, जो अपने सामर्थ्य से अधिक अपनी इच्छाओं के वशीभूत है। आवश्यकता से अधिक अपेक्षा है। आज समाज के प्रत्येक व्यक्ति में तकनीकी साधनों के अधिक प्रयोगों से तथा शारीरिक शिथिलता से रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास हुआ। जबकि तकनीकी विकास के कारण चिकित्सा सुविधाओं में विकास होने से मनुष्य ने अनेक रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है। मानव की औसत आयु में वृद्धि तथा शिशु मृत्युदर में कमी हुई है। आज औसत आयु 65 वर्ष से अधिक है जबकि विकसित देशों में 75 से 80 वर्ष है। इस कारण अब आबादी में वृद्धि का अनुपात बढ़ रहा है जिसके कारण उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह एवं पाचन संबंधी रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है।

जीवनशैली जीने, सोचने, सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक, सामाजिक वातावरण तथा आदतों पर निर्भर करती है। अच्छा स्वास्थ्य अच्छी आदतों, स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन एवं सकारात्मक सोच का प्रतिफल होता है। जीवनशैली तथा खानपान का अभिन्न और घनिष्ठ संबंध स्वास्थ्य और अनेक रोगों से है। सभी लोग जानते हैं कि उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा, कब्ज, हृदय रोग, एलर्जी, जोड़ों, मांसपेशियों के रोगों तथा कुछ प्रकार के कैंसर रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है। इन सभी रोगों को हमारी बदलती जीवनशैली जनित रोग कहा जा सकता है। इन रोगों से बचाव में योग व प्राणायाम आवश्यक है। यदि व्यक्ति योग व प्राणायाम का नियमित अभ्यास करेगा तो जीवनशैली में बदलाव अवश्य होगा। व्यक्ति योग अपनाता है तो योग करने के लिये उपयुक्त समय ब्रह्ममुहूर्त प्रात: 4 से 7 बजे तक है। प्रात:काल जल्दी उठने के लिये व्यक्ति को रात्रि में जल्दी शयन करना होगा। साथ ही रात्रि में हल्का व सुपाच्य भोजन लेना होगा जिससे कि वह प्राणायाम व योगाभ्यास कर सके। इस आधार पर कहा गया है कि जीवनशैली हमारी अच्छी आदतों, स्वास्थ्यवर्धक भोजन व सकारात्मक सोच का प्रतिफल है जो नियमित योग द्वारा पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाती है। हमारे दैनिक जीवन में अज्ञानता वश हम प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। जैसे भार उठाते समय सांस भर लेना, जब कोई छोटा नाला कूदकर पार करना हो या लंबा कूदने का अभ्यास करते समय हम प्राणायाम का अभ्यास करते हैं यह श्वास रोकने का अभ्यास व्यक्ति में शक्ति और स्फूर्ति भर देता है इस कारण तत्काल ही शक्ति स्फूर्ति का अनुभव होता है। यह तो अनायास होता है जब हम प्रयासपूर्वक प्राणायाम करें तो रोगों से अवश्य ही मुक्ति पा सकते हैं।

कई लोगों ने अपने जीवनशैली में परिवर्तन कर योग व प्राणायाम को अपनाया वे सभी रोग मुक्त हो गए। इस संदर्भ में प्राणायाम से संबंधित कई प्रमुख अनुसंधान का वैज्ञानिक व प्राथमिकता आधार पर को प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्राणायाम का रक्तचाप पर प्रभाव

आवासीय योग शिविर में आए पहले 965 रोगियों में 806 रोगियों का रक्तचाप सामान्य से ऊपर तथा 159 का सामान्य पाया गया। प्राणायाम के अभ्यास के साथ रक्तचाप कम करने वाली औषधि का सेवन नहीं कराया गया। परिणाम में पाया गया कि 806 में से 516 व्यक्तियों का रक्तचाप सामान्य है। शेष लोगों का रक्तचाप भी परीक्षण के दौरान पहले की अपेक्षा कम अवश्य हुआ (देखें तालिका : 1)।

इस प्रकार कह सकते हैं कि प्राणायाम का रक्तचाप पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

प्राणायाम की वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणिकता

दांई-बांई नासिका द्वारा श्वसन प्रक्रिया के भी रोचक पहलुओं का वैज्ञानिकों ने अध्ययन

तालिका : 1

रेंज in mm/hg रक्तचाप	शिविर से पूर्व	शिविर के बाद	कुल अंतर
160/100 से 180/110	41	18	23
130/90 से 160/100	338	60	278
120/80 से 130/90	427	53	374
< 120/80	159	675	.516

किया। बुखारेस्ट, रोमानिया के नाक, कान, गले के विशेषज्ञ डॉ. आई.एन. रिंग ने चार सौ रोगियों के परीक्षण का अध्ययन किया। जिनके नैजल सैंटम खिसक जाने से वे श्वासवरोध से पीड़ित थे। इन रोगियों में पाया कि जो रोगी बांई नासिका (स्वर) से श्वास लेते थे उनमें तनाव संबंधी शिकायतें अधिक थी। उनमें 89 प्रतिशत तनाव से ग्रस्त थे जबकि दांई नासिका से श्वास लेने वालों में 29 प्रतिशत तनाव के लक्षण पाए गए। नासिका की इन कमियों को शल्य चिकित्सा द्वारा दूर करने पर मानसिक तनाव में कमी पाई गई।

अमरीकी विशेषज्ञ का कहना है कि एन्जिनायेक्टोरिस (एक प्रकार का हृदय रोग) से पीड़ित रोगी जिनकी छाती में असहय पीड़ा रहती है उन्हें बारी-बारी से दोनों नासिका से श्वास लेने पर पीड़ा में राहत महसूस हुई।

दांए-बाएं स्वरों की गति से मनुष्य का स्वभाव व उसकी प्रकृति प्रभावित होती है। शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं मानसिक संतुलन के लिये भी दोनों स्वरों का तालमेल आवश्यक है। भारतीय योगर्षि की मान्यता से आज वैज्ञानिक भी सहमत हैं। दाहिने स्वर के चलने पर श्रम साध्य कार्य करते हैं इसे सूर्य स्वर भी कहते हैं। बांया स्वर चंद्र स्वर कहलाता है। शांत, सौम्य व शीतल होता है। प्राणायाम के दांए-बांए मस्तिष्क के कार्यों का भी अपना एक चक्र है। एक निश्चित अवधि के बाद स्वर परिवर्तन के समान प्रक्रिया मस्तिष्क में भी देखी गई। मस्तिष्क का एक भाग 90 से 100 मिनट क्रियाशील रहने के बाद निष्क्रिय हो जाता है तथा फिर दूसरा भाग सक्रिय होकर कार्य करता है।

प्राणायाम का सिम्पैथेटिक पैरासिम्पैथेटिक तंत्र पर प्रभाव

डॉ. पाल (स्टॉक स्टेड, डेनमार्क) के अनुसार स्वर चक्र स्टिलेटगैंग्लियान नामक तंत्रिका केंद्र द्वारा नियंत्रित होता है। हायपोथैलेमस मस्तिष्क का वह भाग है जो शरीर के ऑटोनामिक क्रियाओं जैसे - तापमान, रक्तचाप, धड़कन, सुख-दुख के प्रति जागरुकता को नियंत्रित करता है। ऑटोनामिक तंत्रिका तंत्र के दो भाग हैं - पैरा सिम्पैथेटिक तथा सिम्पैथेटिक। पहला भाग शरीरगत क्रियाओं को मंद करता है जबकि दूसरा उनकी गति को बढ़ा देता है। शारीरिक एवं मानसिक तनाव की स्थिति में सिंपैथेटिक तंत्रिका तंत्र कार्य करता है। इसलिये हृदय की धड़कन एवं श्वसन की गति तीव्र हो जाती है। तकनीकी भाषा में फाइट और फ्लाइट अनुक्रिया कहते हैं अर्थात प्रस्तुत संकट के निवारण के लिये संघर्ष करो या भाग जाओ। विशेषज्ञों का मत है कि ये फिजियोलॉजिकल क्रियाएं जो भावनाओं से संबद्ध हैं, पर नियंत्रण प्राप्त कर सकना संभव है।

डॉ. हरवर्ट ने भी सिद्ध किया है कि श्वास लेते समय सिंपैथेटिक तंत्र की गतिविधियां बढ़ जाती है जबकि श्वास छोड़ते समय पैरासिंपैथेटिक सक्रिय रहता है। इस तरह बाएं-दाएं दोनों नासिकाओं की श्वसन प्रक्रिया श्वास-प्रश्वास की गति पर नियंत्रण कर कोई भी व्यक्ति अपने लिंबिक तंत्र जो मनोदशाओं और फिजियोलॉजी के लिये जिम्मेदार है, पर अंकुश रख सकता है। इसी प्रकार डॉ. रुडोल्फ वैलेंटाइन ने अनेक शोध के पश्चात घोषणा की है कि श्वसन प्रक्रिया मनुष्य की मानसिक व शारीरिक दक्षताओं से सीधे संबद्ध है। यदि वह ठीक है तथा श्वसन पर ऐच्छिक नियंत्रण संभव हो तो विभिन्न प्रकार के शारीरिक मानसिक रोगों एवं असंतुलन को दूर किया जा सकता है।

डॉ. हरवर्ट वेनसन ने भारतीय योगशास्त्रों में वर्णित प्राणायाम को अपनी पुस्तक *रिलैक्सेशन रेस्पांस* में शारीरिक व मानसिक रोगों के निवारण के लिये किया है। वेनशन के अनुसार शारीरिक रुग्णता का कारण प्राण व्यतिरेक (असंतुलन) है। उसे मिटाने के लिये प्राणायाम की विशेष क्रियाएं सहायक हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का मन कार्य के प्रति बदलता रहता है। इसका कारण भी नासिका से चलने वाली नाड़ी से संबंधित है। इसी क्रम परिवर्तन के साथ मस्तिष्क गोलार्द्धों की क्रियाशीलता व कार्य वैमन्यता परिलक्षित होती है। इस तरह मन बदलने के लिये दवाईयां ली जाती थी वह परिवर्तन से अधिक ठीक हो जाती है।

हैलीफेक्स वि.वि. (कनाडा) के डलहौजी मनोविज्ञान विभाग में 'नेशल साइकल' नासिका के दोनों बाएं व दाएं नाड़ी द्वारा श्वास पर अध्ययन में पाया गया कि दाहिनी नासिका से श्वास लेने पर मस्तिष्क के बाएं गोलार्द्ध में ईसीजी द्वारा क्रियाशीलता पाई गई तथा बांई नासिका द्वारा दाहिने मस्तिष्क में क्रियाशीलता प्रतिलक्षित हुई। इस प्रकार मस्तष्कीय गोलार्द्धों की क्रियाशीलता को परिवर्तित करने का सूत्र हाथ लग गया। इस प्रकार 10-12 मिनटों में हम गोलार्द्धों को परिवर्तित कर सकते हैं।

प्राणायाम की विद्यार्थियों की क्षमता पर प्रभाव

स्वर विन्यास की प्रक्रिया से शिक्षण प्रक्रिया में भी सुधार लाया जा सकता है। गणित इत्यादि विषयों का संबंध बाएं गोलार्द्धों से है। इन विषयों में पिछड़े बालकों को दाहिनी नासिका से श्वसन का अभ्यास कराए जाने का सुझाव दिया। भावनात्मक एवं सृजनात्मक क्रियाओं में पिछड़े बालकों को बांई नासिका से श्वसन कराया जाना चाहिए। इससे दाहिना मस्तिष्क सक्रिय हो जाएगा। इस प्रकार स्वर परिवर्तन से हम अपनी मानसिक क्षमताओं ने परिवर्तन ला सकते हैं।

दोनों तरफ के मस्तिष्कों में एकरूपता लाने के लिये प्राणायाम उपचार विशेष रूप से प्रभावशाली है।

श्वास लेने की प्रक्रिया मस्तिष्कीय क्रिया प्रणाली से सीधा संबंध

दाएं-बाएं स्वर की गति व्यक्ति के स्वभाव एवं प्रकृति को प्रभावित करती है। इसलिये शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं मानसिक संतुलन के लिये भी दोनों स्वरों में तालमेल आवश्यक है। यह प्रक्रिया प्राणायाम के द्वारा नियंत्रित होती है। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण शोध बुखारेस्ट (रोमानिया) के प्रसिद्ध चिकित्सा वैज्ञानिक डॉ. आई.एन. रिंग एवं डलहौजी विश्वविद्यालय नोवास्कोटिया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रेमंड क्लेन तथा रोजीन आरमिटेज द्वारा की गई। इन्होंने शोध द्वारा स्पष्ट किया कि श्वास लेने की प्रक्रिया का मस्तिष्कीय क्रिया प्रणाली पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ. अलेक्जेंडर लोवेन का कहना है कि "श्वास जितना गहरा होगा, भावनाओं पर उतना ही अधिक प्रभावित करेगा।" वे मानसोपचार पद्धति में श्वास संबंधी क्रियाओं का प्रयोग कराते हैं।

श्वसन प्रक्रिया का भावनाओं से संबंध जानने के लिये कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के लेजली पोस्टर न्यूरोसाइकेट्रिक इंस्टीट्यूट में विभिन्न प्रकार के परीक्षण किए गए। इन प्रयोगों में शोधरत वैज्ञानिक जे.बी. हार्ट तथा वी. टिंसंस ने सिद्ध किया कि श्वसन तथा मस्तिष्कीय तरंगों में परस्पर संबंध है और गहरे श्वसन की स्थिति में जब लोग शैथिल्यावस्था में रहते हैं उस समय अल्फा तरंगों की अधिकता रहती है। किंतु जब व्यक्ति उथली व तेज सांस ले रहा

होता है तब इस तरंग की न्यूनता पाई जाती है। यही नहीं एबडोमिनल ब्रीथिंग में अल्फा तरंगों की अधिकता पाई जाती है जबकि थोरेसिक में कम।

मानसिक तनाव व नकारात्मक चिंतन को दूर करने के लिये अनुलोम-विलोम, भ्रामरी एवं उद्गीथ प्राणायाम का प्रयोग अधिक उपयोगी है। शरीर में अधिकांश व्याधियां पाचन तंत्र की विकृति से उत्पन्न होती है। कपालभाति प्राणायाम के अभ्यास से पेट, गैस, कब्ज, एसिडिटी, मधुमेह एवं मोटापे से मुक्ति मिलती है। भावनात्मक तनाव से मुक्ति में भ्रामरी प्राणायाम की विशेष भूमिका है इसके अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है। साथ ही व्यक्ति की सक्रियता भी बढ़ती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संपूर्ण स्वास्थ्य एवं तनाव मुक्ति में प्राणायाम का विशेष महत्व है। प्राणायाम प्रक्रिया द्वारा एक तंत्र का नियंत्रण सीखकर शरीर के अन्य तंत्रों पर भी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। जिसमें मस्तिष्कीय तरंग तंत्र, हार्मोंस स्राव, चयापचय क्रियाएं आदि प्रमुख हैं। प्राणायाम की विभिन्न क्रिया विधि, समय सावधानियां एवं लाभ को विस्तार से प्रस्तुत किया है।

भस्त्रिका प्राणायाम

विधि : किसी भी ध्यानात्मक आसन में सुखासन, सिद्धासन में सुविधापूर्वक बैठकर दोनों नासिकाओं से श्वास को फेफड़ों में भरना तथा छोड़ना भस्त्रिका प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम को मध्यम गति से सामर्थ्यानुसार कर सकते हैं। इस प्राणायाम में श्वास को गहरा भरना एवं छोड़ना होता है।

समय : इस प्राणायाम को 5 मिनट तक करना चाहिए। दो-ढाई सेकंड श्वास लेने में तथा दो-ढाई सेकंड श्वास छोड़ने में लगना चाहिए। इस प्रकार करीब एक मिनट में बारह बार हो जाता है।

सावधानियां : श्वास पेट में न भरें, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोगी तीव्र गति से यह प्राणायाम न करें। प्राणायाम के समय आंखें बंद रखें व ओम का मानसिक जाप करें।

लाभ : इससे फेफड़े सबल, सर्दी, जुकाम, एलर्जी, पुराना नजला एवं समस्त कफ रोग, थायराइड, टॉन्सिल तथा रक्त परिशुद्ध होता है मानसिक तनाव को दूर करने के लिये एवं सक्रियता को बढ़ाने हेतु तथा समस्त विजातीय पदार्थों के निष्कासन में बहुत उपयोगी है।

कपालभांति प्राणायाम

विधि : कपालभाति प्राणायाम की विधि भस्त्रिका से भिन्न है। भस्त्रिका प्राणायाम में पूरक श्वॉस लेना तथा रोचक श्वॉस छोड़ने पर बल दिया जाता है जबकि कपालभाति में केवल श्वॉस छोड़ने पर। पेट अंदर जाना चाहिए, श्वॉस लेना नहीं हैं, आवश्यकतानुसार श्वॉस स्वत: चला जाता है। इस प्राणायाम को भी मध्यम गति से कर सकते हैं। प्राणायाम करते समय मन में विचार करें कि शरीर के समस्त रोग मिट रहे हैं, श्वॉस छोड़ने से सारे दोष-विकार नष्ट हो रहे हैं - इस भावना का विचार करें। इस प्राणायाम को 15 मिनट तक किया जा सकता है।

सावधानियां : हृदय व उच्च रक्तचाप के रोगी तीव्र गति से यह क्रिया न करें।

लाभ : इस प्राणायाम से मुख तेज, आभा, सौंदर्य बढ़ता है। समस्त कफ रोग - दमा, श्वॉस, एलर्जी मोटापा, मधुमेह, गैस, कब्ज, पेट के समस्त रोगों का नाश होता है। इस प्राणायाम से 1 माह में 4.8 किलो वजन कम कर सकते हैं एवं इस प्राणायाम का एड्रीनन, थायराइड ग्रंथि एवं पेंक्रियाज पर अच्छा प्रभाव होता है।

बाह्य प्राणायाम

विधि : इस प्राणायाम के द्वारा मणिपुर व मूलाधार चक्र की शक्तियों का उर्ध्व गमन होता है। श्वॉस लेकर श्वॉस को बाहर छोड़ते हुए त्रिबंध लगाए जाते हैं। मूलबंध, उड्डीयान बंध एवं जालंधर बंध इस प्रक्रिया में मूल बंध हेतु नाभि के नीचे वाले भाग को ऊपर खींचते हैं। प्राणायाम की तीन आवृत्ति करते हैं। यह 5 व 11 बार भी किया जा सकता है।

सावधानियां : हृदय रोगी एवं हाई ब्लड प्रेशर रोगी इस प्राणायाम को न करें।

लाभ : जालंधर बंध से थायराइड रोग से मुक्ति, उड्डीयन बंध से पेट संबंधी रोग एवं हर्निया में आराम तथा मूलबंध से कुंडलिनी जागरण होता है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम

विधि : दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नासिका छिद्र को बंद कर बाईं नासिका छिद्र से गहरा श्वॉस लेते हैं। बांईं को बंद कर दाहिनी से छोड़ते हैं। दाहिनी नासा छिद्र से ही पुन: श्वॉस लेते हुए बांए से छोड़ते, पुन: लेते हैं। बांए से लेना दांए से छोड़ना, पुन: दांए से ही लेना, इस प्रकार इस प्राणायाम को 15 मिनट तक किया जा सकता है एवं असाध्य रोगों में 30 मिनट तक कर सकते हैं। शुरु में कम समय एवं मध्यम गति से अभ्यास करें।

सावधानियां : हृदय एवं उच्च रक्तचाप रोगी तीव्र गति से न करें।

लाभ : हृदय के अवरोध पूरी तरह खुल जाते हैं। उच्च रक्तचाप में लाभ होता है। रक्त का संपूर्ण शरीर में प्रवाह होता है। लकवा, माइग्रेन, डिप्रेशन आदि रोग से मुक्ति तथा कुंडलिनी जागरण में भी यह सहायक है। नाड़ी शुद्धीकरण, स्नायु दुर्बलता, जोड़ों के दर्द, गठिया, नेत्र ज्योति एवं टॉन्सिल आदि में विशेष लाभ होता है। इससे अंत:स्रावी ग्रंथियों के कारण उत्पन्न हार्मोंस की अनियमितता भी दूर होती है। साथ ही विचार पवित्र होते हैं। विचारों के साथ-साथ आहार एवं व्यवहार भी पवित्र होता है। मानसिक कारणों से उत्पन्न तनाव को दूर करने में यह प्राणायाम उपयोगी है।

भ्रामरी प्राणायाम

विधि : तर्जनी अंगुली को आज्ञा चक्र पर लगाते हैं। मध्यमा अंगुली से आंखें बंद एवं अंगूठे से कानों को बंद करके गहरा श्वॉस लेकर मुंह बंद करके ओम का उच्चारण करते हैं। इससे भ्रमर के समान ध्वनि होती है। इस प्राणायाम की तीन आवृत्ति कर सकते हैं। अधिक से अधिक 11 एवं 21 बार भी कर सकते हैं।

लाभ : इस प्राणायाम से तनाव व अनिद्रा में लाभ होता है तथा उच्च रक्तचाप नियंत्रित होता है। विद्यार्थियों की एकाग्रता शक्ति बढ़ती है एवं इस प्राणायाम से भावनात्मक तनाव दूर होते हैं, साथ ही विचार भी सकारात्मक हो जाते हैं।

उद्गीथ प्राणायाम

विधि : इस प्राणायाम में आंखें बंद करके गहरा श्वॉस लेकर ओम का उच्चारण किया जाता है। इसकी कम से कम तीन आवृत्ति करें। यह और अधिक बार भी किया जा सकता है। अंत में दोनों हाथों की हथेलियों को रगड़ते हुए गरम-गरम ऊष्मा का आंखों पर अंजन करते हुए आंखें खोल लेते हैं।

लाभ : इस प्राणायाम से मन की वृत्ति, तनाव, अनिद्रा व डिप्रेशन से मुक्ति मिलती है, नकारात्मक चिंतन दूर होता है, विचारों में पवित्रता आती है, मन की चंचलता दूर होती है, अर्न्त के व्यवधान मिटते हैं तथा अर्न्त से ही समाधान होता है। सभी प्राणायाम के बीच में आंखे बंद रख ओम का मानसिक चिंतन करना, ध्यान करना यह भी प्राणायाम का ही एक प्रकार है। ❑

जागरुक उपभोक्ता: सुरक्षित उपभोक्ता

सयानी रानी की ज़बानी....

आज सभी उपभोक्ताओं को अधिकार है।

जागो ग्राहक जागो

- विभिन्न किस्म की वस्तुओं/सेवाओं को प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर चुनने का अधिकार
- माल की गुणवत्ता, मात्रा, प्रमाणिकता, शुद्धता, मानक और मूल्य के बारे में सूचित किए जाने का अधिकार
- उपभोक्ता हितों पर उपयुक्त मंचो में सुने जाने का अधिकार
- जो जान–माल के लिए खतरनाक हों ऐसी सेवा के विपणन से संरक्षण का अधिकार
- अनुचित व्यापार व्यवहारों अथवा बेईमान सेवा–प्रदाताओं के शोषण के विरुद्ध प्रतितोष प्राप्त करने का अधिकार
- सूचित उपभोक्ता बने रहने के लिए ज्ञान और कौशल प्राप्त करने का अधिकार

अपने क्षेत्र के उपभोक्ता फोरम का पता करने के लिए ncdrc.nic.in पर लॉग ऑन करें।

सत्यमेव जयते

उपभोक्ता राष्ट्रीय हेल्पलाइन नंबर
1800–11–4000 (निःशुल्क) पर सम्पर्क कर सकते हैं।
(बीएसएनएल/एमटीएनएल लाइनों से)
अथवा 011–27662955,56,57,58 (सामान्य कॉल दरें)
(9.30 प्रातः से 5.30 सायं – सोमवार से शनिवार)

जनहित मे जारी
उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय
उपभोक्ता मामले विभाग, भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली–110 001 : वेबसाइट : www.fcamin.nic.in

YH-1/09/2

प्रकाशक व मुद्रक वीना जैन, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिये ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-53/2006-08
पंजी सं. 951/57
R.N.951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2006-8 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2006-08 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi

YH-1/09/1